॥ सत्यं शिवं सुन्दरम् ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी विरचित

श्रीरामचरितमानस

[अयोध्याकाण्ड]

(सटीक)

टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार

ॐ

विषय-सूची

राम-भरत-मिलन

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ॥

चित्रकूटमें सीता-राम-लक्ष्मणकी झाँकी

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

द्वितीय सोपान

अयोध्याकाण्ड

श्लोक

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम् ॥ १ ॥

जिनकी गोदमें हिमाचलसुता पार्वतीजी, मस्तकपर गङ्गाजी, ललाटपर द्वितीयाका चन्द्रमा, कण्ठमें हलाहल विष और वक्षःस्थलपर सर्पराज शेषजी सुशोभित हैं, वे भस्मसे विभूषित, देवताओंमें श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, संहारकर्ता [या भक्तोंके पापनाशक], सर्वव्यापक, कल्याणरूप, चन्द्रमाके समान शुभ्रवर्ण श्रीशङ्करजी सदा मेरी रक्षा करें ॥ १ ॥

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥२॥

रघुकुलको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दकी जो शोभा राज्याभिषेकसे (राज्याभिषेककी बात सुनकर) न तो प्रसन्नताको प्राप्त हुई और न वनवासके दुःखसे मलिन ही हुई, वह (मुखकमलकी छवि) मेरे लिये सदा सुन्दर मङ्गलोंकी देनेवाली हो ॥ २ ॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥ ३ ॥

नीले कमलके समान श्याम और कोमल जिनके अङ्ग हैं, श्रीसीताजी जिनके वामभागमें विराजमान हैं और जिनके हाथोंमें [क्रमशः] अमोघ

बाण और सुन्दर धनुष है, उन रघुवंशके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

दो०-श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि ।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि ॥

श्रीगुरुजीके चरणकमलोंकी रजसे अपने मनरूपी दर्पणको साफ करके मैं श्रीरघुनाथजीके उस निर्मल यशका वर्णन करता हूँ जो चारों फलोंको (धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको) देनेवाला है ।

चौ०-जब तें रामु ब्याहि घर आए । नित नव मंगल मोद बधाए ॥
भुवन चारिदस भूधर भारी । सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी ॥ १ ॥

जबसे श्रीरामचन्द्रजी विवाह करके घर आये, तबसे [अयोध्यामें] नित्य नये मङ्गल हो रहे हैं और आनन्दके बधावे बज रहे हैं । चौदहों लोकरूपी बड़े भारी पर्वतोंपर पुण्यरूपी मेघ सुखरूपी जल बरसा रहे हैं ॥ १ ॥

रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई । उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई ॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती । सुचि अमोल सुंदर सब भाँती ॥ २ ॥

ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्तिरूपी सुहावनी नदियाँ उमड़-उमड़कर अयोध्यारूपी समुद्रमें आ मिलीं । नगरके स्त्री-पुरुष अच्छी जातिके मणियोंके समूह हैं, जो सब प्रकारसे पवित्र, अमूल्य और सुन्दर हैं ॥ २ ॥

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती । जनु एतनिअ बिरंचि करतूती ॥
सब बिधि सब पुर लोग सुखारी । रामचंद मुख चंदु निहारी ॥ ३ ॥

नगरका ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता । ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्माजीकी कारीगरी बस इतनी ही है । सब नगरनिवासी श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको देखकर सब प्रकारसे सुखी हैं ॥ ३ ॥

मुदित मातु सब सखीं सहेली । फलित बिलोकि मनोरथ बेली ॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ । प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥ ४ ॥

सब माताएँ और सखी-सहेलियाँ अपनी मनोरथरूपी बेलको फली हुई देखकर आनन्दित हैं । श्रीरामचन्द्रजीके रूप, गुण, शील और स्वभावको देख-सुनकर राजा दशरथजी बहुत ही आनन्दित होते हैं ॥ ४ ॥

दो०—सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु ।
आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु ॥ १ ॥

सबके हृदयमें ऐसी अभिलाषा है और सब महादेवजीको मनाकर

(प्रार्थना करके) कहते हैं कि राजा अपने जीते-जी श्रीरामचन्द्रजीको युवराजपद दे दें ॥ १ ॥

चौ०—एक समय सब सहित समाजा। राजसभाँ रघुराजु बिराजा ॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू ॥ १ ॥

एक समय रघुकुलके राजा दशरथजी अपने सारे समाजसहित राजसभामें विराजमान थे। महाराज समस्त पुण्योंकी मूर्ति हैं, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश सुनकर अत्यन्त आनन्द हो रहा है ॥ १ ॥

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें ॥
तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं ॥ २ ॥

सब राजा उनकी कृपा चाहते हैं और लोकपालगण उनके रुखको रखते हुए (अनुकूल होकर) प्रीति करते हैं। [पृथ्वी, आकाश, पाताल] तीनों भुवनोंमें और [भूत, भविष्य, वर्तमान] तीनों कालोंमें दशरथजीके समान बड़भागी [और] कोई नहीं है ॥ २ ॥

मंगल मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू ॥
रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥ ३ ॥

मङ्गलोंके मूल श्रीरामचन्द्रजी जिनके पुत्र हैं, उनके लिये जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा है। राजाने स्वाभाविक ही हाथमें दर्पण ले लिया और उसमें अपना मुँह देखकर मुकुटको सीधा किया ॥ ३ ॥

श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥ ४ ॥

[देखा कि] कानोंके पास बाल सफेद हो गये हैं, मानो बुढ़ापा ऐसा उपदेश कर रहा है कि हे राजन्! श्रीरामचन्द्रजीको युवराज-पद देकर अपने जीवन और जन्मका लाभ क्यों नहीं लेते ॥ ४ ॥

दो०—यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ ॥ २ ॥

हृदयमें यह विचार लाकर (युवराज-पद देनेका निश्चय कर) राजा दशरथजीने शुभ दिन और सुन्दर समय पाकर, प्रेमसे पुलकित-शरीर हो आनन्दमग्न मनसे उसे गुरु वशिष्ठजीको जा सुनाया ॥ २ ॥

चौ०—कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भए राम सब बिधि सब लायक ॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमारे अरि मित्र उदासी ॥ १ ॥

राजाने कहा—हे मुनिराज! [कृपया यह निवेदन] सुनिये। श्रीरामचन्द्र अब सब प्रकारसे सब योग्य हो गये हैं। सेवक, मन्त्री, सब नगरनिवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र या उदासीन हैं—॥ १ ॥

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं ॥ २ ॥

सभीको श्रीरामचन्द्र वैसे ही प्रिय हैं जैसे वे मुझको हैं। [उनके रूपमें] आपका आशीर्वाद ही मानो शरीर धारण करके शोभित हो रहा है। हे स्वामी! सारे ब्राह्मण, परिवारसहित आपके ही समान उनपर स्नेह करते हैं॥ २ ॥

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें ॥ ३ ॥

जो लोग गुरुके चरणोंकी रजको मस्तकपर धारण करते हैं, वे मानो समस्त ऐश्वर्यको अपने वशमें कर लेते हैं। इसका अनुभव मेरे समान दूसरे किसीने नहीं किया। आपकी पवित्र चरण-रजकी पूजा करके मैंने सब कुछ पा लिया॥ ३ ॥

अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें ॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू ॥ ४ ॥

अब मेरे मनमें एक ही अभिलाषा है। हे नाथ! वह भी आपहीके अनुग्रहसे पूरी होगी। राजाका सहज प्रेम देखकर मुनिने प्रसन्न होकर कहा—नरेश! आज्ञा दीजिये (कहिये, क्या अभिलाषा है?) ॥ ४ ॥

दो०—राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार ॥ ३ ॥

हे राजन्! आपका नाम और यश ही सम्पूर्ण मनचाही वस्तुओंको देनेवाला है। हे राजाओंके मुकुटमणि! आपके मनकी अभिलाषा फलका अनुगमन करती है (अर्थात् आपके इच्छा करनेके पहले ही फल उत्पन्न हो जाता है) ॥ ३ ॥

चौ०—सब बिधि गुरु प्रसन्न जियँ जानी। बोलेउ राउ रहँसि मृदु बानी ॥
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ॥ १ ॥

अपने जीमें गुरुजीको सब प्रकारसे प्रसन्न जानकर, हर्षित होकर राजा

कोमल वाणीसे बोले—हे नाथ ! श्रीरामचन्द्रजीको युवराज कीजिये । कृपा करके कहिये (आज्ञा दीजिये) तो तैयारी की जाय ॥ १ ॥

मोहि अछत यहु होइ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचन लाहू ॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं । यह लालसा एक मन माहीं ॥ २ ॥

मेरे जीते-जी यह आनन्द-उत्सव हो जाय, [जिससे] सब लोग अपने नेत्रोंका लाभ प्राप्त करें । प्रभु (आप) के प्रसादसे शिवजीने सब कुछ निबाह दिया (सब इच्छाएँ पूर्ण कर दीं) केवल यही एक लालसा मनमें रह गयी है ॥ २ ॥

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ । जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए । मंगल मोद मूल मन भाए ॥ ३ ॥

[इस लालसाके पूर्ण हो जानेपर] फिर सोच नहीं, शरीर रहे या चला जाय, जिससे मुझे पीछे पछतावा न हो । दशरथजीके मङ्गल और आनन्दके मूल सुन्दर वचन सुनकर मुनि मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं । जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । रामु पुनीत प्रेम अनुगामी ॥४॥

[वसिष्ठजीने कहा—] हे राजन् ! सुनिये, जिनसे विमुख होकर लोग पछताते हैं और जिनके भजन बिना जीकी जलन नहीं जाती, वही स्वामी (सर्वलोकमहेश्वर) श्रीरामजी आपके पुत्र हुए हैं, जो पवित्र प्रेमके अनुगामी हैं । [श्रीरामजी पवित्र प्रेमके पीछे-पीछे चलनेवाले हैं इसीसे तो प्रेमवश आपके पुत्र हुए हैं] ॥ ४ ॥

दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु ।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु ॥ ४ ॥

हे राजन् ! अब देर न कीजिये; शीघ्र सब सामान सजाइये । शुभ दिन और सुन्दर मङ्गल तभी है जब श्रीरामचन्द्रजी युवराज हो जायँ (अर्थात् उनके अभिषेकके लिये सभी दिन शुभ और मङ्गलमय हैं) ॥४॥

चौ०—मुदित महीपति मंदिर आए । सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए ॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए । भूप सुमंगल बचन सुनाए ॥१॥

राजा आनन्दित होकर महलमें आये और उन्होंने सेवकोंको तथा मन्त्री सुमन्त्रको बुलवाया । उन लोगोंने 'जय-जीव' कहकर सिर नवाये । तब राजाने सुन्दर मङ्गलमय वचन (श्रीरामजीको युवराज-पद देनेका प्रस्ताव) सुनाये ॥ १ ॥

जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका ॥ २ ॥

[और कहा—] यदि पंचोंको (आप सबको) यह मत अच्छा लगे, तो हृदयमें हर्षित होकर आपलोग श्रीरामचन्द्रका राजतिलक कीजिये ॥ २ ॥

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी ॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी ॥३॥

इस प्रिय वाणीको सुनते ही मन्त्री ऐसे आनन्दित हुए मानो उनके मनोरथरूपी पौधेपर पानी पड़ गया हो। मन्त्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे जगत्पति ! आप करोड़ों वर्ष जियें ॥ ३ ॥

जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥
नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा ॥४॥

आपने जगत्भरका मङ्गल करनेवाला भला काम सोचा है। हे नाथ ! शीघ्रता कीजिये, देर न लगाइये। मन्त्रियोंकी सुन्दर वाणी सुनकर राजाको ऐसा आनन्द हुआ मानो बढ़ती हुई बेल सुन्दर डालीका सहारा पा गयी हो ॥ ४ ॥

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ ॥ ५ ॥

राजाने कहा—श्रीरामचन्द्रके राज्याभिषेकके लिये मुनिराज वशिष्ठजीकी जो-जो आज्ञा हो, आपलोग वही सब तुरंत करें ॥ ५ ॥

चौ०—हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना ॥ १ ॥

मुनिराजने हर्षित होकर कोमल वाणीसे कहा कि सम्पूर्ण श्रेष्ठ तीर्थोंका जल ले आओ। फिर उन्होंने ओषधि, मूल, फूल, फल और पत्र आदि अनेकों माङ्गलिक वस्तुओंके नाम गिनकर बताये ॥ १ ॥

चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती ॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका ॥ २ ॥

चँवर, मृगचर्म, बहुत प्रकारके वस्त्र, असंख्यों जातियोंके ऊनी और रेशमी कपड़े, [नाना प्रकारकी] मणियाँ (रत्न) तथा और भी बहुत-सी मङ्गल वस्तुएँ, जो जगत्में राज्याभिषेकके योग्य होती हैं [सबको मँगानेकी उन्होंने आज्ञा दी] ॥ २ ॥

वेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥
सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥ ३॥

मुनिने वेदोंमें कहा हुआ सब विधान बताकर कहा—नगरमें बहुतसे मण्डप (चँदोवे) सजाओ। फलोंसमेत आम, सुपारी और केलेके वृक्ष नगरकी गलियोंमें चारों ओर रोप दो॥ ३॥

रचहु मंजु मनि चौकें चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥ ४॥

सुन्दर मणियोंके मनोहर चौक पुरवाओ और बाजारको तुरंत सजानेके लिये कह दो। श्रीगणेशजी, गुरु और कुलदेवताकी पूजा करो और भूदेव ब्राह्मणोंकी सब प्रकारसे सेवा करो॥ ४॥

दो०—ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग॥ ६॥

ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सबको सजाओ। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीके वचनोंको शिरोधार्य करके सब लोग अपने-अपने काममें लग गये॥ ६॥

चौ०—जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा॥ १॥

मुनीश्वरने जिसको जिस कामके लिये आज्ञा दी, उसने वह काम [इतनी शीघ्रतासे कर डाला कि] मानो पहलेसे ही कर रक्खा था। राजा ब्राह्मण, साधु और देवताओंको पूज रहे हैं और श्रीरामचन्द्रजीके लिये सब मङ्गलकार्य कर रहे हैं॥ १॥

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥ २॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी सुहावनी खबर सुनते ही अवधभरमें बड़ी धूमसे बधावे बजने लगे। श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके शरीरमें भी शुभ शकुन सूचित हुए। उनके सुन्दर मङ्गल अङ्ग फड़कने लगे॥ २॥

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥ ३॥

पुलकित होकर वे दोनों प्रेमसहित एक-दूसरेसे कहते हैं कि ये सब शकुन भरतके आनेकी सूचना देनेवाले हैं। [उनको मामाके घर गये]

बहुत दिन हो गये; बहुत ही अवसेर आ रही है (बार-बार उनसे मिलनेकी मनमें आती है)। शकुनोंसे प्रिय (भरत) के मिलनेका विश्वास होता है ॥ ३ ॥

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ॥
रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥ ४ ॥

और भरतके समान जगत्‌में [हमें] कौन प्यारा है ! शकुनका बस यही फल है, दूसरा नहीं। श्रीरामचन्द्रजीको [अपने] भाई भरतका दिन-रात ऐसा सोच रहता है जैसा कछुएका हृदय अंडोंमें रहता है ॥४॥

दो०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु ॥ ७ ॥

इसी समय यह परम मङ्गल समाचार सुनकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। जैसे चन्द्रमाको बढ़ते देखकर समुद्रमें लहरोंका विलास (आनन्द) सुशोभित होता है ॥ ७ ॥

चौ०—प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं ॥ १ ॥

सबसे पहले [रनिवासमें] जाकर जिन्होंने ये वचन (समाचार) सुनाये, उन्होंने बहुत-से आभूषण और वस्त्र पाये। रानियोंका शरीर प्रेमसे पुलकित हो उठा और मन प्रेममें मग्न हो गया। वे सब मङ्गलकलश सजाने लगीं ॥ १ ॥

चौकें चारु सुमित्राँ पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी ॥
आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी ॥ २ ॥

सुमित्राजीने मणियों (रत्नों) के बहुत प्रकारके अत्यन्त सुन्दर और मनोहर चौक पूरे। आनन्दमें मग्न हुई श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजीने ब्राह्मणोंको बुलाकर बहुत दान दिये ॥ २ ॥

पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा ॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू ॥ ३ ॥

उन्होंने ग्रामदेवियों, देवताओं और नागोंकी पूजा की और फिर बलि भेंट देनेको कहा (अर्थात् कार्य सिद्ध होनेपर फिर पूजा करनेकी मनौती मानी); और प्रार्थना की कि जिस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीका कल्याण हो, दया करके वह वरदान दीजिये ॥ ३ ॥

गावहिं मंगल कोकिलबयनीं । बिधुबदनीं मृगसावकनयनीं ॥ ४ ॥

कोयलकी-सी मीठी वाणीवाली, चन्द्रमाके समान मुखवाली और हिरनके बच्चेके-से नेत्रोंवाली स्त्रियाँ मङ्गलगान करने लगीं ॥ ४ ॥

दो०—राम राज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि ।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक सुनकर सभी स्त्री-पुरुष हृदयमें हर्षित हो उठे और विधाताको अपने अनुकूल समझकर सब सुन्दर मङ्गल-साज सजाने लगे ॥ ८ ॥

चौ०—तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए । राम धाम सिख देन पठाए ॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा । द्वार आइ पद नायउ माथा ॥ १ ॥

तब राजाने वसिष्ठजीको बुलाया और शिक्षा (समयोचित उपदेश) देनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके महलमें भेजा । गुरुका आगमन सुनते ही श्रीरघुनाथजीने दरवाजेपर आकर उनके चरणोंमें मस्तक नवाया ॥ १ ॥

सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी । बोले रामु कमल कर जोरी ॥ २ ॥

आदरपूर्वक अर्घ्य देकर उन्हें घरमें लाये और षोडशोपचारसे पूजा करके उनका सम्मान किया । फिर सीताजीसहित उनके चरण स्पर्श किये और कमलके समान दोनों हाथोंको जोड़कर श्रीरामजी बोले—॥ २ ॥

सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगल मूल अमंगल दमनू ॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती । पठइअ काज नाथ असि नीती ॥ ३ ॥

यद्यपि सेवकके घर स्वामीका पधारना मङ्गलोंका मूल और अमङ्गलोंका नाश करनेवाला होता है, तथापि हे नाथ ! उचित तो यही था कि प्रेमपूर्वक दासको ही कार्यके लिये बुला भेजते; ऐसी ही नीति है ॥ ३ ॥

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू । भयउ पुनीत आजु यहु गेहू ॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं । सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं ॥ ४ ॥

परंतु प्रभु (आप) ने प्रभुता छोड़कर (स्वयं यहाँ पधारकर) जो स्नेह किया इससे आज यह घर पवित्र हो गया । हे गोसाईं ! [अब] जो आज्ञा हो, मैं वही करूँ । स्वामीकी सेवामें ही सेवकका लाभ है ॥ ४ ॥

दो०—सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस ।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस ॥ ९ ॥

[श्रीरामचन्द्रजीके] प्रेममें सने हुए वचनोंको सुनकर मुनि वसिष्ठजीने श्रीरघुनाथजीकी प्रशंसा करते हुए कहा कि हे राम ! भला, आप ऐसा क्यों न कहें। आप सूर्यवंशके भूषण जो हैं ॥ ९ ॥

चौ०—बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुण, शील और स्वभावका बखानकर, मुनिराज प्रेमसे पुलकित होकर बोले—[हे रामचन्द्रजी !] राजा [दशरथजी] ने राज्याभिषेककी तैयारी की है। वे आपको युवराज-पद देना चाहते हैं ॥१॥

राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहै काजू॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदयँ अस बिसमउ भयऊ॥ २॥

[इसलिये] हे रामजी ! आज आप [उपवास-हवन आदि विधि-पूर्वक] सब संयम कीजिये, जिससे विधाता कुशलपूर्वक इस कामको निबाह दें (सफल कर दें)। गुरुजी शिक्षा देकर राजा दशरथजीके पास चले गये। श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें [यह सुनकर] इस बातका खेद हुआ कि—॥२॥

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥ ३॥

हम सब भाई एक ही साथ जन्मे, खाना, सोना, लड़कपनके खेल-कूद, कनछेदन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि उत्सव सब साथ-साथ ही हुए ॥३॥

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥ ४॥

पर इस निर्मल वंशमें यही एक अनुचित बात हो रही है कि और सब भाइयोंको छोड़कर राज्याभिषेक एक बड़ेका ही (मेरा ही) होता है। [तुलसीदासजी कहते हैं कि] प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका यह सुन्दर प्रेमपूर्ण पछतावा भक्तोंके मनकी कुटिलताको हरण करे ॥ ४ ॥

दो०—तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरवचंद॥ १०॥

उसी समय प्रेम और आनन्दमें मग्न लक्ष्मणजी आये। रघुकुलरूपी कुमुदके खिलानेवाले चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजीने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया ॥ १० ॥

चौ०—बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना ॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं ॥ १ ॥

बहुत प्रकारके बाजे बज रहे हैं। नगरके अतिशय आनन्दका वर्णन नहीं हो सकता। सब लोग भरतजीका आगमन मना रहे हैं, और कह रहे हैं कि वे भी शीघ्र आवें और [राज्याभिषेकका उत्सव देखकर] नेत्रोंका फल प्राप्त करें ॥ १ ॥

हाट बाट घर गलीं अथाईं। कहहिं परसपर लोग लोगाईं ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥ २ ॥

बाजार, रास्ते, घर, गली और चबूतरोंपर (जहाँ-तहाँ) पुरुष और स्त्री आपसमें यही कहते हैं कि 'कल वह शुभ लग्न (मुहूर्त) कितने समय है जब विधाता हमारी अभिलाषा पूरी करेंगे' ॥ २ ॥

कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥ ३ ॥

जब सीताजीसहित श्रीरामचन्द्रजी सुवर्णके सिंहासनपर विराजेंगे और हमारा मनचीता होगा (मनःकामना पूरी होगी)। इधर तो सब यह कह रहे हैं कि कल कब होगा, उधर कुचक्री देवता विघ्न मना रहे हैं ॥ ३ ॥

तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहि चंदिनि राति न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं ॥ ४ ॥

उन्हें (देवताओंको) अवधके बधावे नहीं सुहाते, जैसे चोरको चाँदनी रात नहीं भाती। सरस्वतीजीको बुलाकर देवता विनय कर रहे हैं और बार-बार उनके पैरोंको पकड़कर उनपर गिरते हैं ॥ ४ ॥

दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ॥ ११ ॥

[वे कहते हैं—] हे माता! हमारी बड़ी विपत्तिको देखकर आज वही कीजिये जिससे श्रीरामचन्द्रजी राज्य त्यागकर वनको चले जायँ और देवताओंका सब कार्य सिद्ध हो ॥ ११ ॥

चौ०—सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज बिपिन हिमराती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ॥ १ ॥

देवताओंकी विनती सुनकर सरस्वतीजी खड़ी-खड़ी पछता रही हैं कि [हाय!] मैं कमलवनके लिये हेमन्त ऋतुकी रात हुई। उन्हें इस प्रकार

पछताते देखकर देवता फिर विनय करके कहने लगे—हे माता! इसमें आपको जरा भी दोष न लगेगा ॥ १ ॥

बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी॥ २॥

श्रीरघुनाथजी विषाद और हर्षसे रहित हैं। आप तो श्रीरामजीके सब प्रभावको जानती ही हैं। जीव अपने कर्मवश ही सुख-दुःखका भागी होता है। अतएव देवताओंके हितके लिये आप अयोध्या जाइये॥ २॥

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥ ३॥

बार-बार चरण पकड़कर देवताओंने सरस्वतीको संकोचमें डाल दिया। तब वह यह विचारकर चली कि देवताओंकी बुद्धि ओछी है। इनका निवास तो ऊँचा है पर इनकी करनी नीची है। ये दूसरोंका ऐश्वर्य नहीं देख सकते॥ ३॥

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदयँ दसरथपुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई॥ ४॥

परंतु आगेके कामका विचार करके (श्रीरामजीके वन जानेसे राक्षसोंका वध होगा, जिससे सारा जगत् सुखी हो जायगा) चतुर कवि [श्रीरामजीके वनवासके चरित्रोंका वर्णन करनेके लिये] मेरी चाह (कामना) करेंगे। ऐसा विचारकर सरस्वती हृदयमें हर्षित होकर दशरथजीकी पुरी अयोध्यामें आयीं, मानो दुःसह दुःख देनेवाली कोई ग्रहदशा आयी हो॥ ४॥

दो०—**नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।**
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥ १२॥

मन्थरा नामकी कैकेयीकी एक मन्दबुद्धि दासी थी, उसे अपयशकी पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धिको फेरकर चली गयीं॥ १२॥

चौ०—**दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥**
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू॥ १॥

मन्थराने देखा कि नगर सजाया हुआ है। सुन्दर मङ्गलमय बधावे बज रहे हैं। उसने लोगोंसे पूछा कि कैसा उत्सव है? [उनसे] श्रीरामचन्द्रजीके राजतिलककी बात सुनते ही उसका हृदय जल उठा॥ १॥

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती॥ २॥

वह दुर्बुद्धि, नीच जातिवाली दासी विचार करने लगी कि किस प्रकारसे यह काम रात-ही-रातमें बिगड़ जाय, जैसे कोई कुटिल भीलनी शहदका छत्ता लगा देखकर घात लगाती है कि इसको किस तरहसे उखाड़ लूँ ॥ २ ॥

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥

ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥ ३ ॥

वह उदास होकर भरतजीकी माता कैकेयीके पास गयी। रानी कैकेयीने हँसकर कहा—तू उदास क्यों है? मन्थरा कुछ उत्तर नहीं देती, केवल लंबी साँस ले रही है और त्रियाचरित्र करके आँसू ढरका रही है ॥ ३ ॥

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें ॥

तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि ॥ ४ ॥

रानी हँसकर कहने लगी कि तेरे बड़े गाल हैं (तू बहुत बढ़-बढ़कर बोलनेवाली है)। मेरा मन कहता है कि लक्ष्मणने तुझे कुछ सीख दी है (दण्ड दिया है)। तब भी वह महापापिनी दासी कुछ भी नहीं बोलती। ऐसी लंबी साँस छोड़ रही है मानो काली नागिन [फुफकार छोड़ रही] हो ॥ ४ ॥

दो०—सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु ॥ १३ ॥

तब रानीने डरकर कहा—अरी! कहती क्यों नहीं? श्रीरामचन्द्र, राजा, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशलसे तो हैं? यह सुनकर कुबरी मन्थराके हृदयमें बड़ी ही पीड़ा हुई ॥ १३ ॥

चौ०—कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई ॥

रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू ॥ १ ॥

[वह कहने लगी—] हे माई! हमें कोई क्यों सीख देगा और मैं किसका बल पाकर गाल करूँगी (बढ़-बढ़कर बोलूँगी)? रामचन्द्रको छोड़कर आज और किसकी कुशल है, जिन्हें राजा युवराज-पद दे रहे हैं? ॥ १ ॥

भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन ॥

देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥ २ ॥

आज कौसल्याको विधाता बहुत ही दाहिने (अनुकूल) हुए हैं, यह देखकर उनके हृदयमें गर्व समाता नहीं। तुम स्वयं जाकर सब शोभा क्यों नहीं देख लेतीं, जिसे देखकर मेरे मनमें क्षोभ हुआ है ॥ २ ॥

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें ॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई ॥ ३ ॥

तुम्हारा पुत्र परदेशमें है, तुम्हें कुछ सोच नहीं। जानती हो कि स्वामी हमारे वशमें हैं। तुम्हें तो तोशक-पलंगपर पड़े-पड़े नींद लेना ही बहुत प्यारा लगता है, राजाकी कपटभरी चतुराई तुम नहीं देखतीं ॥ ३ ॥

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी ॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥ ४ ॥

मन्थराके प्रिय वचन सुनकर किन्तु उसको मनकी मैली जानकर रानी झुककर (डाँटकर) बोली—बस, अब चुप रह घरफोड़ी कहींकी ! जो फिर कभी ऐसा कहा तो तेरी जीभ पकड़कर निकलवा लूँगी ॥ ४ ॥

दो०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥ १४ ॥

कानों, लँगड़ों और कुबड़ोंको कुटिल और कुचाली जानना चाहिये। उनमें भी स्त्री और खासकर दासी ! इतना कहकर भरतजीकी माता कैकेयी मुस्करा दीं ॥ १४ ॥

चौ०—प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥ १ ॥

[और फिर बोलीं—] हे प्रिय वचन कहनेवाली मन्थरा ! मैंने तुझको यह सीख दी है (शिक्षाके लिये इतनी बात कही है)। मुझे तुझपर स्वप्नमें भी क्रोध नहीं है। सुन्दर मङ्गलदायक शुभ दिन वही होगा जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा (अर्थात् श्रीरामका राज्यतिलक होगा) ॥ १ ॥

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली ॥ २ ॥

बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है। यह सूर्यवंशकी सुहावनी रीति ही है। यदि सचमुच कल ही श्रीरामका तिलक है, तो हे सखी ! तेरे मनको अच्छी लगे वही वस्तु माँग ले, मैं दूँगी ॥ २ ॥

कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायँ पिआरी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥ ३ ॥

रामको सहज स्वभावसे सब माताएँ कौसल्याके समान ही प्यारी हैं। मुझपर तो वे विशेष प्रेम करते हैं। मैंने उनकी प्रीतिकी परीक्षा करके देख ली है ॥ ३ ॥

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू । होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें ॥४॥

जो विधाता कृपा करके जन्म दें, तो [यह भी दें कि] श्रीरामचन्द्र पुत्र और सीता बहू हों । श्रीराम मुझे प्राणोंसे अधिक प्रिय हैं । उनके तिलकसे (उनके तिलककी बात सुनकर) तुझे क्षोभ कैसा ? ॥ ४ ॥

दो०—भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ ॥ १५ ॥

तुझे भरतकी सौगंध है, छल-कपट छोड़कर सच-सच कह । तू हर्षके समय विषाद कर रही है, मुझे इसका कारण सुना ॥ १५ ॥

चौ०—एकहिं बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरै जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ॥ १ ॥

[मन्थराने कहा—] सारी आशाएँ तो एक ही बार कहनेमें पूरी हो गयीं । अब तो दूसरी जीभ लगाकर कुछ कहूँगी । मेरा अभागा कपाल तो फोड़ने ही योग्य है, जो अच्छी बात कहनेपर भी आपको दुःख होता है ॥१॥

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती । नाहिं त मौन रहब दिनु राती ॥ २ ॥

जो झूठी-सच्ची बातें बनाकर कहते हैं, हे माई ! वे ही तुम्हें प्रिय हैं और मैं कड़वी लगती हूँ । अब मैं भी ठकुरसुहाती (मुँहदेखी) कहा करूँगी । नहीं तो दिन-रात चुप रहूँगी ॥ २ ॥

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥ ३ ॥

विधाताने कुरूप बनाकर मुझे परवश कर दिया ! [दूसरेको क्या दोष] जो बोया सो काटती हूँ, दिया सो पाती हूँ । कोई भी राजा हो, हमारी क्या हानि है ? दासी छोड़कर क्या अब मैं रानी होऊँगी ! (अर्थात् रानी तो होनेसे रही) ॥ ३ ॥

जारै जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
तातें कछुक बात अनुसारी । छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी ॥ ४ ॥

हमारा स्वभाव तो जलाने ही योग्य है । क्योंकि तुम्हारा अहित मुझसे देखा नहीं जाता । इसीलिये कुछ बात चलायी थी । किन्तु हे देवि ! हमारी बड़ी भूल हुई, क्षमा करो ॥ ४ ॥

दो०—गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि ।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ॥ १६ ॥

आधाररहित (अस्थिर) बुद्धिकी स्त्री और देवताओंकी मायाके वशमें होनेके कारण रहस्ययुक्त कपटभरे प्रिय वचनोंको सुनकर रानी कैकेयीने बैरिन मन्थराको अपनी सुहृद् (अहैतुक हित करनेवाली) जानकर उसका विश्वास कर लिया ॥ १६ ॥

चौ०—सादर पुनि पुनि पूँछति ओही । सबरी गान मृगी जनु मोही ॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी । रहसी चेरि घात जनु फाबी ॥ १ ॥

बार-बार रानी उससे आदरके साथ पूछ रही हैं, मानो भीलनीके गानसे हिरनी मोहित हो गयी हो । जैसी भावी (होनहार) है, वैसी बुद्धि भी फिर गयी । दासी अपना दाँव लगा जानकर हर्षित हुई ॥ १ ॥

तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ । धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली । अवध साढ़साती तब बोली ॥ २ ॥

तुम पूछती हो, किन्तु मैं कहते डरती हूँ । क्योंकि तुमने पहले ही मेरा नाम घरफोड़ी रख दिया है । बहुत तरहसे गढ़-छोलकर, खूब विश्वास जमाकर, तब वह अयोध्याकी साढ़साती (शनिकी साढ़े सात वर्षकी दशारूपी मन्थरा) बोली—॥ २ ॥

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी । रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते ॥ ३ ॥

हे रानी ! तुमने जो कहा कि मुझे सीताराम प्रिय हैं और रामको तुम प्रिय हो, सो यह बात सच्ची है । परन्तु यह बात पहले थी, वे दिन अब बीत गये । समय फिर जानेपर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं ॥ ३ ॥

भानु कमल कुल पोषनिहारा । बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु करि उपाउ बर बारी ॥ ४ ॥

सूर्य कमलके कुलका पालन करनेवाला है पर बिना जलके वही सूर्य उनको (कमलोंको) जलाकर भस्म कर देता है । सौत कौसल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है । अतः उपायरूपी श्रेष्ठ बाड़ (घेरा) लगाकर उसे रूँध दो (सुरक्षित कर दो) ॥ ४ ॥

दो०—तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ ।
मन मलीन मुह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ ॥ १७ ॥

तुमको अपने सुहागके [झूठे] बलपर कुछ भी सोच नहीं है; राजाको अपने वशमें जानती हो किन्तु राजा मनके मैले और मुँहके मीठे हैं। और आपका सीधा स्वभाव है (आप कपट-चतुराई जानती ही नहीं) ॥ १७ ॥

चौ०—चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठए भरत भूप ननिअउरें। राममातु मत जानब रउरें ॥ १ ॥

रामकी माता (कौसल्या) बड़ी चतुर और गम्भीर है (उसकी थाह कोई नहीं पाता) उसने मौका पाकर अपनी बात बना ली ! राजाने जो भरतको ननिहाल भेज दिया, उसमें आप, बस, रामकी माताकी ही सलाह समझिये ! ॥ १ ॥

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरतमातु बल पी कें ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥ २ ॥

[कौसल्या समझती है कि] और सब सौतें तो मेरी अच्छी तरह सेवा करती हैं। एक भरतकी माँ पतिके बलपर गर्वित रहती है। इसीसे हे माई ! कौसल्याको तुम बहुत ही साल (खटक) रही हो। किन्तु वह कपट करनेमें चतुर है; अतः उसके हृदयका भाव जाननेमें नहीं आता (वह उसे चतुरतासे छिपाये रखती है) ॥ २ ॥

राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई ॥ ३ ॥

राजाका तुमपर विशेष प्रेम है। कौसल्या सौतके स्वभावसे उसे देख नहीं सकती। इसीलिये उसने जाल रचकर राजाको अपने वशमें करके, [भरतकी अनुपस्थितिमें] रामके राजतिलकके लिये लग्न निश्चय करा लिया ! ॥ ३ ॥

यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥ ४ ॥

रामको तिलक हो, यह कुल (रघुकुल) के उचित ही है और यह बात सभीको सुहाती है, और मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती है। परन्तु मुझे तो आगेकी बात विचारकर डर लगता है। दैव उलटकर इसका फल उसी (कौसल्या) को दे ॥ ४ ॥

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ॥ १८ ॥

इस तरह करोड़ों कुटिलपनकी बातें गढ़-छोलकर मन्थराने कैकेयीको उलटा-सीधा समझा दिया और सैकड़ों सौतोंकी कहानियाँ इस प्रकार [बना-बनाकर] कहीं, जिस प्रकार विरोध बढ़े ॥ १८ ॥

चौ०—भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना । निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥ १ ॥

होनहारवश कैकेयीके मनमें विश्वास हो गया । रानी फिर सौगन्ध दिलाकर पूछने लगी । [मन्थरा बोली—] क्या पूछती हो ? अरे, तुमने अब भी नहीं समझा ? अपने भले-बुरेको (अथवा मित्र-शत्रुको) तो पशु भी पहचान लेते हैं ॥ १ ॥

भयउ पाख दिन सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें । सत्य कहें नहिं दोषु हमारें ॥ २ ॥

पूरा पखवाड़ा बीत गया सामान सजते और तुमने खबर पायी है आज मुझसे ! मैं तुम्हारे राजमें खाती-पहनती हूँ, इसलिये सच कहनेमें मुझे कोई दोष नहीं है ॥ २ ॥

जौं असत्य कछु कहब बनाई । तौ बिधि देइहि हमहि सजाई ॥
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ । तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ ॥ ३ ॥

यदि मैं कुछ बनाकर झूठ कहती होऊँगी तो विधाता मुझे दण्ड देगा । यदि कल रामको राजतिलक हो गया तो [समझ रखना कि] तुम्हारे लिये विधाताने विपत्तिका बीज बो दिया ॥ ३ ॥

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी । भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥ ४ ॥

मैं यह बात लकीर खींचकर बलपूर्वक कहती हूँ, हे भामिनी ! तुम तो अब दूधकी मक्खी हो गयीं ! (जैसे दूधमें पड़ी हुई मक्खीको लोग निकालकर फेंक देते हैं, वैसे ही तुम्हें भी लोग घरसे निकाल बाहर करेंगे) जो पुत्रसहित [कौसल्याकी] चाकरी बजाओगी तो घरमें रह सकोगी; [अन्यथा घरमें रहनेका] दूसरा उपाय नहीं ॥ ४ ॥

दो०—कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब ।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब ॥ १९ ॥

कद्रूने विनताको दुःख दिया था, तुम्हें कौसल्या देगी। भरत कारागारका सेवन करेंगे (जेलकी हवा खायेंगे) और लक्ष्मण रामके नायब (सहकारी) होंगे ॥ १९ ॥

चौ०—कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी ॥ १ ॥

कैकेयी मन्थराकी कड़वी वाणी सुनते ही डरकर सूख गयी, कुछ बोल नहीं सकती, शरीरमें पसीना हो आया और वह केलेकी तरह काँपने लगी। तब कुबरी (मन्थरा) ने अपनी जीभ दाँतों-तले दबायी (उसे भय हुआ कि कहीं भविष्यका अत्यन्त डरावना चित्र सुनकर कैकेयीके हृदयकी गति न रुक जाय, जिससे उलटा सारा काम ही बिगड़ जाय) ॥१॥

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली ॥ २ ॥

फिर कपटकी करोड़ों कहानियाँ कह-कहकर उसने रानीको खूब समझाया कि धीरज रक्खो! कैकेयीका भाग्य पलट गया, उसे कुचाल प्यारी लगी। वह बगुलीको हंसिनी मानकर (वैरिनको हित मानकर) उसकी सराहना करने लगी ॥ २ ॥

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोहबस अपने ॥ ३ ॥

कैकेयीने कहा—मन्थरा! सुन, तेरी बात सत्य है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़का करती है। मैं प्रतिदिन रातको बुरे स्वप्न देखती हूँ; किन्तु अपने अज्ञानवश तुझसे कहती नहीं ॥ ३ ॥

काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ ॥ ४ ॥

सखी! क्या करूँ, मेरा तो सीधा स्वभाव है। मैं दायाँ-बायाँ कुछ भी नहीं जानती ॥ ४ ॥

दो०—अपनें चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह ॥ २० ॥

अपनी चलते (जहाँतक मेरा वश चला) मैंने आजतक कभी किसीका बुरा नहीं किया। फिर न जाने किस पापसे दैवने मुझे एक ही साथ यह दुःसह दुःख दिया ॥ २० ॥

चौ०—नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही ॥ १ ॥

मैं भले नैहर जाकर वहीं जीवन बिता दूँगी। पर जीते-जी सौतकी चाकरी नहीं करूँगी। दैव जिसको शत्रुके वशमें रखकर जिलाता है, उसके लिये तो जीनेकी अपेक्षा मरना ही अच्छा है ॥ १ ॥

दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तियमाया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना ॥ २ ॥

रानीने बहुत प्रकारके दीन वचन कहे। उन्हें सुनकर कुबरीने त्रिया-चरित्र फैलाया। [वह बोली—] तुम मनमें ग्लानि मानकर ऐसा क्यों कह रही हो, तुम्हारा सुख-सुहाग दिन-दिन दूना होगा ॥ २ ॥

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका ॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि ॥ ३ ॥

जिसने तुम्हारी बुराई चाही है, वही परिणाममें यह (बुराईरूप) फल पायेगी। हे स्वामिनि ! मैंने जबसे यह कुमत सुना है, तबसे मुझे न तो दिनमें कुछ भूख लगती है और न रातमें नींद ही आती है ॥ ३ ॥

पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची ॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ ॥ ४ ॥

मैंने ज्योतिषियोंसे पूछा, तो उन्होंने रेखा खींचकर (गणित करके अथवा निश्चयपूर्वक) कहा कि भरत राजा होंगे, यह सत्य बात है। हे भामिनि ! तुम करो, तो उपाय मैं बताऊँ। राजा तुम्हारी सेवाके वशमें हैं ही ॥ ४ ॥

दो०—परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि ॥ २१ ॥

[कैकेयीने कहा—] मैं तेरे कहनेसे कुएँमें गिर सकती हूँ, पुत्र और पतिको भी छोड़ सकती हूँ। जब तू मेरा बड़ा भारी दुःख देखकर कुछ कहती है, तो भला मैं अपने हितके लिये उसे क्यों न करूँगी ॥ २१ ॥

चौ०—कुबरीं करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसें ॥ १ ॥

कुबरीने कैकेयीको [सब तरहसे] कबूल करवाकर (अर्थात् बलिपशु बनाकर) कपटरूप छुरीको अपने [कठोर] हृदयरूपी पत्थरपर टेया (उसकी धारको तेज किया)। रानी कैकेयी अपने निकटके (शीघ्र

आनेवाले) दुःखको कैसे नहीं देखती, जैसे बलिका पशु हरी-हरी घास चरता है [पर यह नहीं जानता कि मौत सिरपर नाच रही है] ॥ १ ॥

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥ २ ॥

मन्थराकी बातें सुननेमें तो कोमल हैं, पर परिणाममें कठोर (भयानक) हैं। मानो वह शहदमें घोलकर जहर पिला रही हो। दासी कहती है— हे स्वामिनि! तुमने मुझको एक कथा कही थी, उसकी याद है कि नहीं? ॥ २ ॥

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥ ३ ॥

तुम्हारे दो वरदान राजाके पास धरोहर हैं। आज उन्हें राजासे माँगकर अपनी छाती ठंढी करो। पुत्रको राज्य और रामको वनवास दो और सौतका सारा आनन्द तुम ले लो ॥ ३ ॥

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥ ४ ॥

जब राजा रामकी सौगंध खा लें, तब वर माँगना, जिससे वचन न टलने पावे। आजकी रात बीत गयी, तो काम बिगड़ जायगा। मेरी बातको हृदयसे प्रिय [या प्राणोंसे भी प्यारी] समझना ॥ ४ ॥

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृहँ जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु॥ २२॥

पापिनी मन्थराने बड़ी बुरी घात लगाकर कहा—कोपभवनमें जाओ। सब काम बड़ी सावधानीसे बनाना, राजापर सहसा विश्वास न कर लेना (उनकी बातोंमें न आ जाना) ॥ २२ ॥

चौ०—कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा॥ १ ॥

कुबरीको रानीने प्राणोंके समान प्रिय समझकर बार-बार उसकी बड़ी बुद्धिका बखान किया और बोली—संसारमें मेरा तेरे समान हितकारी और कोई नहीं है। तू मुझ बही जाती हुईके लिये सहारा हुई है ॥ १ ॥

जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतरि आली॥
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई॥ २ ॥

यदि विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा कर दें तो हे सखी! मैं तुझे आँखोंकी पुतली बना लूँ। इस प्रकार दासीको बहुत तरहसे आदर देकर कैकेयी कोपभवनमें चली गयी॥ २॥

विपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकई केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥ ३॥

विपत्ति (कलह) बीज है, दासी वर्षा-ऋतु है, कैकेयीकी कुबुद्धि [उस बीजके बोनेके लिये] जमीन हो गयी। उसमें कपटरूपी जल पाकर अङ्कुर फूट निकला। दोनों वरदान उस अङ्कुरके दो पत्ते हैं और अन्तमें इसके दुःखरूपी फल होगा॥ ३॥

कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई॥ ४॥

कैकेयी कोपका सब साज सजकर [कोपभवनमें] जा सोयी। राज्य करती हुई वह अपनी दुष्ट बुद्धिसे नष्ट हो गयी। राजमहल और नगरमें धूम-धाम मच रही है। इस कुचालको कोई कुछ नहीं जानता॥ ४॥

दो०—प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार॥ २३॥

बड़े ही आनन्दित होकर नगरके सब स्त्री-पुरुष शुभ मङ्गलाचारके साज सज रहे हैं। कोई भीतर जाता है, कोई बाहर निकलता है; राजद्वारमें बड़ी भीड़ हो रही है॥ २३॥

चौ०—बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानी॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीके बालसखा राजतिलकका समाचार सुनकर हृदयमें हर्षित होते हैं। वे दस-पाँच मिलकर श्रीरामचन्द्रजीके पास जाते हैं। प्रेम पहचानकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उनका आदर करते हैं और कोमल वाणीसे कुशल-क्षेम पूछते हैं॥ १॥

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा॥ २॥

अपने प्रिय सखा श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर वे आपसमें एक-दूसरेसे श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई करते हुए घर लौटते हैं और कहते हैं— संसारमें श्रीरघुनाथजीके समान शील और स्नेहको निबाहनेवाला कौन है!॥ २॥

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू ॥ ३ ॥

भगवान् हमें यही दें कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस-जिस योनिमें जन्में, वहाँ-वहाँ (उस-उस योनिमें) हम तो सेवक हों और सीतापति श्रीरामचन्द्रजी हमारे स्वामी हों, और यह नाता अन्ततक निभ जाय ॥ ३ ॥

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदयँ अति दाहू ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई ॥ ४ ॥

नगरमें सबकी ऐसी ही अभिलाषा है। परन्तु कैकेयीके हृदयमें बड़ी जलन हो रही है। कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता ! नीचके मतके अनुसार चलनेसे चतुराई नहीं रह जाती ॥ ४ ॥

दो०—साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ ॥ २४ ॥

संध्याके समय राजा दशरथ आनन्दके साथ कैकेयीके महलमें गये। मानो साक्षात् स्नेह ही शरीर धारण कर निष्ठुरताके पास गया हो ! ॥२४॥

चौ०—कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ ॥
सुरपति बसइ बाहँबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें ॥ १ ॥

कोपभवनका नाम सुनकर राजा सहम गये। डरके मारे उनका पाँव आगेको नहीं पड़ता। स्वयं देवराज इन्द्र जिनकी भुजाओंके बलपर [राक्षसों-से निर्भय होकर] बसता है और सम्पूर्ण राजालोग जिनका रुख देखते रहते हैं, ॥ १ ॥

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥ २ ॥

वही राजा दशरथ स्त्रीका क्रोध सुनकर सूख गये। कामदेवका प्रताप और महिमा तो देखिये। जो त्रिशूल, वज्र और तलवार आदिकी चोट अपने अङ्गोंपर सहनेवाले हैं, वे रतिनाथ कामदेवके पुष्पबाणसे मारे गये ! ।२।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना ॥ ३ ॥

राजा डरते-डरते अपनी प्यारी कैकेयीके पास गये। उसकी दशा देख-

कर उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। कैकेयी जमीनपर पड़ी है। पुराना मोटा कपड़ा पहने हुए है। शरीरके नाना आभूषणोंको उतारकर फेंक दिया है ॥३॥

कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भाबी ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥ ४ ॥

उस दुर्बुद्धि कैकेयीको यह कुवेषता (बुरा वेश) कैसी फब रही है, मानो भावी विधवापनकी सूचना दे रही हो। राजा उसके पास जाकर कोमल वाणीसे बोले—हे प्राणप्रिये! किसलिये रिसाई (रूठी) हो? ॥४॥

छं०—केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई ॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतब्यता बस काम कौतुक लेखई ॥

'हे रानी! किसलिये रूठी हो?' यह कहकर राजा उसे हाथसे स्पर्श करते हैं तो वह उनके हाथको [झटककर] हटा देती है और ऐसे देखती है मानो क्रोधमें भरी हुई नागिन क्रूर दृष्टिसे देख रही हो। दोनों [वरदानोंकी] वासनाएँ उस नागिनकी दो जीभें हैं, और दोनों वरदान दाँत हैं; वह काटनेके लिये मर्मस्थान देख रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा दशरथ होनहारके वशमें होकर इसे (इस प्रकार हाथ झटकने और नागिनकी भाँति देखनेको) कामदेवकी क्रीड़ा ही समझ रहे हैं।

सो०—बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ॥ २५ ॥

राजा बार-बार कह रहे हैं—हे सुमुखी! हे सुलोचनी! हे कोकिलवचनी! हे गजगामिनी! मुझे अपने क्रोधका कारण तो सुना ॥ २५ ॥

चौ०—अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू ॥ १ ॥

हे प्रिये! किसने तेरा अनिष्ट किया? किसके दो सिर हैं? यमराज किसको लेना (अपने लोकको ले जाना) चाहते हैं? कह, किस कंगालको राजा कर दूँ? या किस राजाको देशसे निकाल दूँ? ॥ १ ॥

सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू ॥ २ ॥

तेरा शत्रु अमर (देवता) भी हो, तो मैं उसे भी मार सकता हूँ।

बेचारे कीड़े मकोड़े-सरीखे नर-नारी तो चीज ही क्या हैं। हे सुन्दरि! तू तो मेरा स्वभाव जानती ही है कि मेरा मन सदा तेरे मुखरूपी चन्द्रमाका चकोर है ॥ २ ॥

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें ॥
जौं कछु कहौं कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही ॥ ३ ॥

हे प्रिये! मेरी प्रजा, कुटुम्बी, सर्वस्व (सम्पत्ति), पुत्र, यहाँतक कि मेरे प्राण भी, ये सब तेरे वशमें (अधीन) हैं। यदि मैं तुझसे कुछ कपट करके कहता होऊँ तो हे भामिनी! मुझे सौ बार रामकी सौगन्ध है ॥ ३ ॥

बिहसि मागु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू ॥ ४ ॥

तू हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक) अपनी मनचाही बात माँग ले और अपने मनोहर अङ्गोंको आभूषणोंसे सजा। मौका-बेमौका तो मनमें विचारकर देख। हे प्रिये! जल्दी इस बुरे वेषको त्याग दे ॥ ४ ॥

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद ॥ २६ ॥

यह सुनकर और मनमें रामजीकी बड़ी सौगन्धको विचारकर मन्दबुद्धि कैकेयी हँसती हुई उठी और गहने पहनने लगी; मानो कोई भीलनी मृगको देखकर फंदा तैयार कर रही हो! ॥ २६ ॥

चौ०—पुनि कह राउ सुहृद जियँ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा ॥ १ ॥

अपने जीमें कैकेयीको सुहृद् जानकर राजा दशरथजी प्रेमसे पुलकित होकर कोमल और सुन्दर वाणीसे फिर बोले—हे भामिनि! तेरा मनचीता हो गया। नगरमें घर-घर आनन्दके बधावे बज रहे हैं ॥ १ ॥

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥ २ ॥

मैं कल ही रामको युवराज-पद दे रहा हूँ। इसलिये हे सुनयनी! तू मङ्गल-साज सज। यह सुनते ही उसका कठोर हृदय दलक उठा (फटने लगा) मानो पका हुआ बालतोड़ (फोड़ा) छू गया हो ॥ २ ॥

ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखहिं न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥ ३ ॥

ऐसी भारी पीड़ाको भी उसने हँसकर छिपा लिया, जैसे चोरकी स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती (जिसमें उसका भेद न खुल जाय)। राजा उसकी कपट-चतुराईको नहीं लख रहे हैं। क्योंकि वह करोड़ों कुटिलोंकी शिरोमणि गुरु मन्थराकी पढ़ायी हुई है ॥ ३ ॥

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू । नारिचरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी । बोली बिहसि नयन मुहु मोरी ॥ ४ ॥

यद्यपि राजा नीतिमें निपुण हैं; परन्तु त्रियाचरित्र अथाह समुद्र है। फिर वह कपटयुक्त प्रेम बढ़ाकर (ऊपरसे प्रेम दिखाकर) नेत्र और मुँह मोड़कर हँसती हुई बोली—॥ ४ ॥

दो०—मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥ २७ ॥

हे प्रियतम ! आप माँग-माँग तो कहा करते हैं, पर देते-लेते कभी कुछ भी नहीं। आपने दो वरदान देनेको कहा था, उनके भी मिलनेमें सन्देह है ॥ २७ ॥

चौ०—जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई । तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न मागिहु काऊ । बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥ १ ॥

राजाने हँसकर कहा कि अब मैं तुम्हारा मर्म (मतलब) समझा ! मान करना तुम्हें परम प्रिय है। तुमने उन वरोंको थाती (धरोहर) रखकर फिर कभी माँगा ही नहीं। और मेरा भूलनेका स्वभाव होनेसे मुझे भी वह प्रसङ्ग याद नहीं रहा ॥ १ ॥

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू । दुइ कै चारि मागि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई ॥ २ ॥

मुझे झूठ-मूठ दोष मत दो। चाहे दोके बदले चार माँग लो। रघुकुलमें सदासे यह रीति चली आयी है कि प्राण भले ही चले जायँ, पर वचन नहीं जाता ॥ २ ॥

नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥ ३ ॥

असत्यके समान पापोंका समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों घुँघचियाँ

मिलकर भी कहीं पहाड़के समान हो सकती हैं। 'सत्य' ही समस्त उत्तम सुकृतों (पुण्यों) की जड़ है। यह बात वेद-पुराणोंमें प्रसिद्ध है और मनुजीने भी यही कहा है ॥ ३ ॥

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥ ४ ॥

उसपर मेरेद्वारा श्रीरामजीकी सपथ करनेमें आ गयी (मुँहसे निकल पड़ी)। श्रीरघुनाथजी मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेहकी सीमा हैं। इस प्रकार बात पक्की कराके दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली मानो उसने कुमत (बुरे विचार) रूपी दुष्ट पक्षी (बाज) [को छोड़नेके लिये उस] की कुलही (आँखोंपरकी टोपी) खोल दी ॥ ४ ॥

दो०—भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचन भयंकरु बाजु ॥ २८ ॥

राजाका मनोरथ सुन्दर वन है, सुख सुन्दर पक्षियोंका समुदाय है। उसपर भीलनीकी तरह कैकेयी अपना वचनरूपी भयंकर बाज छोड़ना चाहती है ॥ २८ ॥

मासपारायण, तेरहवाँ विश्राम

चौ०—सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥ १ ॥

[वह बोली—] हे प्राणप्यारे ! सुनिये। मेरे मनको भानेवाला एक वर तो दीजिये भरतको राजतिलक; और हे नाथ ! दूसरा वर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ, मेरा मनोरथ पूरा कीजिये—॥ १ ॥

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी ॥
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥ २ ॥

तपस्वियोंके वेषमें विशेष उदासीन भावसे (राज्य और कुटुम्ब आदि-की ओरसे भलीभाँति उदासीन होकर विरक्त मुनियोंकी भाँति) राम चौदह वर्षतक वनमें निवास करें। कैकेयीके कोमल (विनययुक्त) वचन सुनकर राजाके हृदयमें ऐसा शोक हुआ जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे चकवा विकल हो जाता है ॥ २ ॥

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥ ३ ॥

राजा सहम गये, उनसे कुछ कहते न बना मानो बाज वनमें बटेरपर झपटा हो। राजाका रंग बिल्कुल उड़ गया मानो ताड़के पेड़को बिजलीने मारा हो (जैसे ताड़के पेड़पर बिजली गिरनेसे वह झुलसकर बदरंगा हो जाता है, वही हाल राजाका हुआ) ॥ ३ ॥

माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥ ४ ॥

माथेपर हाथ रखकर, दोनों नेत्र बंद करके राजा ऐसे सोच करने लगे मानो साक्षात् सोच ही शरीर धारणकर सोच कर रहा हो। [वे सोचते हैं—हाय !] मेरा मनोरथरूपी कल्पवृक्ष फूल चुका था, परन्तु फलते समय कैकेयीने हथिनीकी तरह उसे जड़समेत उखाड़कर नष्ट कर डाला ॥ ४ ॥

अवध उजारि कीन्हि कैकेईं। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं ॥ ५ ॥

कैकेयीने अयोध्याको उजाड़ कर दिया और विपत्तिकी अचल (सुदृढ़) नींव डाल दी ॥ ५ ॥

दो०—कवनें अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास ॥ २९ ॥

किस अवसरपर क्या हो गया ! स्त्रीका विश्वास करके मैं वैसे ही मारा गया जैसे योगकी सिद्धिरूपी फल मिलनेके समय योगीको अविद्या नष्ट कर देती है ॥ २९ ॥

चौ०—एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा ॥
भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ॥ १ ॥

इस प्रकार राजा मन-ही-मन झीख रहे हैं। राजाका ऐसा बुरा हाल देखकर दुर्बुद्धि कैकेयी मनमें बुरी तरहसे क्रोधित हुई। [और बोली—] क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं ? क्या मुझे आप दाम देकर खरीद लाये हैं ? (क्या मैं आपकी विवाहिता पत्नी नहीं हूँ) ॥ १ ॥

जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें ॥
देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं ॥ २ ॥

जो मेरा वचन सुनते ही आपको बाण-सा लगा, तो आप सोच-समझकर बात क्यों नहीं कहते ? उत्तर दीजिये—हाँ कीजिये, नहीं तो नाहीं कर दीजिये। आप रघुवंशमें सत्य प्रतिज्ञावाले [प्रसिद्ध] हैं ! ॥ २ ॥

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना॥ ३॥

आपने ही वर देनेको कहा था अब भले ही न दीजिये। सत्यको छोड़ दीजिये और जगत्‌में अपयश लीजिये। सत्यकी बड़ी सराहना करके वर देनेको कहा था। समझा था कि यह चबेना ही माँग लेगी!॥ ३॥

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा॥
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई॥ ४॥

राजा शिबि, दधीचि और बलिने जो कुछ कहा, शरीर और धन त्यागकर भी उन्होंने अपने वचनकी प्रतिज्ञाको निबाहा। कैकेयी बहुत ही कड़वे वचन कह रही है मानो जलेपर नमक छिड़क रही हो॥ ४॥

दो०—धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ॥३०॥

धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले राजा दशरथने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लंबी साँस लेकर इस प्रकार कहा कि इसने मुझे बड़े कुठौर मारा (ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे बच निकलना कठिन हो गया)॥ ३०॥

चौ०—आगें दीखि जरत रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरीं सान बनाई॥ १॥

प्रचण्ड क्रोधसे जलती हुई कैकेयी सामने इस प्रकार दिखायी पड़ी मानो क्रोधरूपी तलवार नंगी (म्यानसे बाहर) खड़ी हो। कुबुद्धि उस तलवारकी मूठ है, निष्ठुरता धार है और वह कुबरी (मन्थरा) रूपी सानपर धरकर तेज की हुई है॥ १॥

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥ २॥

राजाने देखा कि यह (तलवार) बड़ी ही भयानक और कठोर है [और सोचा—] क्या सत्य ही यह मेरा जीवन लेगी? राजा अपनी छाती कड़ी करके, बहुत ही नम्रताके साथ उसे (कैकेयीको) प्रिय लगनेवाली वाणी बोले—॥ २॥

प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साखी॥ ३॥

हे प्रिये ! हे भीरु ! विश्वास और प्रेमको नष्ट करके ऐसे बुरी तरहके वचन कैसे कह रही हो । मेरे तो भरत और रामचन्द्र दो आँखें (अर्थात् एक-से) हैं; यह मैं शङ्करजीकी साक्षी देकर सत्य कहता हूँ ॥ ३ ॥

अवसि दूतु मैं पठइब प्राता । ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ॥
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई । देउँ भरत कहुँ राजु बजाई ॥ ४ ॥

मैं अवश्य सवेरे ही दूत भेजूँगा । दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) सुनते ही तुरंत आ जायँगे । अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधवाकर, सब तैयारी करके डंका बजाकर मैं भरतको राज्य दे दूँगा ॥ ४ ॥

दो०–लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति ॥३१॥

रामको राज्यका लोभ नहीं है और भरतपर उनका बड़ा ही प्रेम है । मैं ही अपने मनमें बड़े-छोटेका विचार करके राजनीतिका पालन कर रहा था (बड़ेको राजतिलक देने जा रहा था) ॥ ३१ ॥

चौ०–राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काऊ ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें । तेहि तें परेउ मनोरथु छूछें ॥ १ ॥

रामकी सौ बार सौगंध खाकर मैं स्वभावसे ही कहता हूँ कि रामकी माता (कौसल्या) ने [इस विषयमें] मुझसे कभी कुछ नहीं कहा । अवश्य ही मैंने तुमसे बिना पूछे यह सब किया । इसीसे मेरा मनोरथ खाली गया ॥ १ ॥

रिस परिहरु अब मंगल साजू । कछु दिन गएँ भरत जुबराजू ॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा । बर दूसर असमंजस मागा ॥ २ ॥

अब क्रोध छोड़ दे और मङ्गल-साज सज । कुछ ही दिनों बाद भरत युवराज हो जायँगे । एक ही बातका मुझे दुःख लगा कि तूने दूसरा वरदान बड़ी अड़चनका माँगा ॥ २ ॥

अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा । रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा ॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू । सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ॥ ३ ॥

उसकी आँचसे अब भी मेरा हृदय जल रहा है । यह दिल्लगीमें, क्रोधमें अथवा सचमुच ही (वास्तवमें) सच्चा है ? क्रोधको त्यागकर रामका अपराध तो बता । सब कोई तो कहते हैं कि राम बड़े ही साधु हैं ॥ ३ ॥

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥ ४ ॥

तू स्वयं भी रामकी सराहना करती और उनपर स्नेह किया करती थी। अब यह सुनकर मुझे सन्देह हो गया है [कि तुम्हारी प्रशंसा और स्नेह कहीं झूठे तो न थे]। जिसका स्वभाव शत्रुको भी अनुकूल है, वह माताके प्रतिकूल आचरण क्योंकर करेगा ! ॥ ४ ॥

दो०—प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु।
जेहिं देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु ॥३२॥

हे प्रिये ! हँसी और क्रोध छोड़ दे और विवेक (उचित-अनुचित) विचारकर वर माँग, जिससे अब मैं नेत्र भरकर भरतका राज्याभिषेक देख सकूँ ॥ ३२ ॥

चौ०—जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥ १ ॥

मछली चाहे बिना पानीके जीती रहे और साँप भी चाहे बिना मणिके दीन-दुखी होकर जीता रहे। परन्तु मैं स्वभावसे ही कहता हूँ, मनमें [जरा भी] छल रखकर नहीं, कि मेरा जीवन रामके बिना नहीं है ॥१॥

समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥ २ ॥

हे चतुर प्रिये ! जीमें समझ देख, मेरा जीवन श्रीरामके दर्शनके अधीन है। राजाके कोमल वचन सुनकर दुर्बुद्धि कैकेयी अत्यन्त जल रही है। मानो अग्निमें घीकी आहुतियाँ पड़ रही हैं ॥ २ ॥

कहहु करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥ ३ ॥

[कैकेयी कहती है—] आप करोड़ों उपाय क्यों न करें, यहाँ आपकी माया (चालबाजी) नहीं लगेगी। या तो मैंने जो माँगा है सो दीजिये, नहीं तो 'नाहीं' करके अपयश लीजिये। मुझे बहुत प्रपञ्च (बखेड़े) नहीं सुहाते ॥ ३ ॥

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥ ४ ॥

राम साधु हैं, आप सयाने साधु हैं और रामकी माता भी भली हैं;

मैंने सबको पहचान लिया है। कौसल्याने मेरा जैसा भला चाहा है, मैं भी साका करके (याद रखनेयोग्य) उन्हें वैसा ही फल दूँगी ॥ ४ ॥

दो०—होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं ॥३३॥

सबेरा होते ही मुनिका वेष धारणकर यदि राम वनको नहीं जाते, तो हे राजन्! मनमें [निश्चय] समझ लीजिये कि मेरा मरना होगा और आपका अपयश! ॥ ३३ ॥

चौ०—अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥ १ ॥

ऐसा कहकर कुटिल कैकेयी उठ खड़ी हुई। मानो क्रोधकी नदी उमड़ी हो। वह नदी पापरूपी पहाड़से प्रकट हुई है और क्रोधरूपी जलसे भरी है; [ऐसी भयानक है कि] देखी नहीं जाती! ॥ १ ॥

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥ २ ॥

दोनों वरदान उस नदीके दो किनारे हैं, कैकेयीका कठिन हठ ही उसकी [तीव्र] धारा है और कुबरी (मन्थरा) के वचनोंकी प्रेरणा ही भँवर है। [वह क्रोधरूपी नदी] राजा दशरथरूपी वृक्षको जड़-मूलसे ढहाती हुई विपत्तिरूपी समुद्रकी ओर [सीधी] चली है ॥ २ ॥

लखी नरेस बात फुरि साँची । तिय मिस मीचु सीस पर नाची ॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥ ३ ॥

राजाने समझ लिया कि बात सचमुच (वास्तवमें) सच्ची है, स्त्रीके बहाने मेरी मृत्यु ही सिरपर नाच रही है। [तदनन्तर राजाने कैकेयीके] चरण पकड़कर उसे बिठाकर विनती की कि तू सूर्यकुल [रूपी वृक्ष] के लिये कुल्हाड़ी मत बन ॥ ३ ॥

मागु माथ अबहीं देउँ तोही । राम बिरहँ जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती । नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती ॥ ४ ॥

तू मेरा मस्तक माँग ले मैं तुझे अभी दे दूँ। पर रामके विरहमें मुझे मत मार। जिस-किसी प्रकारसे हो तू रामको रख ले। नहीं तो जन्मभर तेरी छाती जलेगी ॥ ४ ॥

दो०—देखी ब्याधि असाध नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ ॥३४॥

राजाने देखा कि रोग असाध्य है, तब वे अत्यन्त आर्तवाणीसे 'हा राम! हा राम! हा रघुनाथ!' कहते हुए सिर पीटकर जमीनपर गिर पड़े ॥ ३४ ॥

चौ०—ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी॥ १॥

राजा व्याकुल हो गये, उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया। मानो हथिनीने कल्पवृक्षको उखाड़ फेंका हो। कण्ठ सूख गया, मुखसे बात नहीं निकलती। मानो पानीके बिना पहिना नामक मछली तड़प रही हो ॥१॥

पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई॥
जौं अंतहुँ अस करतबु रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ॥ २॥

कैकेयी फिर कड़वे और कठोर वचन बोली, मानो घावमें जहर भर रही हो। [कहती है—] जो अन्तमें ऐसा ही करना था, तो आपने 'माँग, माँग' किस बलपर कहा था? ॥ २ ॥

दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥ ३॥

हे राजा! ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना, क्या ये दोनों एक साथ हो सकते हैं? दानी भी कहाना और कंजूसी भी करना! क्या रजपूतीमें क्षेम-कुशल भी रह सकती है? (लड़ाईमें बहादुरी भी दिखावें और कहीं चोट भी न लगे!) ॥ ३ ॥

छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी॥ ४॥

या तो वचन (प्रतिज्ञा) ही छोड़ दीजिये या धैर्य धारण कीजिये। यों असहाय स्त्रीकी भाँति रोइये-पीटिये नहीं। सत्यव्रतीके लिये तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी सब तिनकेके बराबर कहे गये हैं ॥ ४ ॥

दो०—मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर ॥ ३५ ॥

कैकेयीके मर्मभेदी वचन सुनकर राजाने कहा कि तू जो चाहे कह, तेरा कुछ भी दोष नहीं है। मेरा काल तुझे मानो पिशाच होकर लग गया है, वही तुझसे यह सब कहला रहा है ॥ ३५ ॥

चौ०—चहत न भरत भूपतहि भोरें। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें॥
सो सबु मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू॥ १॥

भरत तो भूलकर भी राजपद नहीं चाहते। होनहारवश तेरे ही जीमें कुमति आ बसी। यह सब मेरे पापोंका परिणाम है, जिससे कुसमयमें (बेमौके) विधाता विपरीत हो गया॥ १॥

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥ २॥

[तेरी उजाड़ी हुई] यह सुन्दर अयोध्या फिर भलीभाँति बसेगी और समस्त गुणोंके धाम श्रीरामकी प्रभुता भी होगी। सब भाई उनकी सेवा करेंगे और तीनों लोकोंमें श्रीरामकी बड़ाई होगी॥ २॥

तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई॥ ३॥

केवल तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरनेपर भी नहीं मिटेगा, यह किसी तरह नहीं जायगा। अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर। मुँह छिपाकर मेरी आँखोंकी ओट जा बैठ (अर्थात् मेरे सामनेसे हट जा, मुझे मुँह न दिखा)॥ ३॥

जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू लागी॥ ४॥

मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जबतक मैं जीता रहूँ, तबतक फिर कुछ न कहना (अर्थात् मुझसे न बोलना)। अरी अभागिनी! फिर तू अन्तमें पछतायेगी जो तू नहारू (ताँत) के लिये गायको मार रही है॥ ४॥

दो०—परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु॥३६॥

राजा करोड़ों प्रकारसे (बहुत तरहसे) समझाकर [और यह कह-कर] कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है, पृथ्वीपर गिर पड़े। पर कपट करनेमें चतुर कैकेयी कुछ बोलती नहीं, मानो [मौन होकर] मसान जगा रही हो (श्मशानमें बैठकर प्रेतमन्त्र सिद्ध कर रही हो)॥ ३६॥

चौ०—राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई॥ १॥

राजा 'राम-राम' रट रहे हैं और ऐसे व्याकुल हैं जैसे कोई पक्षी पंखके बिना बेहाल हो। वे अपने हृदयमें मनाते हैं कि सवेरा न हो, और कोई जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे यह बात न कहे ॥ १ ॥

उदउ करहु जनि रबि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर ॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई ॥ २ ॥

हे रघुकुलके गुरु (बड़ेरे, मूलपुरुष) सूर्य भगवान्! आप अपना उदय न करें। अयोध्याको [बेहाल] देखकर आपके हृदयमें बड़ी पीड़ा होगी। राजाकी प्रीति और कैकेयीकी निष्ठुरता दोनोंको ब्रह्माने सीमातक रचकर बनाया है (अर्थात् राजा प्रेमकी सीमा हैं और कैकेयी निष्ठुरताकी) ॥२॥

बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा ॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक ॥ ३ ॥

विलाप करते-करते ही राजाको सवेरा हो गया। राजद्वारपर वीणा, बाँसुरी और शङ्खकी ध्वनि होने लगी। भाट लोग विरुदावली पढ़ रहे हैं और गवैये गुणोंका गान कर रहे हैं। सुननेपर राजाको वे बाण-जैसे लगते हैं ॥ ३ ॥

मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि बिभूषन जैसें ॥
तेहिं निसि नीद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू ॥ ४ ॥

राजाको ये सब मङ्गल-साज कैसे नहीं सुहा रहे हैं जैसे पतिके साथ सती होनेवाली स्त्रीको आभूषण। श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसा और उत्साहके कारण उस रात्रिमें किसीको भी नींद नहीं आयी ॥ ४ ॥

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि ॥ ३७ ॥

राजद्वारपर मन्त्रियों और सेवकोंकी भीड़ लगी है। वे सब सूर्यको उदय हुआ देखकर कहते हैं कि ऐसा कौन-सा विशेष कारण है कि अवधपति दशरथजी अभीतक नहीं जागे ॥ ३७ ॥

चौ०—पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा ॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई ॥ १ ॥

राजा नित्य ही रातके पिछले पहर जागा करते हैं, किन्तु आज हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे सुमन्त्र! जाओ, जाकर राजाको जगाओ। उनकी आज्ञा पाकर हम सब काम करें ॥ १ ॥

गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं ॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा ॥ २ ॥

तब सुमन्त्र रावले (राजमहल) में गये, पर महलको भयानक देखकर वे जाते हुए डर रहे हैं। [ऐसा लगता है] मानो दौड़कर काट खायगा, उसकी ओर देखा भी नहीं जाता। मानो विपत्ति और विषादने वहाँ डेरा डाल रक्खा हो ॥ २ ॥

पूछें कोउ न ऊतरु देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई ॥
कहि जयजीव बैठ सिरु नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई ॥ ३ ॥

पूछनेपर कोई जवाब नहीं देता; वे उस महलमें गये जहाँ राजा और कैकेयी थे। 'जय-जीव' कहकर, सिर नवाकर (वन्दना करके) बैठे और राजाकी दशा देखकर तो वे सूख ही गये ॥ ३ ॥

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ ॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी ॥ ४ ॥

[देखा कि—] राजा सोचसे व्याकुल हैं, चेहरेका रंग उड़ गया है। जमीनपर ऐसे पड़े हैं मानो कमल जड़ छोड़कर (जड़से उखड़कर) [मुर्झाया] पड़ा हो। मन्त्री मारे डरके कुछ पूछ नहीं सकते। तब अशुभसे भरी हुई और शुभसे विहीन कैकेयी बोली—॥ ४ ॥

दो०—परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु ॥ ३८ ॥

राजाको रातभर नींद नहीं आयी, इसका कारण जगदीश्वर ही जानें। इन्होंने 'राम-राम' रटकर सबेरा कर दिया, परन्तु इसका भेद राजा कुछ भी नहीं बतलाते ॥ ३८ ॥

चौ०—आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई ॥
चले सुमंत्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥ १ ॥

तुम जल्दी रामको बुला लाओ। तब आकर समाचार पूछना। राजाका रुख जानकर सुमन्त्रजी चले, समझ गये कि रानीने कुछ कुचाल की है ॥ १ ॥

सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ ॥
उर धरि धीरजु गयउ दुआरें। पूँछहिं सकल देखि मनु मारें ॥ २ ॥

सुमन्त्र सोचसे व्याकुल हैं, रास्तेपर पैर नहीं पड़ता (आगे बढ़ा

नहीं जाता), [सोचते हैं—] रामजीको बुलाकर राजा क्या कहेंगे ? किसी तरह हृदयमें धीरज धरकर वे द्वारपर गये। सब लोग उनको मन मारे (उदास) देखकर पूछने लगे ॥ २ ॥

समाधानु करि सो सबही का। गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥ ३ ॥

सब लोगोंका समाधान करके (किसी तरह समझा-बुझाकर) सुमन्त्र वहाँ गये जहाँ सूर्यकुलके तिलक श्रीरामचन्द्रजी थे। श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रको आते देखा तो पिताके समान समझकर उनका आदर किया ॥ ३ ॥

निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई ॥
रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके मुखको देखकर और राजाकी आज्ञा सुनाकर वे रघुकुलके दीपक श्रीरामचन्द्रजीको [अपने साथ] लिवा चले। श्रीरामचन्द्रजी मन्त्रीके साथ बुरी तरहसे (बिना किसी लवाजमेके) जा रहे हैं, यह देखकर लोग जहाँ-तहाँ विषाद कर रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥३९॥

रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजीने जाकर देखा कि राजा अत्यन्त ही बुरी हालतमें पड़े हैं, मानो सिंहनीको देखकर कोई बूढ़ा गजराज सहमकर गिर पड़ा हो ॥ ३९ ॥

चौ०—सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ॥
सरुष समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई ॥ १ ॥

राजाके ओठ सूख रहे हैं और सारा शरीर जल रहा है। मानो मणिके बिना साँप दुखी हो रहा हो। पास ही क्रोधसे भरी कैकेयीको देखा, मानो [साक्षात्] मृत्यु ही बैठी [राजाके जीवनकी अन्तिम] घड़ियाँ गिन रही हो ॥ १ ॥

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव कोमल और करुणामय है। उन्होंने [अपने जीवनमें] पहली बार यह दुःख देखा; इससे पहले कभी उन्होंने

दुःख सुना भी न था। तो भी समयका विचार करके हृदयमें धीरज धरकर उन्होंने मीठे वचनोंसे माता कैकेयीसे पूछा—॥ २ ॥

मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥ ३ ॥

हे माता! मुझे पिताजीके दुःखका कारण कहो, ताकि जिससे उसका निवारण हो (दुःख दूर हो) वह यत्न किया जाय। [कैकेयीने कहा—] हे राम! सुनो, सारा कारण यही है कि राजाका तुमपर बहुत स्नेह है ॥३॥

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ॥ ४ ॥

इन्होंने मुझे दो वरदान देनेको कहा था। मुझे जो कुछ अच्छा लगा, वही मैंने माँगा। उसे सुनकर राजाके हृदयमें सोच हो गया; क्योंकि ये तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते ॥ ४ ॥

दो०–सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥ ४० ॥

इधर तो पुत्रका स्नेह है और उधर वचन (प्रतिज्ञा); राजा इसी धर्मसंकटमें पड़ गये हैं। यदि तुम कर सकते हो, तो राजाकी आज्ञा शिरोधार्य करो और इनके कठिन क्लेशको मिटाओ ॥ ४० ॥

चौ०–निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना ॥ १ ॥

कैकेयी बेधड़क बैठी ऐसी कड़वी वाणी कह रही है जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठी। जीभ धनुष है, वचन बहुत-से तीर हैं और मानो राजा ही कोमल निशानेके समान हैं ॥ १ ॥

जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखइ धनुषबिद्या बर बीरू ॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥ २ ॥

[इस सारे साज-सामानके साथ] मानो स्वयं कठोरपन श्रेष्ठ वीरका शरीर धारण करके धनुषविद्या सीख रहा है। श्रीरघुनाथजीको सब हाल सुनाकर वह ऐसे बैठी है मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये हुए हो ॥ २ ॥

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू ॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन ॥ ३ ॥

सूर्यकुलके सूर्य, स्वाभाविक ही आनन्दनिधान श्रीरामचन्द्रजी मनमें

मुसकराकर सब दूषणोंसे रहित ऐसे कोमल और सुन्दर वचन बोले जो मानो वाणीके भूषण ही थे—॥ ३ ॥

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥ ४ ॥

हे माता! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है जो पिता-माताके वचनोंका अनुरागी (पालन करनेवाला) है। [आज्ञा-पालनके द्वारा] माता-पिताको सन्तुष्ट करनेवाला पुत्र, हे जननी! सारे संसारमें दुर्लभ है ॥ ४ ॥

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥ ४१ ॥

वनमें विशेषरूपसे मुनियोंका मिलाप होगा, जिसमें मेरा सभी प्रकारसे कल्याण है। उसमें भी, फिर पिताजीकी आज्ञा और हे जननी! तुम्हारी सम्मति है, ॥ ४१ ॥

चौ०—भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ॥ १ ॥

और प्राणप्रिय भरत राज्य पावेंगे। [इन सभी बातोंको देखकर यह प्रतीत होता है कि] आज विधाता सब प्रकारसे मुझे सम्मुख हैं (मेरे अनुकूल हैं)। यदि ऐसे कामके लिये भी मैं वनको न जाऊँ तो मूर्खोंके समाजमें सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिये ॥ १ ॥

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी ॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं ॥ २ ॥

जो कल्पवृक्षको छोड़कर रेंडकी सेवा करते हैं और अमृत त्यागकर विष माँग लेते हैं, हे माता! तुम मनमें विचारकर देखो, वे (महामूर्ख) भी ऐसा मौका पाकर कभी न चूकेंगे ॥ २ ॥

अंब एक दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥ ३ ॥

हे माता! मुझे एक ही दुःख विशेषरूपसे हो रहा है, वह महाराजको अत्यन्त व्याकुल देखकर। इस थोड़ी-सी बातके लिये ही पिताजीको इतना भारी दुःख हो, हे माता! मुझे इस बातपर विश्वास नहीं होता ॥ ३ ॥

राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥ ४ ॥

क्योंकि महाराज तो बड़े ही धीर और गुणोंके समुद्र हैं। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है, जिसके कारण महाराज मुझसे कुछ नहीं कहते। तुम्हें मेरी सौगंध है, माता! तुम सच-सच कहो ॥ ४ ॥

दो०—सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान ॥ ४२ ॥

रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके स्वभावसे ही सीधे वचनोंको दुर्बुद्धि कैकेयी टेढ़ा ही करके जान रही है; जैसे यद्यपि जल समान ही होता है, परंतु जोंक उसमें टेढ़ी चालसे ही चलती है ॥ ४२ ॥

चौ०—रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥ १ ॥

रानी कैकेयी रामचन्द्रजीका रुख पाकर हर्षित हो गयी और कपटपूर्ण स्नेह दिखाकर बोली—तुम्हारी शपथ और भरतकी सौगंध है, मुझे राजाके दुःखका दूसरा कुछ भी कारण विदित नहीं है ॥ १ ॥

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुख दाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू ॥ २ ॥

हे तात! तुम अपराधके योग्य नहीं हो (तुमसे माता-पिताका अपराध बन पड़े, यह सम्भव नहीं), तुम तो माता-पिता और भाइयोंको सुख देनेवाले हो। हे राम! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सत्य है। तुम पिता-माताके वचनों [के पालन] में तत्पर हो ॥ २ ॥

पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेंपन जेहिं अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥ ३ ॥

मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ, तुम पिताको समझाकर वही बात कहो जिससे चौथेपन (बुढ़ापे) में इनका अपजस न हो। जिस पुण्यने इनको तुम-जैसे पुत्र दिये हैं उसका निरादर करना उचित नहीं ॥ ३ ॥

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहँ गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥ ४ ॥

कैकेयीके बुरे मुखमें ये शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देशमें गया आदिक तीर्थ। श्रीरामचन्द्रजीको माता कैकेयीके सब वचन ऐसे अच्छे लगे जैसे गङ्गाजीमें जाकर [अच्छे-बुरे सभी प्रकारके] जल शुभ, सुन्दर हो जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह ।
सचिव राम आगमन कहि बिनय समय सम कीन्ह ॥ ४३ ॥

इतनेमें राजाकी मूर्च्छा दूर हुई, उन्होंने रामका स्मरण करके ('राम ! राम !' कहकर) फिर करवट ली । मन्त्रीने श्रीरामचन्द्रजीका आना कहकर समयानुकूल विनती की ॥ ४३ ॥

चौ०—अवनिप अकनि रामु पगु धारे । धरि धीरजु तब नयन उघारे ॥
सचिवँ सँभारि राउ बैठारे । चरन परत नृप रामु निहारे ॥ १ ॥

जब राजाने सुना कि श्रीरामचन्द्र पधारे हैं तो उन्होंने धीरज धरके नेत्र खोले । मन्त्रीने सँभालकर राजाको बैठाया । राजाने श्रीरामचन्द्रजीको अपने चरणोंमें पड़ते (प्रणाम करते) देखा ॥ १ ॥

लिए सनेह बिकल उर लाई । गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई ॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू । चला बिलोचन बारि प्रबाहू ॥ २ ॥

स्नेहसे विकल राजाने रामजीको हृदयसे लगा लिया । मानो साँपने अपनी खोयी हुई मणि फिरसे पा ली हो । राजा दशरथजी श्रीरामजीको देखते ही रह गये । उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली ॥ २ ॥

सोक बिबस कछु कहै न पारा । हृदयँ लगावत बारहिं बारा ॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं । जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं ॥ ३ ॥

शोकके विशेष वश होनेके कारण राजा कुछ कह नहीं सकते । वे बार-बार श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाते हैं और मनमें ब्रह्माजीको मनाते हैं कि जिससे श्रीरघुनाथजी वनको न जायँ ॥ ३ ॥

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ॥ ४ ॥

फिर महादेवजीका स्मरण करके उनका निहोरा करते हुए कहते हैं—हे सदाशिव ! आप मेरी विनती सुनिये । आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) और अवढरदानी (मुहमाँगा दे डालनेवाले) हैं । अतः मुझे अपना दीन सेवक जानकर मेरे दुःखको दूर कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ सो मति रामहि देहु ।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु ॥ ४४ ॥

आप प्रेरकरूपसे सबके हृदयमें हैं । आप श्रीरामचन्द्रको ऐसी बुद्धि दीजिये जिससे वे मेरे वचनको त्यागकर और शील-स्नेहको छोड़कर घरहीमें रह जायँ ॥ ४४ ॥

चौ०—अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होंही॥ १॥

जगत्‌में चाहे अपयश हो और सुयश नष्ट हो जाय। चाहे [नया पाप होनेसे] मैं नरकमें गिरूँ, अथवा स्वर्ग चला जाय (पूर्व पुण्योंके फलस्वरूप मिलनेवाला स्वर्ग चाहे मुझे न मिले)। और भी सब प्रकारके दुःसह दुःख आप मुझसे सहन करा लें; पर श्रीरामचन्द्र मेरी आँखोंकी ओट न हों॥ १॥

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥ २॥

राजा मन-ही-मन इस प्रकार विचार कर रहे हैं, बोलते नहीं। उनका मन पीपलके पत्तेकी तरह डोल रहा है। श्रीरघुनाथजीने पिताको प्रेमके वश जानकर और यह अनुमान करके कि माता फिर कुछ कहेगी [तो पिताजीको दुःख होगा]—॥ २॥

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥ ३॥

देश, काल और अवसरके अनुकूल विचारकर विनीत वचन कहे—हे तात! मैं कुछ कहता हूँ, यह ढिठाई करता हूँ। इस अनौचित्यको मेरी बाल्यावस्था समझकर क्षमा कीजियेगा॥ ३॥

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥ ४॥

इस अत्यन्त तुच्छ बातके लिये आपने इतना दुःख पाया। मुझे किसीने पहले कहकर यह बात नहीं जनायी। स्वामी (आप) को इस दशामें देखकर मैंने मातासे पूछा। उनसे सारा प्रसंग सुनकर मेरे सब अङ्ग शीतल हो गये (मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई)॥ ४॥

दो०—मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥ ४५॥

हे पिताजी! इस मङ्गलके समय स्नेहवश होकर सोच करना छोड़ दीजिये और हृदयमें प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिये। यह कहते हुए प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सर्वाङ्ग पुलकित हो गये॥ ४५॥

चौ०—धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥ १॥

[उन्होंने फिर कहा—] इस पृथ्वीतलपर उसका जन्म धन्य है जिसके चरित्र सुनकर पिताको परम आनन्द हो। जिसको माता-पिता प्राणोंके समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसके करतलगत (मुट्ठीमें) रहते हैं ॥ १ ॥

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई ॥
बिदा मातु सन आवउँ मागी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी ॥२॥

आपकी आज्ञा पालन करके और जन्मका फल पाकर मैं जल्दी ही लौट आऊँगा, अतः कृपया आज्ञा दीजिये। मातासे विदा माँग आता हूँ। फिर आपके पैर लगकर (प्रणाम करके) वनको चलूँगा ॥ २ ॥

अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा ॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर तब श्रीरामचन्द्रजी वहाँसे चल दिये। राजाने शोकवश कोई उत्तर नहीं दिया। वह बहुत ही तीखी (अप्रिय) बात नगरभरमें इतनी जल्दी फैल गयी, मानो डंक मारते ही बिच्छूका विष सारे शरीरमें चढ़ गया हो ॥ ३ ॥

सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी ॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई ॥ ४ ॥

इस बातको सुनकर सब स्त्री-पुरुष ऐसे व्याकुल हो गये जैसे दावानल (वनमें आग लगी) देखकर बेल और वृक्ष मुरझा जाते हैं। जो जहाँ सुनता है वह वहीं सिर धुनने (पीटने) लगता है। बड़ा विषाद है, किसी-को धीरज नहीं बँधता ॥ ४ ॥

दो०—**मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ।**
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ ॥ ४६ ॥

सबके मुख सूखे जाते हैं, आँखोंसे आँसू बहते हैं, शोक हृदयमें नहीं समाता। मानो करुणारसकी सेना अवधपर डंका बजाकर उतर आयी हो ॥ ४६ ॥

चौ०—**मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी ॥**
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥ १ ॥

सब मेल मिल गये थे (सब संयोग ठीक हो गये थे), इतनेमें ही विधाताने बात बिगाड़ दी। जहाँ-तहाँ लोग कैकेयीको गाली दे रहे हैं। इस पापिनको क्या सूझ पड़ा, जो इसने छाये घरपर आग रख दी ॥ १ ॥

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा । डारि सुधा बिषु चाहत चीखा ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुबंस बेनु बन आगी ॥ २ ॥

यह अपने हाथसे अपनी आँखोंको निकालकर (आँखोंके बिना ही) देखना चाहती है, और अमृत फेंककर विष चखना चाहती है ! यह कुटिल, कठोर, दुर्बुद्धि और अभागिनी कैकेयी रघुवंशरूपी बाँसके वनके लिये अग्नि हो गयी ॥ २ ॥

पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा । सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
सदा रामु एहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥ ३ ॥

पत्तेपर बैठकर इसने पेड़को काट डाला । सुखमें शोकका ठाट ठटकर रख दिया । श्रीरामचन्द्रजी इसे सदा प्राणोंके समान प्रिय थे । फिर भी न जाने किस कारण इसने यह कुटिलता ठानी ॥ ३ ॥

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ । सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ॥ ४ ॥

कवि सत्य कहते हैं कि स्त्रीका स्वभाव सब प्रकारसे पकड़में न आने योग्य, अथाह और भेदभरा होता है । अपनी परछाहीं भले ही पकड़ी जाय, पर भाई ! स्त्रियोंकी गति (चाल) नहीं जानी जाती ॥ ४ ॥

दो०—काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ॥ ४७ ॥

आग क्या नहीं जला सकती ! समुद्रमें क्या नहीं समा सकता ! अबला कहानेवाली प्रबल स्त्री [जाति] क्या नहीं कर सकती ! और जगत्‌में काल किसको नहीं खाता ! ॥ ४७ ॥

चौ०—का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा । बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥ १ ॥

विधाताने क्या सुनाकर क्या सुना दिया । और क्या दिखाकर अब यह क्या दिखाना चाहता है ! एक कहते हैं कि राजाने अच्छा नहीं किया । दुर्बुद्धि कैकेयीको विचारकर वर नहीं दिया, ॥ १ ॥

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु । अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु ॥
एक धरम परमिति पहिचाने । नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने ॥ २ ॥

जो हठ करके (कैकेयीकी बातको पूरा करनेमें अड़े रहकर) स्वयं सब दुःखोंके पात्र हो गये । स्त्रीके विशेष वश होनेके कारण मानो उनका ज्ञान

और गुण जाता रहा। एक (दूसरे) जो धर्मकी मर्यादाको जानते हैं, और सयाने हैं, वे राजाको दोष नहीं देते ॥ २ ॥

सिबि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भायँ सुनि रहहीं ॥ ३ ॥

वे शिबि, दधीचि और हरिश्चन्द्रकी कथा एक दूसरेसे बखानकर कहते हैं। कोई एक इसमें भरतजीकी सम्मति बताते हैं। कोई एक सुनकर उदासीनभावसे रह जाते हैं (कुछ बोलते नहीं) ॥ ३ ॥

कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा ॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। रामु भरत कहुँ प्रानपिआरे ॥ ४ ॥

कोई हाथोंसे कान मूँदकर और जीभको दाँतोंतले दबाकर कहते हैं कि यह बात झूठ है, ऐसी बात कहनेसे तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जायँगे। भरतजीको तो श्री रामचन्द्रजी प्राणोंके समान प्यारे हैं ॥ ४ ॥

दो०—चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ बिषतूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल ॥ ४८ ॥

चन्द्रमा चाहे [शीतल किरणोंकी जगह] आगकी चिनगारियाँ बरसाने लगे और अमृत चाहे विष हो जाय, परंतु भरतजी स्वप्नमें भी कभी श्रीरामचन्द्रजीके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे ॥ ४८ ॥

चौ०—एक बिधातहि दूषन देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ॥ १ ॥

कोई एक विधाताको दोष देते हैं, जिसने अमृत दिखाकर विष दे दिया। नगरभरमें खलबली मच गयी, सब किसीको सोच हो गया। हृदयमें दुःसह जलन हो गयी, आनन्द उत्साह मिट गया ॥ १ ॥

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी ॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताही ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ, कुलकी माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कैकेयीकी परम प्रिय थीं, वे उसके शीलकी सराहना करके उसे सीख देने लगीं। पर उसको उनके वचन बाणके समान लगते हैं ॥ २ ॥

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहिं अपराध आजु बनु देहू ॥ ३ ॥

[वे कहती हैं—] तुम तो सदा कहा करती थीं कि श्रीरामचन्द्रके समान मुझको भरत भी प्यारे नहीं हैं; इस बातको सारा जगत् जानता है।

श्रीरामचन्द्रजीपर तो तुम स्वाभाविक ही स्नेह करती रही हो। आज किस अपराधसे उन्हें वन देती हो? ॥ ३ ॥

कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ॥
कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥ ४ ॥

तुमने कभी सौतियाडाह नहीं किया। सारा देश तुम्हारे प्रेम और विश्वासको जानता है। अब कौशल्याने तुम्हारा कौन-सा बिगाड़ कर दिया, जिसके कारण तुमने सारे नगरपर वज्र गिरा दिया ॥ ४ ॥

दो०—सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम ॥ ४९ ॥

क्या सीताजी अपने पति (श्रीरामचन्द्रजी) का साथ छोड़ देंगी? क्या लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके बिना घर रह सकेंगे? क्या भरतजी श्रीरामचन्द्रजीके बिना अयोध्यापुरीका राज्य भोग सकेंगे? और क्या राजा श्रीरामचन्द्रजीके बिना जीवित रह सकेंगे? (अर्थात् न सीताजी यहाँ रहेंगी, न लक्ष्मणजी रहेंगे, न भरतजी राज्य करेंगे और न राजा ही जीवित रहेंगे; सब उजाड़ हो जायगा) ॥ ४९ ॥

चौ०—अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू ॥
भरतहि अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू ॥ १ ॥

हृदयमें ऐसा विचारकर क्रोध छोड़ दो, शोक और कलङ्ककी कोठी मत बनो। भरतको अवश्य युवराजपद दो, पर श्रीरामचन्द्रजीका वनमें क्या काम है? ॥ १ ॥

नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे ॥
गुर गृह बसहुँ रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी राज्यके भूखे नहीं हैं। वे धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले और विषय-रससे रूखे हैं (अर्थात् उनमें विषयासक्ति है ही नहीं)। [इसलिये तुम यह शङ्का न करो कि श्रीरामजी वन न गये तो भरतके राज्यमें विघ्न करेंगे; इतनेपर भी मन न माने तो] तुम राजासे दूसरा ऐसा (यह) वर ले लो कि श्रीराम घर छोड़कर गुरुके घर रहें ॥ २ ॥

जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे ॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥ ३ ॥

जो तुम हमारे कहनेपर न चलोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न

लगेगा। यदि तुमने कुछ हँसी की हो तो उसे प्रकटमें कहकर जना दो [कि मैंने दिल्लगी की है]॥ ३॥

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुँ लोगू॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई॥ ४॥

राम-सरीखा पुत्र क्या वनके योग्य है? यह सुनकर लोग तुम्हें क्या कहेंगे! जल्दी उठो और वही उपाय करो जिस उपायसे इस शोक और कलङ्कका नाश हो॥ ४॥

छं०—जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जियँ भामिनी॥

जिस तरह [नगरभरका] शोक और [तुम्हारा] कलङ्क मिटे, वही उपाय करके कुलकी रक्षा कर। वन जाते हुए श्रीरामजीको हठ करके लौटा ले, दूसरी कोई बात न चला। तुलसीदासजी कहते हैं—जैसे सूर्यके बिना दिन, प्राणके बिना शरीर और चन्द्रमाके बिना रात [निर्जीव तथा शोभाहीन हो जाती है], वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीके बिना अयोध्या हो जायगी; हे भामिनी! तू अपने हृदयमें इस बातको समझ (विचारकर देख) तो सही।

सो०—सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥५०॥

इस प्रकार सखियोंने ऐसी सीख दी जो सुननेमें मीठी और परिणाममें हितकारी थी। पर कुटिला कुबरीकी सिखायी-पढ़ायी हुई कैकेयीने इसपर जरा भी कान नहीं दिया॥ ५०॥

चौ०—उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥ १॥

कैकेयी कोई उत्तर नहीं देती, वह दुःसह क्रोधके मारे रूखी (बेमुरव्वत) हो रही है। ऐसे देखती है मानो भूखी बाघिन हरिनियोंको देख रही हो। तब सखियोंने रोगको असाध्य समझकर उसे छोड़ दिया। सब उसको मन्दबुद्धि, अभागिनी कहती हुई चल दीं॥ १॥

राजु करत यह दैअँ बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं। देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं॥ २॥

राज्य करते हुए इस कैकेयीको दैवने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया, वैसा कोई भी न करेगा! नगरके सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयीको करोड़ों गालियाँ दे रहे हैं॥ २॥

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी॥ ३॥

लोग विषमज्वर (भयानक दुःखकी आग) से जल रहे हैं। लंबी साँसें लेते हुए वे कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके बिना जीनेकी कौन आशा है। महान् वियोग [की आशंका] से प्रजा ऐसी व्याकुल हो गयी है मानो पानी सूखनेके समय जलचर जीवोंका समुदाय व्याकुल हो!॥ ३॥

अति बिषाद बस लोग लोगाईं। गए मातु पहिं रामु गोसाईं॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ॥ ४॥

सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यन्त विषादके वश हो रहे हैं। स्वामी श्रीरामचन्द्रजी माता कौसल्याके पास गये। उनका मुख प्रसन्न है और चित्तमें चौगुना चाव (उत्साह) है। यह सोच मिट गया है कि राजा कहीं रख न लें। [श्रीरामजीको राजतिलककी बात सुनकर विषाद हुआ था कि सब भाइयोंको छोड़कर बड़े भाई मुझको ही राजतिलक क्यों होता है। अब माता कैकेयीकी आज्ञा और पिताकी मौन सम्मति पाकर वह सोच मिट गया है।]॥ ४॥

दो०—नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥ ५१॥

श्रीरामचन्द्रजीका मन नये पकड़े हुए हाथीके समान और राजतिलक उस हाथीके बाँधनेकी काँटेदार लोहेकी बेड़ीके समान है। 'वन जाना है' यह सुनकर अपनेको बन्धनसे छूटा जानकर, उनके हृदयमें आनन्द बढ़ गया है॥ ५१॥

चौ०—रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे॥ १॥

रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीने दोनों हाथ जोड़कर आनन्दके साथ माताके चरणोंमें सिर नवाया। माताने आशीर्वाद दिया, अपने हृदयसे लगा लिया और उनपर गहने तथा कपड़े न्यौछावर किये॥ १॥

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥ २॥

माता बार-बार श्रीरामचन्द्रजीका मुख चूम रही हैं। नेत्रोंमें प्रेमका जल भर आया है और सब अङ्ग पुलकित हो गये हैं। श्रीरामको अपनी गोदमें बैठाकर फिर हृदयसे लगा लिया। सुन्दर स्तन प्रेमरस (दूध) बहाने लगे ॥ २ ॥

प्रेम प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई ॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी ॥ ३ ॥

उनका प्रेम और महान् आनन्द कुछ कहा नहीं जाता। मानो कंगालने कुबेरका पद पा लिया हो। बड़े आदरके साथ सुन्दर मुख देखकर माता मधुर वचन बोलीं—॥ ३ ॥

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी ॥
सुकृत सील सुख सीवँ सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई ॥ ४ ॥

हे तात! माता बलिहारी जाती है, कहो वह आनन्द-मङ्गलकारी लग्न कब है, जो मेरे पुण्य, शील और सुखकी सुन्दर सीमा है और जन्म लेनेके लाभकी पूर्णतम अवधि है ॥ ४ ॥

दो०—जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति ॥ ५२ ॥

तथा जिस (लग्न) को सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त व्याकुलतासे इस प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार प्याससे चातक और चातकी शरद्-ऋतुके स्वातिनक्षत्रकी वर्षाको चाहते हैं ॥ ५२ ॥

चौ०—तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
पितु समीप तब जाएहु भैआ। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ ॥ १ ॥

हे तात! मैं बलैया लेती हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन भावे, कुछ मिठाई खा लो। भैया! तब पिताके पास जाना। बहुत देर हो गयी है, माता बलिहारी जाती है ॥ १ ॥

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला ॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भवँरु न भूला ॥ २ ॥

माताके अत्यन्त अनुकूल वचन सुनकर—जो मानो स्नेहरूपी कल्पवृक्षके फूल थे, जो सुखरूपी मकरन्द (पुष्परस) से भरे थे और श्री (राजलक्ष्मी) के मूल थे—ऐसे वचनरूपी फूलोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजीका मनरूपी भौंरा उनपर नहीं भूला ॥ २ ॥

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥ ३ ॥

धर्मधुरीण श्रीरामचन्द्रजीने धर्मकी गतिको जानकर मातासे अत्यन्त कोमल वाणीसे कहा—हे माता! पिताजीने मुझको वनका राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकारसे मेरा बड़ा काम बननेवाला है ॥ ३ ॥

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनँदु अंब अनुग्रह तोरें ॥ ४ ॥

हे माता! तू प्रसन्न मनसे मुझे आज्ञा दे, जिससे मेरी वनयात्रामें आनन्द-मंगल हो। मेरे स्नेहवश भूलकर भी डरना नहीं। हे माता! तेरी कृपासे आनन्द ही होगा ॥ ४ ॥

दो०—बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान ॥ ५३ ॥

चौदह वर्ष वनमें रहकर, पिताजीके वचनको प्रमाणित (सत्य) कर फिर लौटकर तेरे चरणोंका दर्शन करूँगा; तू मनको म्लान (दुखी) न कर ॥ ५३ ॥

चौ०—बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके ॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी ॥ १ ॥

रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामजीके ये बहुत ही नम्र और मीठे वचन माताके हृदयमें बाणके समान लगे और कसकने लगे। उस शीतल वाणीको सुनकर कौसल्या वैसे ही सहमकर सूख गयीं जैसे बरसातका पानी पड़नेसे जवासा सूख जाता है ॥ १ ॥

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी ॥ २ ॥

हृदयका विषाद कुछ कहा नहीं जाता। मानो सिंहकी गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गयी हो। नेत्रोंमें जल भर आया, शरीर थर-थर काँपने लगा, मानो मछली माँजा (पहली वर्षाका फेन) खाकर बदहवास हो गयी हो! ॥ २ ॥

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी ॥
तात पितहि तुम्ह प्रान पिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥ ३ ॥

धीरज धरकर, पुत्रका मुख देखकर माता गद्गद वचन कहने लगीं—हे तात! तुम तो पिताको प्राणके समान प्रिय हो। तुम्हारे चरित्रोंको देखकर वे नित्य प्रसन्न होते थे ॥ ३ ॥

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू ॥ ४ ॥

राज्य देनेके लिये उन्होंने ही शुभ दिन सोधवाया था। फिर अब किस अपराधसे वन जानेको कहा ? हे तात ! मुझे इसका कारण सुनाओ। सूर्यवंश [रूपी वन] को जलानेके लिये अग्नि कौन हो गया ? ॥ ४ ॥

दो०–निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ ॥ ५४ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीका रुख देखकर मन्त्रीके पुत्रने सब कारण समझाकर कहा। उस प्रसंगको सुनकर वे गूँगी-जैसी (चुप) रह गयीं, उनकी दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ५४ ॥

चौ०–राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू ॥ १ ॥

न रख ही सकती हैं, न यह कह सकती हैं कि वन चले जाओ। दोनों ही प्रकारसे हृदयमें बड़ा भारी संताप हो रहा है। [मनमें सोचती हैं कि देखो—] विधाताकी चाल सदा सबके लिये टेढ़ी होती है। लिखने लगे चन्द्रमा और लिख गया राहु ! ॥ १ ॥

धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी ॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू ॥ २ ॥

धर्म और स्नेह दोनोंने कौसल्याजीकी बुद्धिको घेर लिया। उनकी दशा साँप-छछूँदरकी-सी हो गयी। वे सोचने लगीं कि यदि मैं अनुरोध (हठ) करके पुत्रको रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयोंमें विरोध होता है; ॥ २ ॥

कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरत दोउ सुत सम जानी ॥ ३ ॥

और यदि वन जानेको कहती हूँ तो बड़ी हानि होती है। इस प्रकारके धर्म-संकटमें पड़कर रानी विशेषरूपसे सोचके वश हो गयीं। फिर बुद्धिमती कौसल्याजी स्त्री-धर्म (पातिव्रत-धर्म) को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रोंको समान जानकर—॥ ३ ॥

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका ॥ ४ ॥

सरलस्वभाववाली श्रीरामचन्द्रजीकी माता बड़ी धीरज धरकर वचन बोलीं—हे तात ! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिताकी आज्ञाका पालन करना ही सब धर्मोंका शिरोमणि धर्म है ॥ ४ ॥

दो०—राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥ ५५ ॥

राज्य देनेको कहकर वन दे दिया, उसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है। [दुःख तो इस बातका है कि] तुम्हारे बिना भरतको, महाराजको और प्रजाको बड़ा भारी क्लेश होगा ॥ ५५ ॥

चौ०—जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना ॥ १ ॥

हे तात ! यदि केवल पिताजीकी ही आज्ञा हो, तो माताको [पितासे] बड़ी जानकर वनको मत जाओ। किन्तु यदि पिता-माता दोनोंने वन जानेको कहा हो, तो वन तुम्हारे लिये सैकड़ों अयोध्याके समान है ॥ १ ॥

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी ॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू ॥ २ ॥

वनके देवता तुम्हारे पिता होंगे और वनदेवियाँ माता होंगी। वहाँके पशु-पक्षी तुम्हारे चरणकमलोंके सेवक होंगे। राजाके लिये अन्तमें तो वनवास करना उचित ही है। केवल तुम्हारी [सुकुमार] अवस्था देखकर हृदयमें दुःख होता है ॥ २ ॥

बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंसतिलक तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू ॥ ३ ॥

हे रघुवंशके तिलक ! वन बड़ा भाग्यवान् है और यह अवध अभागी है, जिसे तुमने त्याग दिया। हे पुत्र ! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदयमें सन्देह होगा [कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती हैं] ॥ ३ ॥

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ ॥ ४ ॥

हे पुत्र ! तुम सभीके परम प्रिय हो। प्राणोंके प्राण और हृदयके जीवन हो। वही (प्राणाधार) तुम कहते हो कि माता ! मैं वनको जाऊँ और मैं तुम्हारे वचनोंको सुनकर बैठी पछताती हूँ ! ॥ ४ ॥

दो०—यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ ॥ ५६ ॥

यह सोचकर झूठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती। बेटा! मैं बलैया लेती हूँ, माताका नाता मानकर मेरी सुध भूल न जाना ॥ ५६ ॥

चौ०—देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना ॥ १ ॥

हे गोसाईं! सब देव और पितर तुम्हारी वैसे ही रक्षा करें, जैसे पलकें आँखोंकी रक्षा करती हैं। तुम्हारे वनवासकी अवधि (चौदह वर्ष) जल है, प्रियजन और कुटुम्बी मछली हैं। तुम दयाकी खान और धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले हो ॥ १ ॥

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥ २ ॥

ऐसा विचारकर वही उपाय करना जिसमें सबके जीते-जी तुम आ मिलो। मैं बलिहारी जाती हूँ। तुम सेवकों, परिवारवालों और नगरभरको अनाथ करके सुखपूर्वक वनको जाओ ॥ २ ॥

सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल कालु बिपरीता॥
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी ॥ ३ ॥

आज सबके पुण्योंका फल पूरा हो गया। कठिन काल हमारे विपरीत हो गया। [इस प्रकार] बहुत विलाप करके और अपनेको परम अभागिनी जानकर माता श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लिपट गयीं ॥ ३ ॥

दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई ॥ ४ ॥

हृदयमें भयानक दुःसह संताप छा गया। उस समयके बहुविध विलापका वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीरामचन्द्रजीने माताको उठाकर हृदयसे लगा लिया और फिर कोमल वचन कहकर उन्हें समझाया ॥ ४ ॥

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ ॥ ५७ ॥

उसी समय यह समाचार सुनकर सीताजी अकुला उठीं और सासके पास जाकर उनके दोनों चरणकमलोंकी वन्दना कर सिर नीचा करके बैठ गयीं ॥ ५७ ॥

चौ०—दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥ १॥

सासने कोमल वाणीसे आशीर्वाद दिया। वे सीताजीको अत्यन्त सुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठीं। रूपकी राशि और पतिके साथ पवित्र प्रेम करनेवाली सीताजी नीचा मुख किये बैठी सोच रही हैं॥ १॥

चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥ २॥

जीवननाथ (प्राणनाथ) वनको चलना चाहते हैं। देखें किस पुण्यवान्‌से उनका साथ होगा—शरीर और प्राण दोनों साथ जायँगे या केवल प्राणहीसे इनका साथ होगा? विधाताकी करनी कुछ जानी नहीं जाती॥ २॥

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥
मनहु प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं॥ ३॥

सीताजी अपने सुन्दर चरणोंके नखोंसे धरती कुरेद रही हैं। ऐसा करते समय नूपुरोंका जो मधुर शब्द हो रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेमके वश होकर नूपुर यह विनती कर रहे हैं कि सीताजीके चरण कभी हमारा त्याग न करें॥ ३॥

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी॥ ४॥

सीताजी सुन्दर नेत्रोंसे जल बहा रही हैं। उनकी यह दशा देखकर श्रीरामजीकी माता कौसल्याजी बोलीं—हे तात! सुनो, सीता अत्यन्त ही सुकुमारी हैं तथा सास, ससुर और कुटुम्बी सभीको प्यारी हैं॥ ४॥

दो०—पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु॥ ५८॥

इनके पिता जनकजी राजाओंके शिरोमणि हैं, ससुर सूर्यकुलके सूर्य हैं और पति सूर्यकुलरूपी कुमुदवनको खिलानेवाले चन्द्रमा तथा गुण और रूपके भण्डार हैं॥ ५८॥

चौ०—मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥ १॥

फिर मैंने रूपकी राशि, सुन्दर गुण और शीलवाली प्यारी पुत्रवधू

पायी है। मैंने इन (जानकी) को आँखोंकी पुतली बनाकर इनसे प्रेम बढ़ाया है और अपने प्राण इनमें लगा रक्खे हैं ॥ १ ॥

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा ॥ २ ॥

इन्हें कल्पलताके समान मैंने बहुत तरहसे बड़े लाड़-चावके साथ स्नेहरूपी जलसे सींचकर पाला है। अब इस लताके फूलने-फलनेके समय विधाता वाम हो गये। कुछ जाना नहीं जाता कि इसका क्या परिणाम होगा ॥ २ ॥

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥ ३ ॥

सीताने पर्यङ्कपृष्ठ (पलंगके ऊपर), गोद और हिंडोलेको छोड़कर कठोर पृथ्वीपर कभी पैर नहीं रक्खा। मैं सदा संजीवनी जड़ीके समान [सावधानीसे] इनकी रखवाली करती रही हूँ। कभी दीपककी बत्ती हटानेको भी नहीं कहती ॥ ३ ॥

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी ॥ ४ ॥

वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है। हे रघुनाथ! उसे क्या आज्ञा होती है? चन्द्रमाकी किरणोंका रस (अमृत) चाहनेवाली चकोरी सूर्यकी ओर आँख किस तरह मिला सकती है ॥ ४ ॥

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि ॥ ५९ ॥

हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव-जन्तु वनमें विचरते रहते हैं। हे पुत्र! क्या विषकी वाटिकामें सुन्दर संजीवनी बूटी शोभा पा सकती है? ॥ ५९ ॥

चौ०—बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥ १ ॥

वनके लिये तो ब्रह्माजीने विषयसुखको न जाननेवाली कोल और भीलोंकी लड़कियोंको रचा है, जिनका पत्थरके कीड़े-जैसा कठोर स्वभाव है। उन्हें वनमें कभी क्लेश नहीं होता ॥ १ ॥

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती ॥ २ ॥

अथवा तपस्वियोंकी स्त्रियाँ वनमें रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्याके लिये सब भोग तज दिये हैं। हे पुत्र! जो तस्वीरके बंदरको देखकर डर जाती हैं वे सीता वनमें किस तरह रह सकेंगी ? ॥ २ ॥

सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी ॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥ ३ ॥

देवसरोवरके कमलवनमे विचरण करनेवाली हंसिनी क्या गड़ैयों (तलैयों) में रहनेके योग्य है ? ऐसा विचारकर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो, मैं जानकीको वैसी ही शिक्षा दूँ ? ॥ ३ ॥

जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधाँ जनु सानी ॥ ४ ॥

माता कहती हैं—यदि सीता घरमें रहें तो मुझको बहुत सहारा हो जाय। श्रीरामचन्द्रजीने माताकी प्रिय वाणी सुनकर, जो मानो शील और स्नेहरूपी अमृतसे सनी हुई थी, ॥ ४ ॥

दो०—कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥ ६० ॥

विवेकमय प्रिय वचन कहकर माताको संतुष्ट किया। फिर वनके गुण-दोष प्रकट करके वे जानकीजीको समझाने लगे ॥ ६० ॥

मासपारायण, चौदहवाँ विश्राम

चौ०-मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं ॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू ॥ १ ॥

माताके सामने सीताजीसे कुछ कहनेमें सकुचाते हैं। पर मनमें यह समझकर कि यह समय ऐसा ही है, वे बोले—हे राजकुमारी! मेरी सिखावन सुनो। मनमें कुछ दूसरी तरह न समझ लेना ॥ १ ॥

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू ॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥ २ ॥

जो अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरा वचन मानकर घर रहो। हे भामिनी! मेरी आज्ञाका पालन होगा, सासकी सेवा बन पड़ेगी। घर रहनेमें सभी प्रकारसे भलाई है ॥ २ ॥

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥ ३ ॥

आदरपूर्वक सास-ससुरके चरणोंकी पूजा (सेवा) करनेसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जब-जब माता मुझे याद करेंगी और प्रेमसे व्याकुल होनेके कारण उनकी बुद्धि भोली हो जायगी (वे अपने-आपको भूल जायँगी) ॥ ३ ॥

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी ॥
कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥ ४ ॥

हे सुन्दरी! तब-तब तुम कोमल वाणीसे पुरानी कथाएँ कह-कहकर इन्हें समझाना। हे सुमुखि! मुझे सैकड़ों सौगन्ध है, मैं यह स्वभावसे ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल माताके लिये ही घरपर रखता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥ ६१ ॥

[मेरी आज्ञा मानकर घरपर रहनेसे] गुरु और वेदके द्वारा सम्मत धर्म [के आचरण] का फल तुम्हें बिना ही क्लेशके मिल जाता है। किन्तु हठके वश होकर गालव मुनि और राजा नहुष आदि सबने सङ्कट ही सहे ॥ ६१ ॥

चौ०—मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥ १ ॥

हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो, मैं भी पिताके वचनको सत्य करके शीघ्र ही लौटूँगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। हे सुन्दरी! हमारी यह सीख सुनो! ॥ १ ॥

जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी ॥ २ ॥

हे वामा! यदि प्रेमवश हठ करोगी, तो तुम परिणाममें दुःख पाओगी। वन बड़ा कठिन (क्लेशदायक) और भयानक है। वहाँकी धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बड़े भयानक हैं ॥ २ ॥

कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना ॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे ॥ ३ ॥

रास्तेमें कुश, काँटे और बहुत-से कंकड़ हैं। उनपर बिना जूतेके पैदल ही चलना होगा। तुम्हारे चरण-कमल कोमल और सुन्दर हैं और रास्तेमें बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं ॥ ३ ॥

कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥ ४॥

पर्वतोंकी गुफाएँ, खोह (दर्रे), नदियाँ, नद और नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि उनकी ओर देखातक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे [भयानक] शब्द करते हैं कि उन्हें सुनकर धीरज भाग जाता है॥ ४॥

दो०–भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥ ६२॥

जमीनपर सोना, पेड़ोंकी छालके वस्त्र पहनना और कन्द, मूल, फलका भोजन करना होगा। और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे? सब कुछ अपने-अपने समयके अनुकूल ही मिल सकेगा॥ ६२॥

चौ०–नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥ १॥

मनुष्योंको खानेवाले निशाचर (राक्षस) फिरते रहते हैं। वे करोड़ों प्रकारके कपट-रूप धारण कर लेते हैं। पहाड़का पानी बहुत ही लगता है। वनकी विपत्ति बखानी नहीं जा सकती॥ १॥

ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥ २॥

वनमें भीषण सर्प, भयानक पक्षी और स्त्री-पुरुषोंको चुरानेवाले राक्षसोंके झुंड-के-झुंड रहते हैं। वनकी [भयङ्करता] याद आनेमात्रसे धीर पुरुष भी डर जाते हैं। फिर हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभावसे ही डरपोक हो!॥ २॥

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥ ३॥

हे हंसगमनी! तुम वनके योग्य नहीं हो। तुम्हारे वन जानेकी बात सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे (बुरा कहेंगे)। मानसरोवरके अमृतके समान जलसे पाली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्रमें जी सकती है॥ ३॥

नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी॥ ४॥

नवीन आमके वनमें विहार करनेवाली कोयल क्या करीलके जंगलमें

शोभा पाती है ? हे चन्द्रमुखी ! हृदयमें ऐसा विचारकर तुम घरहीपर रहो। वनमें बड़ा कष्ट है ॥ ४ ॥

दो०—सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ॥ ६३ ॥

स्वाभाविक ही हित चाहनेवाले गुरु और स्वामीकी सीखको जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदयमें भरपेट पछताता है और उसके हितकी हानि अवश्य होती है ॥ ६३ ॥

चौ०—सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चंद निसि जैसें ॥ १ ॥

प्रियतमके कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीताजीके सुन्दर नेत्र जलसे भर गये। श्रीरामजीकी यह शीतल सीख उनको कैसी जलानेवाली हुई, जैसे चकवीको शरद् ऋतुकी चाँदनी रात होती है ॥ १ ॥

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी ॥ २ ॥

जानकीजीसे कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। नेत्रोंके जल (आँसुओं) को जबर्दस्ती रोककर वे पृथ्वीकी कन्या सीताजी हृदयमें धीरज धरकर, ॥ २ ॥

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥ ३ ॥

सासके पैर लगकर हाथ जोड़कर कहने लगीं—हे देवि ! मेरी इस बड़ी भारी ढिठाईको क्षमा कीजिये। मुझे प्राणपतिने वही शिक्षा दी है जिससे मेरा परम हित हो ॥ ३ ॥

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं ॥ ४ ॥

परन्तु मैंने मनमें समझकर देख लिया कि पतिके वियोगके समान जगत्‌में कोई दुःख नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥ ६४ ॥

हे प्राणनाथ ! हे दयाके धाम ! हे सुन्दर ! हे सुखोंके देनेवाले !

हे सुजान ! हे रघुकुलरूपी कुमुदके खिलानेवाले चन्द्रमा ! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिये नरकके समान है ॥ ६४ ॥

चौ०—मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई । सुत सुंदर सुसील सुखदाई ॥ १ ॥

माता, पिता, बहन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रोंका समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन (बन्धु-बान्धव), सहायक और सुन्दर, सुशील और सुख देनेवाला पुत्र—॥ १ ॥

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू । पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥ २ ॥

हे नाथ ! जहाँतक स्नेह और नाते हैं, पतिके बिना स्त्रीको सभी सूर्यसे भी बढ़कर तपानेवाले हैं । शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, पतिके बिना स्त्रीके लिये यह सब शोकका समाज है ॥ २ ॥

भोग रोगसम भूषन भारू । जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥ ३ ॥

भोग रोगके समान हैं, गहने भाररूप हैं और संसार यम-यातना (नरककी पीड़ा) के समान है । हे प्राणनाथ ! आपके बिना जगत्‌में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है ॥ ३ ॥

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें । सरद बिमल बिधु बदनु निहारें ॥ ४ ॥

जैसे बिना जीवके देह और बिना जलके नदी, वैसे ही हे नाथ ! बिना पुरुषके स्त्री है । हे नाथ ! आपके साथ रहकर आपका शरद् [पूर्णिमा] के निर्मल चन्द्रमाके समान मुख देखनेसे मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

दो०—खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल ॥ ६५ ॥

हे नाथ ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर और वृक्षोंकी छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तोंकी बनी झोंपड़ी) ही स्वर्गके समान सुखोंकी मूल होगी ॥ ६५ ॥

चौ०—बनदेवीं बनदेव उदारा । करिहहिं सासु ससुर सम सारा ॥
कुस किसलय साथरी सुहाई । प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥ १ ॥

उदार हृदयके वनदेवी और वनदेवता ही सास-ससुरके समान मेरी सार-सँभार करेंगे, और कुशा और पत्तोंकी सुन्दर साथरी (बिछौना) ही प्रभुके साथ कामदेवकी मनोहर तोशकके समान होगी ॥ १ ॥

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी।२।

कन्द, मूल और फल ही अमृतके समान आहार होंगे और [वनके] पहाड़ ही अयोध्याके सैकड़ों राजमहलोंके समान होंगे। क्षण-क्षणमें प्रभुके चरणकमलोंको देख-देखकर मैं ऐसी आनन्दित रहूँगी जैसी दिनमें चकवी रहती है ॥ २ ॥

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥ ३॥

हे नाथ ! आपने वनके बहुत-से दुःख और बहुत-से भय, विषाद और सन्ताप कहे; परन्तु हे कृपानिधान ! वे सब मिलकर भी प्रभु (आप) के वियोग [से होनेवाले दुःख] के लवलेशके समान भी नहीं हो सकते ॥ ३ ॥

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥ ४॥

ऐसा जीमें जानकर, हे सुजानशिरोमणि ! आप मुझे साथ ले लीजिये, यहाँ न छोड़िये। हे स्वामी ! मैं अधिक क्या विनती करूँ ? आप करुणामय हैं और सबके हृदयके अंदरकी जाननेवाले हैं ॥ ४ ॥

दो०–राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥ ६६॥

हे दीनबन्धु ! हे सुन्दर ! हे सुख देनेवाले ! हे शील और प्रेमके भण्डार ! यदि अवधि (चौदह वर्ष) तक मुझे अयोध्यामें रखते हैं तो जान लीजिये कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे ॥ ६६ ॥

चौ०–मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥ १॥

क्षण-क्षणमें आपके चरणकमलोंको देखते रहनेसे मुझे मार्ग चलनेमें थकावट न होगी। हे प्रियतम ! मैं सभी प्रकारसे आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलनेसे होनेवाली सारी थकावटको दूर कर दूँगी ॥ १ ॥

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥ २॥

आपके पैर धोकर, पेड़ोंकी छायामें बैठकर, मनमें प्रसन्न होकर हवा करूँगी (पंखा झलूँगी)। पसीनेकी बूँदोंसहित श्याम शरीरको देखकर—प्राणपतिके दर्शन करते हुए दुःखके लिये मुझे अवकाश ही कहाँ रहेगा ॥२॥

सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही॥३॥

समतल भूमिपर घास और पेड़ोंके पत्ते बिछाकर यह दासी रातभर आपके चरण दबावेगी। बार-बार आपकी कोमल मूर्तिको देखकर मुझको गरम हवा भी न लगेगी ॥३॥

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥४॥

प्रभुके साथ [रहते] मेरी ओर [आँख उठाकर] देखनेवाला कौन है (अर्थात् कोई नहीं देख सकता)! जैसे सिंहकी स्त्री (सिंहनी) को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वनके योग्य हैं! आपको तो तपस्या उचित है और मुझको विषय-भोग! ॥४॥

दो०—ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान ॥६७॥

ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जब मेरा हृदय न फटा तो हे प्रभु! [मालूम होता है] ये पामर प्राण आपके वियोगका भीषण दुःख सहेंगे ॥६७॥

चौ०—अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना॥१॥

ऐसा कहकर सीताजी बहुत ही व्याकुल हो गयीं। वे वचनके वियोगको भी न सम्हाल सकीं। (अर्थात् शरीरसे वियोगकी बात तो अलग रही, वचनसे भी वियोगकी बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गयीं।) उनकी यह दशा देखकर श्रीरघुनाथजीने अपने जीमें जान लिया कि हठपूर्वक इन्हें यहाँ रखनेसे ये प्राणोंको न रक्खेंगी ॥१॥

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥२॥

तब कृपालु सूर्यकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि सोच छोड़कर मेरे साथ वनको चलो। आज विषाद करनेका अवसर नहीं है। तुरंत वन-गमनकी तैयारी करो ॥२॥

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥ ३॥

श्रीरामचन्द्रजीने प्रिय वचन कहकर प्रियतमा सीताजीको समझाया। फिर माताके पैरों लगकर आशीर्वाद प्राप्त किया। [माताने कहा—] बेटा! जल्दी लौटकर प्रजाके दुःखको मिटाना और यह निठुर माता तुम्हें भूल न जाय! ॥ ३ ॥

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि॥ ४॥

हे विधाता! क्या मेरी दशा भी फिर पलटेगी? क्या अपने नेत्रोंसे मैं इस मनोहर जोड़ीको फिर देख पाऊँगी? हे पुत्र! वह सुन्दर दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब तुम्हारी जननी जीते-जी तुम्हारा चाँद-सा मुखड़ा फिर देखेगी? ॥ ४ ॥

दो०—बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात॥ ६८॥

हे तात! 'वत्स' कहकर, 'लाल' कहकर, 'रघुपति' कहकर, 'रघुवर' कहकर मैं फिर कब तुम्हें बुलाकर हृदयसे लगाऊँगी और हर्षित होकर तुम्हारे अङ्गोंको देखूँगी! ॥ ६८ ॥

चौ०—लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥ १॥

यह देखकर कि माता स्नेहके मारे अधीर हो गयी हैं और इतनी अधिक व्याकुल हैं कि मुँहसे वचन नहीं निकलता, श्रीरामचन्द्रजीने अनेक प्रकारसे उन्हें समझाया। वह समय और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता॥ १ ॥

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥ २॥

तब जानकीजी सासके पाँव लगीं और बोलीं—हे माता! सुनिये, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ। आपकी सेवा करनेके समय दैवने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ सफल न किया॥ २ ॥

तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥ ३॥

आप क्षोभका त्याग कर दें, परन्तु कृपा न छोड़ियेगा। कर्मकी गति कठिन है, मुझे भी कुछ दोष नहीं है। सीताजीके वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयीं। उनकी दशाको मैं किस प्रकार बखानकर कहूँ ! ॥ ३ ॥

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥ ४ ॥

उन्होंने सीताजीको बार-बार हृदयसे लगाया और धीरज धरकर शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जबतक गङ्गाजी और यमुनाजीमें जलकी धारा बहे, तबतक तुम्हारा सुहाग अचल रहे ॥ ४ ॥

दो०—सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार ॥ ६९ ॥

सीताजीको सासने अनेकों प्रकारसे आशीर्वाद और शिक्षाएँ दीं और वे (सीताजी) बड़े ही प्रेमसे बार-बार चरणकमलोंमें सिर नवाकर चलीं ॥ ६९ ॥

चौ०—समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥ १ ॥

जब लक्ष्मणजीने ये समाचार पाये, तब वे व्याकुल होकर उदास मुँह उठ दौड़े। शरीर काँप रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, नेत्र आँसुओंसे भरे हैं। प्रेमसे अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये ॥ १ ॥

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े ॥
सोचु हृदयँ बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥ २ ॥

वे कुछ कह नहीं सकते, खड़े-खड़े देख रहे हैं। [ऐसे दीन हो रहे हैं] मानो जलसे निकाले जानेपर मछली दीन हो रही हो। हृदयमें यह सोच है कि हे विधाता ! क्या होनेवाला है ? क्या हमारा सब सुख और पुण्य पूरा हो गया ? ॥ २ ॥

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें ॥ ३ ॥

मुझको श्रीरघुनाथजी क्या कहेंगे ? घरपर रक्खेंगे या साथ ले चलेंगे ? श्रीरामचन्द्रजीने भाई लक्ष्मणको हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सभीसे नाता तोड़े हुए खड़े देखा ॥ ३ ॥

बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुख सागर ॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू ॥ ४ ॥

तब नीतिमें निपुण और शील, स्नेह, सरलता और सुखके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी वचन बोले—हे तात! परिणाममें होनेवाले आनन्दको हृदयमें समझकर तुम प्रेमवश अधीर मत होओ ॥ ४ ॥

दो०—मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ ॥ ७० ॥

जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामीकी शिक्षाको स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेनेका लाभ पाया है; नहीं तो जगत्में जन्म व्यर्थ ही है ॥ ७० ॥

चौ०—अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं ॥ १ ॥

हे भाई! हृदयमें ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिताके चरणोंकी सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न घरपर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मनमें मेरा दुःख है ॥ १ ॥

मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू ॥ २ ॥

इस अवस्थामें मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ तो अयोध्या सभी प्रकारसे अनाथ हो जायगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभीपर दुःखका दुःसह भार आ पड़ेगा ॥ २ ॥

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥ ३ ॥

अतः तुम यहीं रहो और सबका सन्तोष करते रहो। नहीं तो हे तात! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्यमें प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरकका अधिकारी होता है ॥ ३ ॥

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी ॥
सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें ॥ ४ ॥

हे तात! ऐसी नीति विचारकर तुम घर रह जाओ। यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत ही व्याकुल हो गये। इन शीतल वचनोंसे वे कैसे सूख गये, जैसे पालेके स्पर्शसे कमल सूख जाता है ॥ ४ ॥

दो०—उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ॥ ७१ ॥

प्रेमवश लक्ष्मणजीसे कुछ उत्तर देते नहीं बनता। उन्होंने व्याकुल होकर श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये और कहा—हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं; अतः आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है?॥ ७१॥

चौ०—दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥
नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी॥ १॥

हे स्वामी! आपने मुझे सीख तो बड़ी अच्छी दी है, पर मुझे अपनी कायरतासे वह मेरे लिये अगम (पहुँचके बाहर) लगी। शास्त्र और नीतिके तो वे ही श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी हैं जो धीर हैं और धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले हैं॥ १॥

मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥ २॥

मैं तो प्रभु (आप) के स्नेहमें पला हुआ छोटा बच्चा हूँ। कहीं हंस भी मन्दराचल या सुमेरु पर्वतको उठा सकते हैं! हे नाथ! स्वभावसे ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसी-को भी नहीं जानता॥ २॥

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥ ३॥

जगत्में जहाँतक स्नेहका सम्बन्ध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेदने गाया है—हे स्वामी! हे दीनबन्धु! हे सबके हृदयके अंदरकी जाननेवाले! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं॥ ३॥

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥ ४॥

धर्म और नीतिका उपदेश तो उसको करना चाहिये, जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो। किन्तु जो मन, वचन और कर्मसे चरणोंमें ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिन्धु! क्या वह भी त्यागनेके योग्य है?॥ ४॥

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत॥ ७२॥

दयाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजीने भले भाईके कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेहके कारण डरे हुए जानकर, हृदयसे लगाकर समझाया॥ ७२॥

चौ०-मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥ १॥

[और कहा—] हे भाई! जाकर मातासे विदा माँग आओ और जल्दी वनको चलो। रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामजीकी वाणी सुनकर लक्ष्मणजी आनन्दित हो गये। बड़ी हानि दूर हो गयी और बड़ा लाभ हुआ! ॥१॥

हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥ २॥

वे हर्षित हृदयसे माता सुमित्राजीके पास आये, मानो अंधा फिरसे नेत्र पा गया हो। उन्होंने जाकर माताके चरणोंमें मस्तक नवाया। किन्तु उनका मन रघुकुलको आनन्द देनेवाले श्रीरामजी और जानकीजीके साथ था॥ २॥

पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा॥ ३॥

माताने उदास मन देखकर उनसे [कारण] पूछा। लक्ष्मणजीने सब कथा विस्तारसे कह सुनायी। सुमित्राजी कठोर वचनोंको सुनकर ऐसी सहम गयीं जैसे हिरनी चारों ओर वनमें आग लगी देखकर सहम जाती है॥ ३॥

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू॥
मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥ ४॥

लक्ष्मणने देखा कि आज (अब) अनर्थ हुआ। ये स्नेहवश काम बिगाड़ देंगी। इसलिये वे विदा माँगते हुए डरके मारे सकुचाते हैं [और मन-ही-मन सोचते हैं] कि हे विधाता! माता साथ जानेको कहेंगी या नहीं॥ ४॥

दो०-समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिर पापिनि दीन्ह कुदाउ॥ ७३॥

सुमित्राजीने श्रीरामजी और श्रीसीताजीके रूप, सुन्दर शील और स्वभावको समझकर और उनपर राजाका प्रेम देखकर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकेयीने बुरी तरह घात लगाया॥ ७३॥

चौ०-धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥ १॥

परन्तु कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभावसे ही हित चाहनेवाली सुमित्राजी कोमल वाणीसे बोलीं—हे तात! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकारसे स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं! ॥ १ ॥

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥ २॥

जहाँ श्रीरामजीका निवास हो वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्यका प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वनको जाते हैं तो अयोध्यामें तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है॥ २॥

गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥ ३॥

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी—इन सबकी सेवा प्राणके समान करनी चाहिये। फिर श्रीरामचन्द्रजी तो प्राणोंके भी प्रिय हैं, हृदयके भी जीवन हैं और सभीके स्वार्थरहित सखा हैं॥ ३॥

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥ ४॥

जगत्‌में जहाँतक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजीके नातेसे ही [पूजनीय और परम प्रिय] मानने योग्य हैं। हृदयमें ऐसा जानकर, हे तात! उनके साथ वन जाओ और जगत्‌में जीनेका लाभ उठाओ! ॥ ४॥

दो०—भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥ ७४॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, [हे पुत्र!] मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्यके पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्तने छल छोड़कर श्रीरामके चरणोंमें स्थान प्राप्त किया है॥ ७४॥

चौ०—पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥ १॥

संसारमें वही युवती स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरघुनाथजीका भक्त हो। नहीं तो जो रामसे विमुख पुत्रसे अपना हित जानती है, वह तो

बाँझ ही अच्छी। पशुकी भाँति उसका ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है ॥ १ ॥

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू ॥ २ ॥

तुम्हारे ही भाग्यसे श्रीरामजी वनको जा रहे हैं। हे तात! दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें स्वाभाविक प्रेम हो ॥ २ ॥

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥ ३ ॥

राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह—इनके वश स्वप्नमें भी मत होना। सब प्रकारके विकारोंका त्याग कर मन, वचन और कर्मसे श्रीसीतारामजीकी सेवा करना ॥ ३ ॥

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥ ४ ॥

तुमको वनमें सब प्रकारसे आराम है, जिसके साथ श्रीरामजी और सीताजीरूप पिता-माता हैं। हे पुत्र! तुम वही करना जिससे श्रीरामचन्द्रजी वनमें क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है ॥ ४ ॥

छं०—उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

हे तात! मेरा यही उपदेश है (अर्थात् तुम वही करना) जिससे वनमें तुम्हारे कारण श्रीरामजी और सीताजी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगरके सुखोंकी याद भूल जायँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजीने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्रीलक्ष्मणजी) को शिक्षा देकर [वन जानेकी] आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्रीसीताजी और श्रीरघुवीरजीके चरणोंमें तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो।

सो०—मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस ॥ ७५ ॥

माताके चरणोंमें सिर नवाकर हृदयमें डरते हुए [कि अब भी कोई विघ्न न आ जाय] लक्ष्मणजी तुरंत इस तरह चल दिये जैसे सौभाग्यवश कोई हिरण कठिन फंदेको तुड़ाकर भाग निकला हो ॥ ७५ ॥

चौ०—गए लखनु जहँ जानकिनाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए । चले संग नृपमंदिर आए ॥ १ ॥

लक्ष्मणजी वहाँ गये जहाँ श्रीजानकीनाथजी थे, और प्रियका साथ पाकर मनमें बड़े ही प्रसन्न हुए । श्रीरामजी और सीताजीके सुन्दर चरणोंकी वन्दना करके वे उनके साथ चले और राजभवनमें आये ॥ १ ॥

कहहिं परसपर पुर नर नारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने । बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥ २ ॥

नगरके स्त्री-पुरुष आपसमें कह रहे हैं कि विधाताने खूब बनाकर बात बिगाड़ी । उनके शरीर दुबले, मन दुखी और मुख उदास हो रहे हैं । वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे शहद छीन लिये जानेपर शहदकी मक्खियाँ व्याकुल हों ॥ २ ॥

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा । बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥ ३ ॥

सब हाथ मल रहे हैं और सिर धुनकर (पीटकर) पछता रहे हैं । मानो बिना पंखके पक्षी व्याकुल हो रहे हों । राजद्वारपर बड़ी भीड़ हो रही है । अपार विषादका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३ ॥

सचिवँ उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे ॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी । ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥ ४ ॥

'श्रीरामचन्द्रजी पधारे हैं' ये प्रिय वचन कहकर मन्त्रीने राजाको उठाकर बैठाया । सीतासहित दोनों पुत्रोंको [वनके लिये तैयार] देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए ॥ ४ ॥

दो०—सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ ॥ ७६ ॥

सीतासहित दोनों सुन्दर पुत्रोंको देख-देखकर राजा अकुलाते हैं और स्नेहवश बारंबार उन्हें हृदयसे लगा लेते हैं ॥ ७६ ॥

चौ०—सकइ न बोलि बिकल नरनाहू । सोक जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब मागा ॥ १ ॥

राजा व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते। हृदयमें शोकसे उत्पन्न हुआ भयानक संताप है। तब रघुकुलके वीर श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त प्रेमसे चरणोंमें सिर नवाकर उठकर विदा माँगी—॥ १ ॥

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै॥
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाइ होइ अपबादू॥ २॥

हे पिताजी! मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिये। हर्षके समय आप शोक क्यों कर रहे हैं? हे तात! प्रियके प्रेमवश प्रमाद (कर्तव्यकर्ममें त्रुटि) करनेसे जगत्में यश जाता रहेगा और निन्दा होगी॥ २॥

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं॥ ३॥

यह सुनकर स्नेहवश राजाने उठकर श्रीरघुनाथजीकी बाँह पकड़कर उन्हें बैठा लिया और कहा—हे तात! सुनो, तुम्हारे लिये मुनि लोग कहते हैं कि श्रीराम चराचरके स्वामी हैं॥ ३॥

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥ ४॥

शुभ और अशुभ कर्मोंके अनुसार ईश्वर हृदयमें विचारकर फल देता है। जो कर्म करता है वही फल पाता है। ऐसी वेदकी नीति है, यह सब कोई कहते हैं॥ ४॥

दो०—औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥ ७७॥

[किन्तु इस अवसरपर तो इसके विपरीत हो रहा है,] अपराध तो कोई और ही करे और उसके फलका भोग कोई और ही पावे। भगवान्‌की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जाननेयोग्य जगत्‌में कौन है?॥ ७७॥

चौ०—रायँ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥ १॥

राजाने इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीको रखनेके लिये छल छोड़कर बहुत-से उपाय किये। पर जब उन्होंने धर्मधुरन्धर, धीर और बुद्धिमान् श्रीरामजीका रुख देख लिया और वे रहते हुए न जान पड़े,॥ १॥

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए॥ २॥

तब राजाने सीताजीको हृदयसे लगा लिया और बड़े प्रेमसे बहुत प्रकारकी शिक्षा दी। वनके दुःसह दुःख कहकर सुनाये। फिर सास, ससुर तथा पिताके [पास रहनेके] सुखोंको समझाया ॥ २ ॥

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा ॥
औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई ॥ ३ ॥

परन्तु सीताजीका मन श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनुरक्त था। इसलिये उन्हें घर अच्छा नहीं लगा और न वन भयानक लगा। फिर और सब लोगोंने भी वनमें विपत्तियोंकी अधिकता बता-बताकर सीताजीको समझाया ॥ ३ ॥

सचिव नारि गुर नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ॥
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू ॥ ४ ॥

मन्त्री सुमन्त्रजीकी पत्नी और गुरु वशिष्ठजीकी स्त्री अरुन्धतीजी तथा और भी चतुर स्त्रियाँ स्नेहके साथ कोमल वाणीसे कहती हैं कि तुमको तो [राजाने] वनवास दिया नहीं है। इसलिये जो ससुर, गुरु और सास कहें, तुम तो वही करो ॥ ४ ॥

दो०–सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि ॥ ७८ ॥

यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुननेपर सीताजीको अच्छी नहीं लगी। [वे इस प्रकार व्याकुल हो गयीं] मानो शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी चाँदनी लगते ही चकई व्याकुल हो उठी हो ॥ ७८ ॥

चौ०–सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी ॥ १ ॥

सीताजी संकोचवश उत्तर नहीं देतीं। इन बातोंको सुनकर कैकेयी तमककर उठी। उसने मुनियोंके वस्त्र, आभूषण (माला, मेखला आदि) और बर्तन (कमण्डलु आदि) लाकर श्रीरामचन्द्रजीके आगे रख दिये और कोमल वाणीसे कहा—॥ १ ॥

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा ॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ ॥ २ ॥

हे रघुवीर! राजाको तुम प्राणोंके समान प्रिय हो। भीरु (प्रेमवश दुर्बल हृदयके) राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे। पुण्य, सुन्दर यश

और परलोक चाहे नष्ट हो जाय, पर तुम्हें वन जानेको वे कभी न कहेंगे ॥ २ ॥

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा ॥
भूपहि बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे ॥ ३ ॥

ऐसा विचारकर जो तुम्हें अच्छा लगे वही करो। माताकी सीख सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने [बड़ा] सुख पाया। परन्तु राजाको ये वचन बाणके समान लगे। [वे सोचने लगे] अब भी अभागे प्राण [क्यों] नहीं निकलते ! ॥ ३ ॥

लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू ॥
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई ॥ ४ ॥

राजा मूर्छित हो गये, लोग व्याकुल हैं। किसीको कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें। श्रीरामचन्द्रजी तुरंत मुनिका वेष बनाकर और माता-पिताको सिर नवाकर चल दिये ॥ ४ ॥

दो०—सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत ॥ ७९ ॥

वनका सब साज-सामान सजकर (वनके लिये आवश्यक वस्तुओंको साथ लेकर) श्रीरामचन्द्रजी स्त्री (श्रीसीताजी) और भाई (लक्ष्मणजी) सहित, ब्राह्मण और गुरुके चरणोंकी वन्दना करके सबको अचेत करके चले ॥ ७९ ॥

चौ०—निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े ॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए ॥ १ ॥

राजमहलसे निकलकर श्रीरामचन्द्रजी वशिष्ठजीके दरवाजेपर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरहकी अग्निमें जल रहे हैं। उन्होंने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया। फिर श्रीरामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंकी मण्डलीको बुलाया ॥ १ ॥

गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे ॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥ २ ॥

गुरुजीसे कहकर उन सबको वर्षाशन (वर्षभरका भोजन) दिये और आदर, दान तथा विनयसे उन्हें वशमें कर लिया। फिर याचकोंको दान और मान देकर सन्तुष्ट किया तथा मित्रोंको पवित्र प्रेमसे प्रसन्न किया ॥ २ ॥

दासीं दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौंपि बोले कर जोरी॥
सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं॥ ३॥

फिर दास-दासियोंको बुलाकर उन्हें गुरुजीको सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले—हे गुसाईं! इन सबकी माता-पिताके समान सार-सँभार (देख-रेख) करते रहियेगा॥ ३॥

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रकारसे हितकारी मित्र वही होगा जिसकी चेष्टासे महाराज सुखी रहें॥ ४॥

दो०—**मातु सकल मोरे बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन।**
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन॥ ८०॥

हे परम चतुर पुरवासी सज्जनो! आपलोग सब वही उपाय करियेगा जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरहके-दुःखसे दुखी न हों॥ ८०॥

चौ०—एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥ १॥

इस प्रकार श्रीरामजीने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरुजीके चरणकमलोंमें सिर नवाया। फिर गणेशजी, पार्वतीजी और कैलासपति महादेवजीको मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर श्रीरघुनाथजी चले॥ १॥

राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू॥ २॥

श्रीरामजीके चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया। नगरका आर्तनाद (हाहाकार) सुना नहीं जाता। लङ्कामें बुरे शकुन होने लगे। अयोध्यामें अत्यन्त शोक छा गया और देवलोकमें सब हर्ष और विषाद दोनोंके वशमें हो गये। [हर्ष इस बातका था कि अब राक्षसोंका नाश होगा और विषाद अयोध्यावासियोंके शोकके कारण था]॥ २॥

गइ मुरछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥ ३॥

मूर्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमन्त्रको बुलाकर ऐसा कहने लगे—श्रीराम वनको चले गये, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। न जाने ये किस सुखके लिये शरीरमें टिक रहे हैं॥ ३॥

एहि तें कवन व्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥ ४॥

इससे अधिक बलवती और कौन-सी व्यथा होगी जिस दुःखको पाकर प्राण शरीरको छोड़ेंगे। फिर धीरज धरकर राजाने कहा—हे सखा! तुम रथ लेकर श्रीरामके साथ जाओ॥ ४॥

दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि॥ ८१॥

अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारोंको और सुकुमारी जानकीको रथमें चढ़ाकर, वन दिखलाकर चार दिनके बाद लौट आना॥ ८१॥

चौ०—जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥ १॥

यदि धैर्यवान् दोनों भाई न लौटें—क्योंकि श्रीरघुनाथजी प्रणके सच्चे और दृढ़तासे नियमका पालन करनेवाले हैं—तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभो! जनककुमारी सीताजीको तो लौटा दीजिये॥ १॥

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥ २॥

जब सीता वनको देखकर डरें, तब मौका पाकर मेरी यह सीख उनसे कहना कि तुम्हारे सास और ससुरने ऐसा सन्देश कहा है कि हे पुत्री! तुम लौट चलो, वनमें बहुत क्लेश हैं॥ २॥

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥ ३॥

कभी पिताके घर, कभी ससुराल, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं रहना। इस प्रकार तुम बहुत-से उपाय करना। यदि सीताजी लौट आयीं तो मेरे प्राणोंका सहारा हो जायगा॥ ३॥

नाहिं त मोर मरन परिनामा। कछु न बसाइ भएँ बिधि बामा॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। रामु लखनु सिय आनि देखाऊ॥ ४॥

नहीं तो अन्तमें मेरा मरण ही होगा। विधाताके विपरीत होनेपर कुछ वश नहीं चलता। हा! राम, लक्ष्मण और सीताको लाकर दिखाओ। ऐसा कहकर राजा मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४॥

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥ ८२॥

सुमन्त्रजी राजाकी आज्ञा पाकर, सिर नवाकर और बहुत जल्दी रथ जुड़वाकर वहाँ गये जहाँ नगरके बाहर सीताजीसहित दोनों भाई थे ॥ ८२ ॥

चौ०—तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए ॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई ॥ १ ॥

तब (वहाँ पहुँचकर) सुमन्त्रने राजाके वचन श्रीरामचन्द्रजीको सुनाये और विनती करके उनको रथपर चढ़ाया। सीताजीसहित दोनों भाई रथपर चढ़कर हृदयमें अयोध्याको सिर नवाकर चले ॥ १ ॥

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको जाते हुए और अयोध्याको अनाथ [होते हुए] देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिये। कृपाके समुद्र श्रीरामजी उन्हें बहुत तरह-से समझाते हैं, तो वे [अयोध्याकी ओर] लौट जाते हैं; परन्तु प्रेमवश फिर लौट आते हैं ॥ २ ॥

लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधिआरी ॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी ॥ ३ ॥

अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है। मानो अन्धकारमयी कालरात्रि ही हो। नगरके नर-नारी भयानक जन्तुओंके समान एक-दूसरेको देखकर डर रहे हैं ॥ ३ ॥

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥ ४ ॥

घर श्मशान, कुटुम्बी भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानो यमराजके दूत हैं। बगीचोंमें वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता ॥ ४ ॥

दो०—हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर ॥ ८३ ॥

करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलनेके लिये पाले हुए हिरन, नगरके [गाय, बैल, बकरी आदि] पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर—॥ ८३ ॥

चौ०—राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े ॥
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी ॥ १ ॥

श्रीरामजीके वियोगमें सभी व्याकुल हुए जहाँ-तहाँ [ऐसे चुपचाप स्थिर होकर] खड़े हैं, मानो तस्वीरोंमें लिखकर बनाये हुए हैं। नगर मानो फलोंसे परिपूर्ण बड़ा भारी सघन वन था। नगरनिवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत-से पशु-पक्षी थे। (अर्थात् अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलोंको देनेवाली नगरी थी और सब स्त्री-पुरुष सुखसे उन फलोंको प्राप्त करते थे) ॥ १ ॥

बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥ २॥

विधाताने कैकेयीको भीलनी बनाया, जिसने दसों दिशाओंमें दुःसह दावाग्नि (भयानक आग) लगा दी। श्रीरामचन्द्रजीके विरहकी इस अग्निको लोग सह न सके। सब लोग व्याकुल होकर भाग चले ॥ २ ॥

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥ ३॥

सबने मनमें विचार कर लिया कि श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके बिना सुख नहीं है। जहाँ श्रीरामजी रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा। श्रीरामचन्द्रजीके बिना अयोध्यामें हमलोगोंका कुछ काम नहीं है ॥ ३ ॥

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥ ४॥

ऐसा विचार दृढ़ करके देवताओंको भी दुर्लभ सुखोंसे पूर्ण घरोंको छोड़कर सब श्रीरामचन्द्रजीके साथ चल पड़े। जिनको श्रीरामजीके चरणकमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषयभोग वशमें कर सकते हैं ॥ ४ ॥

दो०—बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥ ८४॥

बच्चों और बूढ़ोंको घरोंमें छोड़कर सब लोग साथ हो लिये। पहले दिन श्रीरघुनाथजीने तमसा नदीके तीरपर निवास किया ॥ ८४ ॥

चौ०—रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी॥
करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहिं पीर पराई॥ १॥

प्रजाको प्रेमवश देखकर श्रीरघुनाथजीके दयालु हृदयमें बड़ा दुःख हुआ। प्रभु श्रीरघुनाथजी करुणामय हैं। परायी पीड़ाको वे तुरंत पा जाते हैं (अर्थात् दूसरेका दुःख देखकर तुरंत स्वयं दुःखित हो जाते हैं) ॥ १ ॥

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए ॥
किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे ॥ २ ॥

प्रेमयुक्त कोमल और सुन्दर वचन कहकर श्रीरामजीने बहुत प्रकारसे लोगोंको समझाया और बहुतेरे धर्मसम्बन्धी उपदेश दिये; परन्तु प्रेमवश लोग लौटाये लौटते नहीं ॥ २ ॥

सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई ॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमायाँ मति मोई ॥ ३ ॥

शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता। श्रीरघुनाथजी असमंजसके अधीन हो गये। (दुविधामें पड़ गये।) शोक और परिश्रम (थकावट) के मारे लोग सो गये और कुछ देवताओंकी मायासे भी उनकी बुद्धि मोहित हो गयी ॥ ३ ॥

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोज मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपायँ बनिहि नहिं बाता ॥ ४ ॥

जब दो पहर रात बीत गयी, तब श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमपूर्वक मन्त्री सुमन्त्रसे कहा—हे तात! रथके खोज मारकर (अर्थात् पहियोंके चिह्नोंसे दिशाका पता न चले इस प्रकार) रथको हाँकिये। और किसी उपायसे बात नहीं बनेगी ॥ ४ ॥

दो०—राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ ॥ ८५ ॥

शंकरजीके चरणोंमें सिर नवाकर श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी रथपर सवार हुए। मन्त्रीने तुरंत ही रथको इधर-उधर खोज छिपाकर चला दिया ॥ ८५ ॥

चौ०—जागे सकल लोग भएँ भोरू। गे रघुनाथ भयउ अति सोरू ॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं ॥ १ ॥

सवेरा होते ही सब लोग जागे, तो बड़ा शोर मचा कि श्रीरघुनाथजी चले गये। कहीं रथका खोज नहीं पाते, सब 'हा राम! हा राम!' पुकारते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं ॥ १ ॥

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू ॥
एकहि एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू ॥ २ ॥

मानो समुद्रमें जहाज डूब गया हो, जिससे व्यापारियोंका समुदाय

बहुत ही व्याकुल हो उठा हो। वे एक-दूसरेको उपदेश देते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीने हमलोगोंको क्लेश होगा, यह जानकर छोड़ दिया है ॥ २ ॥

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना ॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागें दीन्हा ॥ ३ ॥

वे लोग अपनी निन्दा करते हैं और मछलियोंकी सराहना करते हैं। [कहते हैं—] श्रीरामचन्द्रजीके बिना हमारे जीनेको धिक्कार है। विधाताने यदि प्यारेका वियोग ही रचा, तो फिर उसने माँगनेपर मृत्यु क्यों नहीं दी ॥ ३ ॥

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना ॥ ४ ॥

इस प्रकार बहुत-से प्रलाप करते हुए वे सन्तापसे भरे हुए अयोध्याजीमें आये। उन लोगोंके विषम वियोगकी दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता। [चौदह सालकी] अवधिकी आशासे ही वे प्राणोंको रख रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि ॥ ८६ ॥

[सब] स्त्री-पुरुष श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये नियम और व्रत करने लगे और ऐसे दुखी हो गये जैसे चकवा, चकवी और कमल सूर्यके बिना दीन हो जाते हैं ॥ ८६ ॥

चौ०—सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी ॥ १ ॥

सीताजी और मन्त्रीसहित दोनों भाई शृङ्गवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ गङ्गाजीको देखकर श्रीरामजी रथसे उतर पड़े और बड़े हर्षके साथ उन्होंने दण्डवत् की ॥ १ ॥

लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा ॥
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला ॥ २ ॥

लक्ष्मणजी, सुमन्त्र और सीताजीने भी प्रणाम किया। सबके साथ श्रीरामचन्द्रजीने सुख पाया। गङ्गाजी समस्त आनन्द-मङ्गलोंकी मूल हैं। वे सब सुखोंकी करनेवाली और सब पीड़ाओंकी हरनेवाली हैं ॥ २ ॥

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई ॥ ३ ॥

अनेक कथा-प्रसङ्ग कहते हुए श्रीरामजी गङ्गाजीकी तरङ्गोंको देख रहे हैं। उन्होंने मन्त्रीको, छोटे भाई लक्ष्मणजीको और प्रिया सीताजीको देवनदी गङ्गाजीकी बड़ी महिमा सुनायी ॥ ३ ॥

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू॥ ४ ॥

इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्गका सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिनके स्मरण-मात्रसे [बार-बार जन्मने और मरनेका] महान् श्रम मिट जाता है, उनको 'श्रम' होना—यह केवल लौकिक व्यवहार (नरलीला) है ॥ ४ ॥

दो०—सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु ॥ ८७ ॥

शुद्ध (प्रकृतिजन्य त्रिगुणोंसे रहित, मायातीत दिव्य मङ्गलविग्रह) सच्चिदानन्दकन्दस्वरूप सूर्यकुलके ध्वजारूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मनुष्यों-के सदृश ऐसे चरित्र करते हैं जो संसाररूपी समुद्रके पार उतरनेके लिये पुलके समान हैं ॥ ८७ ॥

चौ०—यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई॥
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा॥ १ ॥

जब निषादराज गुहने यह खबर पायी, तब आनन्दित होकर उसने अपने प्रियजनों और भाई-बन्धुओंको बुला लिया और भेंट देनेके लिये फल, मूल (कन्द) लेकर और उन्हें भारों (बहँगियों) में भरकर मिलनेके लिये चला। उसके हृदयमें हर्षका पार नहीं था ॥ १ ॥

करि दंडवत भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई॥ २ ॥

दण्डवत् करके भेंट सामने रखकर वह अत्यन्त प्रेमसे प्रभुको देखने लगा। श्रीरघुनाथजीने स्वाभाविक स्नेहके वश होकर उसे अपने पास बैठा-कर कुशल पूछी ॥ २ ॥

नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउँ भागभाजन जन लेखें॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥ ३ ॥

निषादराजने उत्तर दिया—हे नाथ! आपके चरणकमलके दर्शनसे ही कुशल है [आपके चरणारविन्दोंके दर्शनकर] आज मैं भाग्यवान्

पुरुषोंकी गिनतीमें आ गया। हे देव! यह पृथ्वी, धन और घर सब आपका है। मैं तो परिवारसहित आपका नीच सेवक हूँ॥ ३॥

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥ ४॥

अब कृपा करके पुर (शृंगवेरपुर) में पधारिये और इस दासकी प्रतिष्ठा बढ़ाइये, जिससे सब लोग मेरे भाग्यकी बड़ाई करें। [श्रीरामचन्द्रजीने कहा—] हे सुजान सखा! तुमने जो कुछ कहा सब सत्य है। परन्तु पिताजीने मुझको और ही आज्ञा दी है॥ ४॥

दो०—बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥ ८८॥

[उनके आज्ञानुसार] मुझे चौदह वर्षतक मुनियोंका व्रत और वेष धारणकर और मुनियोंके योग्य आहार करते हुए वनमें ही बसना है, गाँवके भीतर निवास करना उचित नहीं है। यह सुनकर गुहको बड़ा दुःख हुआ॥ ८८॥

चौ०—राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥ १॥

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके रूपको देखकर गाँवके स्त्री-पुरुष प्रेमके साथ चर्चा करते हैं। [कोई कहती है—] हे सखी! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे [सुन्दर सुकुमार] बालकोंको वनमें भेज दिया है॥ १॥

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहि बिधि दीन्हा॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिसुपा मनोहर जाना॥ २॥

कोई एक कहते हैं—राजाने अच्छा ही किया, इसी बहाने हमें भी ब्रह्माने नेत्रोंका लाभ दिया। तब निषादराजने हृदयमें अनुमान किया, तो अशोकके पेड़को [उनके ठहरनेके लिये] मनोहर समझा॥ २॥

लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥
पुरजन करि जोहारु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए॥ ३॥

उसने श्रीरघुनाथजीको ले जाकर वह स्थान दिखाया। श्रीरामचन्द्रजीने [देखकर] कहा कि यह सब प्रकारसे सुन्दर है। पुरवासी लोग जोहार (वन्दना) करके अपने-अपने घर लौटे और श्रीरामचन्द्रजी सन्ध्या करने पधारे॥ ३॥

गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥ ४॥

गुहने [इसी बीच] कुश और कोमल पत्तोंकी कोमल और सुन्दर साथरी सजाकर बिछा दी; और पवित्र, मीठे और कोमल देख-देखकर दोनोंमें भर-भरकर फल-मूल और पानी रख दिया [अथवा अपने हाथसे फल-मूल दोनोंमें भर-भरकर रख दिये]॥ ४॥

दो०—सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ॥ ८९॥

सीताजी, सुमन्त्रजी और भाई लक्ष्मणजीसहित कन्द-मूल-फल खाकर रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी लेट गये। भाई लक्ष्मणजी उनके पैर दबाने लगे॥ ८९॥

चौ०—उठे लखनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥ १॥

फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको सोते जानकर लक्ष्मणजी उठे और कोमल वाणीसे मन्त्री सुमन्त्रजीको सोनेके लिये कहकर वहाँसे कुछ दूरपर धनुष-बाणसे सजकर, वीरासनसे बैठकर जागने (पहरा देने) लगे॥ १॥

गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई॥ २॥

गुहने विश्वासपात्र पहरेदारोंको बुलाकर अत्यन्त प्रेमसे जगह-जगह नियुक्त कर दिया। और आप कमरमें तरकस बाँधकर तथा धनुषपर बाण चढ़ाकर लक्ष्मणजीके पास जा बैठा॥ २॥

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदयँ बिषादू॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई॥ ३॥

प्रभुको जमीनपर सोते देखकर प्रेमवश निषादराजके हृदयमें विषाद हो आया। उसका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगा। वह प्रेमसहित लक्ष्मणजीसे वचन कहने लगा—॥ ३॥

भूपति भवन सुभायँ सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥ ४॥

महाराज दशरथजीका महल तो स्वभावसे ही सुन्दर है, इन्द्रभवन भी जिसकी समानता नहीं पा सकता। उसमें सुन्दर मणियोंके रचे चौबारे

(छतके ऊपर बँगले) हैं, जिन्हें मानो रतिके पति कामदेवने अपने ही हाथों सजाकर बनाया है; ॥ ४ ॥

दो०–सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुबास ।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास ॥ ९० ॥

जो पवित्र, बड़े ही विलक्षण, सुन्दर भोगपदार्थोंसे पूर्ण और फूलोंकी सुगन्धसे सुवासित हैं; जहाँ सुन्दर पलँग और मणियोंके दीपक हैं तथा सब प्रकारका पूरा आराम है; ॥ ९० ॥

चौ०–बिबिध बसन उपधान तुराईं । छीर फेन मृदु बिसद सुहाईं ॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं । निज छबि रति मनोज मदु हरहीं ॥ १ ॥

जहाँ [ओढ़ने-बिछानेके] अनेकों वस्त्र, तकिये और गद्दे हैं, जो दूधके फेनके समान कोमल, निर्मल (उज्ज्वल) और सुन्दर हैं; वहाँ (उन चौबारोंमें) श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी रातको सोया करते थे और अपनी शोभासे रति और कामदेवके गर्वको हरण करते थे ॥ १ ॥

ते सिय रामु साथरीं सोए । श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए ॥
मातु पिता परिजन पुरबासी । सखा सुसील दास अरु दासी ॥ २ ॥

वही श्रीसीता और श्रीरामजी आज घास-फूसकी साथरीपर थके हुए बिना वस्त्रके ही सोये हैं । ऐसी दशामें वे देखे नहीं जाते । माता, पिता, कुटुम्बी, पुरवासी (प्रजा), मित्र, अच्छे शील-स्वभावके दास और दासियाँ ॥ २ ॥

जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं । महि सोवत तेइ राम गोसाईं ॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ । ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥ ३ ॥

सब जिनकी अपने प्राणोंकी तरह सार-सँभार करते थे, वही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी आज पृथ्वीपर सो रहे हैं । जिनके पिता जनकजी हैं, जिनका प्रभाव जगत्में प्रसिद्ध है, जिनके ससुर इन्द्रके मित्र रघुराज दशरथजी हैं, ॥ ३ ॥

रामचंदु पति सो बैदेही । सोवत महि बिधि बाम न केही ॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू । करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥ ४ ॥

और पति श्रीरामचन्द्रजी हैं, वही जानकीजी आज जमीनपर सो रही हैं । विधाता किसको प्रतिकूल नहीं होता ! सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी क्या वनके योग्य हैं ? लोग सच कहते हैं कि कर्म (भाग्य) ही प्रधान है ॥ ४ ॥

दो०—**कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।**
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥ ९१ ॥

कैकयराजकी लड़की नीचबुद्धि कैकेयीने बड़ी ही कुटिलता की, जिसने रघुनन्दन श्रीरामजीको और जानकीजीको सुखके समय दुःख दिया ॥ ९१ ॥

चौ०—**भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी ॥**
भयउ बिषादु निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी ॥ १ ॥

वह सूर्यकुलरूपी वृक्षके लिये कुल्हाड़ी हो गयी। उस कुबुद्धिने सम्पूर्ण विश्वको दुखी कर दिया। श्रीराम-सीताको जमीनपर सोते हुए देखकर निषादको बड़ा दुःख हुआ ॥ १ ॥

बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥ २ ॥

तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके रससे सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले—हे भाई ! कोई किसीको सुख-दुःखका देनेवाला नहीं है। सब अपने ही किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं ॥ २ ॥

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू ॥ ३ ॥

संयोग (मिलना), वियोग (बिछुड़ना), भले-बुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन—ये सभी भ्रमके फंदे हैं। जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, कर्म और काल—जहाँतक जगत्‌के जंजाल हैं; ॥ ३ ॥

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं ॥ ४ ॥

धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँतक व्यवहार हैं जो देखने, सुनने और मनके अंदर विचारनेमें आते हैं, इन सबका मूल मोह (अज्ञान) ही है। परमार्थतः ये नहीं हैं ॥ ४ ॥

दो०—**सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।**
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥ ९२ ॥

जैसे स्वप्नमें राजा भिखारी हो जाय या कंगाल स्वर्गका स्वामी इन्द्र हो जाय, तो जागनेपर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है; वैसे ही इस दृश्य-प्रपञ्चको हृदयसे देखना चाहिये ॥ ९२ ॥

चौ०—अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू ॥
मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥ १ ॥

ऐसा विचारकर क्रोध नहीं करना चाहिये और न किसीको व्यर्थ दोष ही देना चाहिये। सब लोग मोहरूपी रात्रिमें सोनेवाले हैं और सोते हुए अनेकों प्रकारके स्वप्न दिखायी देते हैं ॥ १ ॥

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा ॥ २ ॥

इस जगत्‌रूपी रात्रिमें योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपञ्च (मायिक जगत्) से छूटे हुए हैं। जगत्‌में जीवको जागा हुआ तभी जानना चाहिये जब सम्पूर्ण भोग-विलासोंसे वैराग्य हो जाय ॥ २ ॥

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥
सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥ ३ ॥

विवेक होनेपर मोहरूपी भ्रम भाग जाता है, तब (अज्ञानका नाश होनेपर) श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम होता है। हे सखा! मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम होना, यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ (पुरुषार्थ) है ॥ ३ ॥

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥ ४ ॥

श्रीरामजी परमार्थस्वरूप (परमवस्तु) परब्रह्म हैं। वे अविगत (जाननेमें न आनेवाले), अलख (स्थूल दृष्टिसे देखनेमें न आनेवाले), अनादि (आदिरहित), अनुपम (उपमारहित), सब विकारोंसे रहित और भेदशून्य हैं, वेद जिनका नित्य 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल ॥ ९३ ॥

वही कृपालु श्रीरामचन्द्रजी भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ और देवताओंके हितके लिये मनुष्यशरीर धारण करके लीलाएँ करते हैं, जिनके सुननेसे जगत्‌के जंजाल मिट जाते हैं ॥ ९३ ॥

मासपारायण, पंद्रहवाँ विश्राम

चौ०—सखा समुझि अस परिहरि मोहू । सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा । जागे जग मंगल सुखदारा ॥ १ ॥

हे सखा ! ऐसा समझ, मोहको त्यागकर श्रीसीतारामजीके चरणोंमें प्रेम करो । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके गुण कहते-कहते सबेरा हो गया । तब जगत्का मङ्गल करनेवाले और उसे सुख देनेवाले श्रीरामजी जागे ॥ १ ॥

सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान बट छीर मगावा ॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए । देखि सुमंत्र नयन जल छाए ॥ २ ॥

शौचके सब कार्य करके [नित्य] पवित्र और सुजान श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया । फिर बड़का दूध मँगाया और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित उस दूधसे सिरपर जटाएँ बनायीं । यह देखकर सुमन्त्रजीके नेत्रोंमें जल छा गया ॥ २ ॥

हृदयँ दाहु अति बदन मलीना । कह कर जोरि बचन अति दीना ॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा । लै रथु जाहु राम कें साथा ॥ ३ ॥

उनका हृदय अत्यन्त जलने लगा, मुँह मलिन (उदास) हो गया । वे हाथ जोड़कर अत्यन्त दीन वचन बोले—हे नाथ ! मुझे कोसलनाथ दशरथजीने ऐसी आज्ञा दी थी कि तुम रथ लेकर श्रीरामजीके साथ जाओ, ॥ ३ ॥

बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी । संसय सकल सँकोच निबेरी ॥ ४ ॥

वन दिखाकर, गङ्गास्नान कराकर दोनों भाइयोंको तुरंत लौटा लाना । सब संशय और संकोचको दूर करके लक्ष्मण, राम, सीताको फिरा लाना ॥४॥

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥ ९४ ॥

महाराजने ऐसा कहा था, अब प्रभु जैसा कहें, मैं वही करूँ; मैं आपकी बलिहारी हूँ । इस प्रकार विनती करके वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े और उन्होंने बालककी तरह रो दिया ॥ ९४ ॥

चौ०—तात कृपा करि कीजिअ सोई । जातें अवध अनाथ न होई ॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा ॥ १ ॥

[और कहा—] हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या

अनाथ न हो। श्रीरामजीने मन्त्रीको उठाकर धैर्य बँधाते हुए समझाया कि हे तात ! आपने तो धर्मके सभी सिद्धान्तोंको छान डाला है ॥ १ ॥

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥ २ ॥

शिबि, दधीचि और राजा हरिश्चन्द्रने धर्मके लिये करोड़ों (अनेकों) कष्ट सहे थे। बुद्धिमान् राजा रन्तिदेव और बलि बहुत-से संकट सहकर भी धर्मको पकड़े रहे (उन्होंने धर्मका परित्याग नहीं किया) ॥ २ ॥

धरम न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥ ३ ॥

वेद, शास्त्र और पुराणोंमें कहा गया है कि सत्यके समान दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उस धर्मको सहज ही पा लिया है। इस [सत्यरूपी धर्म] का त्याग करनेसे तीनों लोकोंमें अपयश छा जायगा ॥ ३ ॥

संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ ॥ ४ ॥

प्रतिष्ठित पुरुषके लिये अपयशकी प्राप्ति करोड़ों मृत्युके समान भीषण संताप देनेवाली है। हे तात ! मैं आपसे अधिक क्या कहूँ। लौटकर उत्तर देनेमें भी पापका भागी होता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि ॥ ९५ ॥

आप जाकर पिताके चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कारके साथ ही हाथ जोड़कर बिनती करियेगा कि हे तात ! आप मेरी किसी बातकी चिन्ता न करें ॥ ९५ ॥

चौ०—तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करउँ तात कर जोरें ॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें ॥ १ ॥

आप भी पिताके समान ही मेरे बड़े हितैषी हैं। हे तात ! मैं हाथ जोड़कर आपसे बिनती करता हूँ कि आपका भी सब प्रकारसे वही कर्तव्य है जिसमें पिताजी हमलोगोंके सोचमें दुःख न पावें ॥ १ ॥

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू ॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजी और सुमन्त्रका यह संवाद सुनकर निषादराज कुटुम्बियों-

सहित व्याकुल हो गया। फिर लक्ष्मणजीने कुछ कड़वी बात कही। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उसे बहुत ही अनुचित जानकर उनको मना किया ॥२॥

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥
कह सुमंत्र पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने सकुचाकर, अपनी सौगंध दिलाकर सुमन्त्रजीसे कहा कि जाकर लक्ष्मणका यह सन्देश न कहियेगा। सुमन्त्रने फिर राजाका सन्देश कहा कि सीता वनके क्लेश न सह सकेंगी ॥ ३ ॥

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया ॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना ॥ ४ ॥

अतएव जिस तरह सीता अयोध्याको लौट आवें, तुमको और श्रीरामचन्द्रको वही उपाय करना चाहिये। नहीं तो मैं बिल्कुल ही बिना सहारेका होकर वैसे ही नहीं जीऊँगा जैसे बिना जलके मछली नहीं जीती ॥ ४ ॥

दो०—मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान ॥ ९६ ॥

सीताके मायके (पिताके घर) और ससुरालमें सब सुख हैं। जबतक यह विपत्ति दूर नहीं होती, तबतक वे जब जहाँ जी चाहे, वहीं सुखसे रहेंगी ॥ ९६ ॥

चौ०—बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती ॥
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना ॥ १ ॥

राजाने जिस तरह (जिस दीनता और प्रेमसे) विनती की है, वह दीनता और प्रेम कहा नहीं जा सकता। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने पिताका सन्देश सुनकर सीताजीको करोड़ों (अनेकों) प्रकारसे सीख दी ॥१॥

सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खभारू ॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही ॥ २ ॥

[उन्होंने कहा—] जो तुम घर लौट जाओ, तो सास, ससुर, गुरु, प्रियजन एवं कुटुम्बी सबकी चिन्ता मिट जाय। पतिके वचन सुनकर जानकीजी कहती हैं—हे प्राणपति ! हे परमस्नेही ! सुनिये ॥ २ ॥

प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी ॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! आप करुणामय और परम ज्ञानी हैं। [कृपा करके विचार

तो कीजिये] शरीरको छोड़कर छाया अलग कैसे रोकी रह सकती है ? सूर्यकी प्रभा सूर्यको छोड़कर कहाँ जा सकती है ! और चाँदनी चन्द्रमाको त्यागकर कहाँ जा सकती है ! ॥ ३ ॥

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई । कहति सचिव सन गिरा सुहाई ॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी । उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी ॥ ४ ॥

इस प्रकार पतिको प्रेममयी विनती सुनाकर सीताजी मन्त्रीसे सुहावनी वाणी कहने लगीं—आप मेरे पिताजी और ससुरजीके समान मेरा हित करनेवाले हैं । आपको मैं बदलेमें उत्तर देती हूँ, यह बहुत ही अनुचित है ॥ ४ ॥

दो०—आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात ।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात ॥ ९७ ॥

किन्तु हे तात ! मैं आर्त होकर ही आपके सम्मुख हुई हूँ, आप बुरा न मानियेगा ! आर्यपुत्र (स्वामी) के चरणकमलोंके बिना जगत्में जहाँ-तक नाते हैं सभी मेरे लिये व्यर्थ हैं ॥ ९७ ॥

चौ०—पितु बैभव बिलास मैं डीठा । नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा ॥
सुखनिधान अस पितु गृह मोरें । पिय बिहीन मन भाव न भोरें ॥ १ ॥

मैंने पिताजीके ऐश्वर्यकी छटा देखी है, जिनके चरण रखनेकी चौकीसे सर्वशिरोमणि राजाओंके मुकुट मिलते हैं (अर्थात् बड़े-बड़े राजा जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं) ऐसे पिताका घर भी, जो सब प्रकारके सुखोंका भण्डार है, पतिके बिना मेरे मनको भूलकर भी नहीं भाता ॥ १ ॥

ससुर चक्कवइ कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई । अरध सिंघासन आसनु देई ॥ २ ॥

मेरे ससुर कोसलराज चक्रवर्ती सम्राट् हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकोंमें प्रकट है; इन्द्र भी आगे होकर जिनका स्वागत करता है और अपने आधे सिंहासनपर बैठनेके लिये स्थान देता है, ॥ २ ॥

ससुरु एतादस अवध निवासू । प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा । मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥ ३ ॥

ऐसे [ऐश्वर्य और प्रभावशाली] ससुर; [उनकी राजधानी] अयोध्याका निवास; प्रिय कुटुम्बी और माताके समान सासुएँ—ये कोई भी श्रीरघुनाथ-जीके चरणकमलोंकी रजके बिना मुझे स्वप्नमें भी सुखदायक नहीं लगते ॥ ३ ॥

अगम पंथ वनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा ॥
कोल किरात कुरंग विहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा ॥ ४ ॥

दुर्गम रास्ते, जंगली धरती, पहाड़, हाथी, सिंह, अथाह तालाब एवं नदियाँ; कोल, भील, हिरन और पक्षी—प्राणपति (श्रीरघुनाथजी) के साथ रहते ये सभी मुझे सुख देनेवाले होंगे ॥ ४ ॥

दो०—सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ ॥ ९८ ॥

अतः सास और ससुरके पाँव पड़कर मेरी ओरसे विनती कीजियेगा कि वे मेरा कुछ भी सोच न करें; मैं वनमें स्वभावसे ही सुखी हूँ ॥ ९८ ॥

चौ०—प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरें धनु भाथा ॥
नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें ॥ १ ॥

वीरोंमें अग्रगण्य तथा धनुष और [बाणोंसे भरे] तरकश धारण किये मेरे प्राणनाथ और प्यारे देवर साथ हैं। इससे मुझे न रास्तेकी थकावट है, न भ्रम है और न मेरे मनमें कोई दुःख ही है। आप मेरे लिये भूलकर भी सोच न करें ॥ १ ॥

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी ॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना ॥ २ ॥

सुमन्त्र सीताजीकी शीतल वाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गये जैसे साँप मणि खो जानेपर। नेत्रोंसे कुछ सूझता नहीं, कानोंसे सुनायी नहीं देता। वे बहुत व्याकुल हो गये, कुछ कह नहीं सकते ॥ २ ॥

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती ॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनंदन दीन्हे ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने उनका बहुत प्रकारसे समाधान किया। तो भी उनकी छाती ठंडी न हुई। साथ चलनेके लिये मन्त्रीने अनेकों यत्न किये (युक्तियाँ पेश कीं), पर [रघुनन्दन श्रीरामजी उन सब युक्तियोंका] यथोचित उत्तर देते गये ॥ ३ ॥

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई ॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई ॥ ४ ॥

श्रीरामजीकी आज्ञा मेटी नहीं जा सकती। कर्मकी गति कठिन है, उसपर कुछ भी वश नहीं चलता। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीके चरणोंमें

सिर नवाकर सुमन्त्र इस तरह लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन (पूँजी) गँवाकर लौटे ॥ ४ ॥

दो०—रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं ।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं ॥ ९९ ॥

सुमन्त्रने रथको हाँका, घोड़े श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख-देखकर हिनहिनाते हैं। यह देखकर निषादलोग विषादके वश होकर सिर धुन-धुनकर (पीट-पीटकर) पछताते हैं ॥ ९९ ॥

चौ०—जासु बियोग बिकल पसु ऐसें । प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें ॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाए । सुरसरि तीर आपु तब आए ॥ १ ॥

जिनके वियोगमें पशु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके वियोगमें प्रजा, माता और पिता कैसे जीते रहेंगे ? श्रीरामचन्द्रजीने जबर्दस्ती सुमन्त्रको लौटाया। तब आप गङ्गाजीके तीरपर आये ॥ १ ॥

मागी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥ २ ॥

श्रीरामने केवटसे नाव माँगी, पर वह लाता नहीं। वह कहने लगा—मैंने तुम्हारा मर्म (भेद) जान लिया। तुम्हारे चरणकमलोंकी धूलके लिये सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी है, ॥ २ ॥

छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ॥ ३ ॥

जिसके छूते ही पत्थरकी शिला सुन्दरी स्त्री हो गयी [मेरी नाव तो काठकी है]। काठ पत्थरसे कठोर तो होता नहीं। मेरी नाव भी मुनिकी स्त्री हो जायगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जायगी, मैं लुट जाऊँगा [अथवा रास्ता रुक जायगा जिससे आप पार न हो सकेंगे और मेरी रोजी मारी जायगी] (मेरी कमाने-खानेकी राह भी मारी जायगी) ॥३॥

एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू । नहिं जानउँ कछु अउर कबारू ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥ ४ ॥

मैं तो इसी नावसे सारे परिवारका पालन-पोषण करता हूँ। दूसरा कोई धंधा नहीं जानता। हे प्रभु! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरणकमल पखारने (धो लेने) के लिये कह दो ॥ ४ ॥

छं०—पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

हे नाथ! मैं चरणकमल धोकर आपलोगोंको नावपर चढ़ा लूँगा; मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता। हे राम! मुझे आपकी दुहाई और दशरथजीकी सौगंध है, मैं सब सच-सच कहता हूँ। लक्ष्मण भले ही मुझे तीर मारें, पर जबतक मैं पैरोंको पखार न लूँगा, तबतक हे तुलसीदासके नाथ! हे कृपालु! मैं पार नहीं उतारूँगा।

सो०—सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥ १००॥

केवटके प्रेममें लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणाधाम श्रीरामचन्द्रजी जानकीजी और लक्ष्मणजीकी ओर देखकर हँसे॥ १००॥

चौ०—कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥ १॥

कृपाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी केवटसे मुसकराकर बोले—भाई! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाय। जल्दी पानी ला और पैर धो ले। देर हो रही है, पार उतार दे॥ १॥

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥ २॥

एक बार जिनका नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागरके पार उतर जाते हैं और जिन्होंने [वामनावतारमें] जगत्को तीन पगसे भी छोटा कर दिया था (दो ही पगमें त्रिलोकीको नाप लिया था), वही कृपालु श्रीरामचन्द्रजी [गङ्गाजीसे पार उतारनेके लिये] केवटका निहोरा कर रहे हैं!॥ २॥

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥ ३॥

प्रभुके इन वचनोंको सुनकर गङ्गाजीकी बुद्धि मोहसे खिंच गयी थी [कि ये साक्षात् भगवान् होकर भी पार उतारनेके लिये केवटका निहोरा कैसे कर रहे हैं]। परन्तु [समीप आनेपर अपनी उत्पत्तिके स्थान]

पदनखोंको देखते ही [उन्हें पहचानकर] देवनदी गङ्गाजी हर्षित हो गयीं। (वे समझ गयीं कि भगवान् नर-लीला कर रहे हैं, इससे उनका मोह नष्ट हो गया; और चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके मैं धन्य होऊँगी, यह विचार कर वे हर्षित हो गयीं। केवट श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर कठौतेमें भरकर जल ले आया ॥ ३ ॥

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ॥ ४ ॥

अत्यन्त आनन्द और प्रेममें उमँगकर वह भगवान्‌के चरणकमल धोने लगा। सब देवता फूल बरसाकर सिहाने लगे कि इसके समान पुण्यकी राशि कोई नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥१०१॥

चरणोंको धोकर और सारे परिवारसहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर पहले [उस महान् पुण्यके द्वारा] अपने पितरोंको भवसागरसे पारकर फिर आनन्दपूर्वक प्रभु श्रीरामचन्द्रको गङ्गाजीके पार ले गया ॥१०१॥

चौ०—उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता ॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥ १ ॥

निषादराज और लक्ष्मणजीसहित श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी [नावसे] उतरकर गङ्गाजीकी रेत (बालू) में खड़े हो गये। तब केवटने उतरकर दण्डवत् की। [उसको दण्डवत् करते देखकर] प्रभुको संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं ॥ १ ॥

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई ॥ २ ॥

पतिके हृदयकी जाननेवाली सीताजीने आनन्दभरे मनसे अपनी रत्नजटित अँगूठी [अँगुलीसे] उतारी। कृपालु श्रीरामचन्द्रजीने केवटसे कहा, नावकी उतराई लो। केवटने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिये ॥२॥

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी ॥ ३ ॥

[उसने कहा—] हे नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया ? मेरे दोष,

दुःख और दरिद्रताकी आग आज बुझ गयी। मैंने बहुत समयतक मजदूरी की। विधाताने आज बहुत अच्छी भरपूर मजदूरी दे दी ॥ ३ ॥

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा ॥ ४ ॥

हे नाथ! हे दीनदयाल! आपकी कृपासे अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। लौटती बार आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूँगा ॥४॥

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ॥१०२॥

प्रभु श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीने बहुत आग्रह [या यत्न] किया, पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुणाके धाम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने निर्मल भक्तिका वरदान देकर उसे विदा किया ॥ १०२ ॥

चौ०—तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा ॥
सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥ १ ॥

फिर रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शिवजीको सिर नवाया। सीताजीने हाथ जोड़कर गङ्गाजीसे कहा— हे माता! मेरा मनोरथ पूरा कीजियेगा ॥ १ ॥

पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी ॥
सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी ॥ २ ॥

जिससे मैं पति और देवरके साथ कुशलपूर्वक लौट आकर तुम्हारी पूजा करूँ। सीताजीकी प्रेमरसमें सनी हुई विनती सुनकर तब गङ्गाजीके निर्मल जलमें श्रेष्ठ वाणी हुई—॥ २ ॥

सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाउ जग बिदित न केही ॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें ॥ ३ ॥

हे रघुवीरकी प्रियतमा जानकी! सुनो, तुम्हारा प्रभाव जगत्‌में किसे नहीं मालूम है? तुम्हारे [कृपादृष्टिसे] देखते ही लोग लोकपाल हो जाते हैं। सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं ॥ ३ ॥

तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई ॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा ॥ ४ ॥

तुमने जो मुझको बड़ी विनती सुनायी, यह तो मुझपर कृपा की और

मुझे बड़ाई दी है। तो भी हे देवि ! मैं अपनी वाणी सफल होनेके लिये तुम्हें आशीर्वाद दूँगी ॥ ४ ॥

दो०—प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन कामना सुजसु रहिहि जग छाइ ॥१०३॥

तुम अपने प्राणनाथ और देवरसहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सारी मनःकामनाएँ पूरी होंगी और तुम्हारा सुन्दर यश जगत्भर-में छा जायगा ॥ १०३ ॥

चौ०—गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥ १ ॥

मङ्गलके मूल गङ्गाजीके वचन सुनकर और देवनदीको अनुकूल देखकर सीताजी आनन्दित हुईं। तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने निषादराज गुहसे कहा कि भैया ! अब तुम घर जाओ। यह सुनते ही उसका मुँह सूख गया और हृदयमें दाह उत्पन्न हो गया ॥ १ ॥

दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई॥ २ ॥

गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला—हे रघुकुलशिरोमणि ! मेरी विनती सुनिये। मैं नाथ (आप) के साथ रहकर, रास्ता दिखाकर, चार (कुछ) दिन चरणोंकी सेवा करके—॥ २ ॥

जेहिं बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई। सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई॥ ३ ॥

हे रघुराज ! जिस वनमें आप जाकर रहेंगे, वहाँ मैं सुन्दर पर्णकुटी (पत्तोंकी कुटिया) बना दूँगा। तब मुझे आप जैसी आज्ञा देंगे, मुझे रघुवीर (आप) की दुहाई है, मैं वैसा ही करूँगा ॥ ३ ॥

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू॥
पुनि गुहँ ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥ ४ ॥

उसके स्वाभाविक प्रेमको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने उसको साथ ले लिया, इससे गुहके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ। फिर गुह (निषादराज) ने अपनी जातिके लोगोंको बुला लिया और उनका संतोष कराके तब उनको विदा किया ॥ ४ ॥

दो०—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

तब प्रभु श्रीरघुनाथजी गणेशजी और शिवजीका स्मरण करके तथा गङ्गाजीको मस्तक नवाकर सखा निषादराज, छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित वनको चले ॥ १०४ ॥

चौ०—तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु आई॥ १ ॥

उस दिन पेड़के नीचे निवास हुआ। लक्ष्मणजी और सखा गुहने [विश्रामकी] सब सुव्यवस्था कर दी। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने सवेरे प्रातःकालकी सब क्रियाएँ करके जाकर तीर्थोंके राजा प्रयागके दर्शन किये ॥१॥

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥ २ ॥

उस राजाका सत्य मन्त्री है, श्रद्धा प्यारी स्त्री है और श्रीवेणीमाधवजी-सरीखे हितकारी मित्र हैं। चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) से भण्डार भरा है और वह पुण्यमय प्रान्त ही उस राजाका सुन्दर देश है ॥ २ ॥

छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा॥ ३ ॥

प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम, मजबूत और सुन्दर गढ़ (किला) है, जिसको स्वप्नमें भी [पापरूपी] शत्रु नहीं पा सके हैं। सम्पूर्ण तीर्थ ही उसके श्रेष्ठ वीर सैनिक हैं, जो पापकी सेनाको कुचल डालनेवाले और बड़े रणधीर हैं ॥ ३ ॥

संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा॥
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥ ४ ॥

[गङ्गा, यमुना और सरस्वतीका] सङ्गम ही उसका अत्यन्त सुशोभित सिंहासन है। अक्षयवट छत्र है, जो मुनियोंके भी मनको मोहित कर लेता है। यमुनाजी और गङ्गाजीकी तरङ्गें उसके [श्याम और श्वेत] चँवर हैं, जिनको देखकर ही दुःख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

दो०—सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मनकाम।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम ॥१०५॥

पुण्यात्मा, पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और सब मनोरथ पाते हैं। वेद और पुराणोंके समूह भाट हैं, जो उसके निर्मल गुणगणोंका बखान करते हैं ॥ १०५ ॥

चौ०—को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा ॥ १ ॥

पापोंके समूहरूपी हाथीको मारनेके लिये सिंहरूप प्रयागराजका प्रभाव (महत्त्व—माहात्म्य) कौन कह सकता है। ऐसे सुहावने तीर्थराजका दर्शन कर सुखके समुद्र रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामजीने भी सुख पाया ॥ १ ॥

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई ॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा ॥ २ ॥

उन्होंने अपने श्रीमुखसे सीताजी, लक्ष्मणजी और सखा गुहको तीर्थराजकी महिमा कहकर सुनायी। तदनन्तर प्रणाम करके वन और बगीचोंको देखते हुए और बड़े प्रेमसे माहात्म्य कहते हुए—॥ २ ॥

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीरामने आकर त्रिवेणीका दर्शन किया, जो स्मरण करनेसे ही सब सुन्दर मङ्गलोंको देनेवाली है। फिर आनन्दपूर्वक [त्रिवेणीमें] स्नान करके शिवजीकी सेवा (पूजा) की और विधिपूर्वक तीर्थदेवताओंका पूजन किया ॥ ३ ॥

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दंडवत मुनि उर लाए ॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई ॥ ४ ॥

[स्नान, पूजन आदि सब करके] तब प्रभु श्रीरामजी भरद्वाजजीके पास आये। उन्हें दण्डवत् करते हुए ही मुनिने हृदयसे लगा लिया। मुनिके मनका आनन्द कुछ कहा नहीं जाता। मानो उन्हें ब्रह्मानन्दकी राशि मिल गयी हो ॥ ४ ॥

दो०—दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किए बिधि आनि ॥ १०६ ॥

मुनीश्वर भरद्वाजजीने आशीर्वाद दिया। उनके हृदयमें ऐसा जानकर अत्यन्त आनन्द हुआ कि आज विधाताने [श्रीसीताजी और लक्ष्मणजी-

सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन कराकर] मानो हमारे सम्पूर्ण पुण्योंके फलको लाकर आँखोंके सामने कर दिया ॥ १०६ ॥

चौ०—कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे ॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के ॥ १ ॥

कुशल पूछकर मुनिराजने उनको आसन दिये और प्रेमसहित पूजन करके उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। फिर मानो अमृतके ही बने हों, ऐसे अच्छे-अच्छे कन्द, मूल, फल और अंकुर लाकर दिये ॥ १ ॥

सीय लखन जन सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए ॥
भए बिगतश्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥ २ ॥

सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुहसहित श्रीरामचन्द्रजीने उन सुन्दर मूल-फलोंको बड़ी रुचिके साथ खाया। थकावट दूर होनेसे श्रीरामचन्द्रजी सुखी हो गये। तब भरद्वाजजीने उनसे कोमल वचन कहे—॥ २ ॥

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥
सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू ॥ ३ ॥

हे राम! आपका दर्शन करते ही आज मेरा तप, तीर्थसेवन और त्याग सफल हो गया। आज मेरा जप, योग और वैराग्य सफल हो गया और आज मेरे सम्पूर्ण शुभ साधनोंका समुदाय भी सफल हो गया ॥ ३ ॥

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी ॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू ॥ ४ ॥

लाभकी सीमा और सुखकी सीमा [प्रभुके दर्शनको छोड़कर] दूसरी कुछ भी नहीं है। आपके दर्शनसे मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गयीं। अब कृपा करके यह वरदान दीजिये कि आपके चरणकमलोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो ॥ ४ ॥

दो०—करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार ॥ १०७ ॥

जबतक कर्म, वचन और मनसे छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं हो जाता, तबतक करोड़ों उपाय करनेसे भी, स्वप्नमें भी वह सुख नहीं पाता ॥ १०७ ॥

चौ०—सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने ॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा ॥ १ ॥

मुनिके वचन सुनकर, उनकी भाव-भक्तिके कारण आनन्दसे तृप्त हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजी [लीलाकी दृष्टिसे] सकुचा गये। तब [अपने ऐश्वर्यको छिपाते हुए] श्रीरामचन्द्रजीने भरद्वाज मुनिका सुन्दर सुयश करोड़ों (अनेकों) प्रकारसे कहकर सबको सुनाया॥ १ ॥

सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥ २॥

[उन्होंने कहा—] हे मुनीश्वर! जिसको आप आदर दें, वही बड़ा है और वही सब गुणसमूहोंका घर है। इस प्रकार श्रीरामजी और मुनि भरद्वाजजी दोनों परस्पर विनम्र हो रहे हैं और अनिर्वचनीय सुखका अनुभव कर रहे हैं॥ २॥

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए॥ ३॥

यह (श्रीराम, लक्ष्मण, और सीताजीके आनेकी) खबर पाकर प्रयागनिवासी ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी सब श्रीदशरथजीके सुन्दर पुत्रोंको देखनेके लिये भरद्वाजजीके आश्रमपर आये॥ ३॥

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीने सब किसीको प्रणाम किया। नेत्रोंका लाभ पाकर सब आनन्दित हो गये और परम सुख पाकर आशीर्वाद देने लगे। श्रीरामजीके सौन्दर्यकी सराहना करते हुए वे लौटे॥ ४॥

दो०—राम कीन्ह बिश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ॥१०८॥

श्रीरामजीने रातको वहीं विश्राम किया और प्रातःकाल प्रयागराजका स्नान करके और प्रसन्नताके साथ मुनिको सिर नवाकर श्रीसीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुहके साथ वे चले॥ १०८॥

चौ०—राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं॥ १॥

[चलते समय] बड़े प्रेमसे श्रीरामजीने मुनिसे कहा—हे नाथ! बताइये, हम किस मार्गसे जायँ? मुनि मनमें हँसकर श्रीरामजीसे कहते हैं कि आपके लिये सभी मार्ग सुगम हैं॥ १॥

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित पचासक आए॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥ २॥

फिर उनके साथके लिये मुनिने शिष्योंको बुलाया। [साथ जानेकी बात] सुनते ही चित्तमें हर्षित हो कोई पचास शिष्य आ गये। सभीका श्रीरामजीपर अपार प्रेम है। सभी कहते हैं कि मार्ग हमारा देखा हुआ है॥ २॥

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदयँ चले रघुराई॥ ३॥

तब मुनिने [चुनकर] चार ब्रह्मचारियोंको साथ कर दिया, जिन्होंने बहुत जन्मोंतक सब सुकृत (पुण्य) किये थे। श्रीरघुनाथजी प्रणाम कर और ऋषिकी आज्ञा पाकर हृदयमें बड़े ही आनन्दित होकर चले॥ ३॥

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥ ४॥

जब वे किसी गाँवके पास होकर निकलते हैं तब स्त्री-पुरुष दौड़कर उनके रूपको देखने लगते हैं। जन्मका फल पाकर वे [सदाके अनाथ] सनाथ हो जाते हैं और मनको नाथके साथ भेजकर [शरीरसे साथ न रहनेके कारण] दुखी होकर लौट आते हैं॥ ४॥

दो०—बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥१०९॥

तदनन्तर श्रीरामजीने विनती करके चारों ब्रह्मचारियोंको विदा किया; वे मनचाही वस्तु (अनन्य भक्ति) पाकर लौटे। यमुनाजीके पार उतरकर सबने यमुनाजीके जलमें स्नान किया, जो श्रीरामचन्द्रजीके शरीरके समान ही श्याम रंगका था॥ १०९॥

चौ०—सुनत तीरबासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥ १॥

यमुनाजीके किनारेपर रहनेवाले स्त्री-पुरुष [यह सुनकर कि निषादके साथ दो परम सुन्दर सुकुमार नवयुवक और एक परम सुन्दरी स्त्री आ रही है] सब अपना-अपना काम भूलकर दौड़े और लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजीका सौन्दर्य देखकर अपने भाग्यकी बड़ाई करने लगे॥ १॥

अति लालसा बसहिं मन माहीं । नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं ॥
जे तिन्ह महुँ बयबिरिध सयाने । तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥ २ ॥

उनके मनमें [परिचय जाननेकी] बहुत-सी लालसाएँ भरी हैं । पर वे नाम-गाँव पूछते सकुचाते हैं । उन लोगोंमें जो वयोवृद्ध और चतुर थे, उन्होंने युक्तिसे श्रीरामचन्द्रजीको पहचान लिया ॥ २ ॥

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई । बनहि चले पितु आयसु पाई ॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं । रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं ॥ ३ ॥

उन्होंने सब कथा सब लोगोंको सुनायी कि पिताकी आज्ञा पाकर ये वनको चले हैं । यह सुनकर सब लोग दुःखित हो पछता रहे हैं कि रानी और राजाने अच्छा नहीं किया ॥ ३ ॥

तेहि अवसर एक तापसु आवा । तेज पुंज लघुबयस सुहावा ॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी । मन क्रम बचन राम अनुरागी ॥ ४ ॥

उसी अवसरपर वहाँ एक तपस्वी आया, जो तेजका पुञ्ज, छोटी अवस्थाका और सुन्दर था । उसकी गति कवि नहीं जानते [अथवा वह कवि था जो अपना परिचय नहीं देना चाहता] । वह वैरागीके वेषमें था और मन, वचन तथा कर्मसे श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी था ॥ ४ ॥

[इस तेजःपुञ्ज तापसके प्रसंगको कुछ टीकाकार क्षेपक मानते हैं और कुछ लोगोंके देखनेमें यह अप्रासंगिक और ऊपरसे जोड़ा हुआ-सा जान भी पड़ता है, परन्तु यह सभी प्राचीन प्रतियोंमें है । गुसाईंजी अलौकिक अनुभवी पुरुष थे । पता नहीं, यहाँ इस प्रसंगके रखनेमें क्या रहस्य है; परन्तु यह क्षेपक तो नहीं है । इस तापसको जब 'कवि अलखित गति' कहते हैं, तब निश्चयपूर्वक कौन क्या कह सकता है । हमारी समझसे ये तापस या तो श्रीहनुमान्‌जी थे अथवा ध्यानस्थ तुलसीदासजी !]

दो०—सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि ॥११०॥

अपने इष्टदेवको पहचानकर उसके नेत्रोंमें जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया । वह दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा, उसकी [प्रेमविह्वल] दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ११० ॥

चौ०—राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारसु पावा ॥
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ । मिलत धरें तन कह सबु कोऊ ॥ १ ॥

श्रीरामजीने प्रेमपूर्वक पुलकित होकर उसको हृदयसे लगा लिया [उसे इतना आनन्द हुआ] मानो कोई महादरिद्री मनुष्य पारस पा गया हो। सब कोई [देखनेवाले] कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ (परम तत्त्व) दोनों शरीर धारण करके मिल रहे हैं ॥ १ ॥

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा ॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा ॥ २ ॥

फिर वह लक्ष्मणजीके चरणों लगा। उन्होंने प्रेमसे उमँगकर उसको उठा लिया। फिर उसने सीताजीकी चरणधूलिको अपने सिरपर धारण किया। माता सीताजीने भी उसको अपना छोटा बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही ॥
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा ॥ ३ ॥

फिर निषादराजने उसको दण्डवत् की। श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी जानकर वह उस (निषाद) से आनन्दित होकर मिला। वह तपस्वी अपने नेत्ररूपी दोनोंसे श्रीरामजीकी सौन्दर्य-सुधाका पान करने लगा और ऐसा आनन्दित हुआ जैसे कोई भूखा आदमी सुन्दर भोजन पाकर आनन्दित होता है ॥ ३ ॥

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥
राम लखन सिय रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी ॥ ४ ॥

[इधर गाँवकी स्त्रियाँ कह रही हैं—] हे सखी ! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे (सुन्दर सुकुमार) बालकोंको वनमें भेज दिया है। श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके रूपको देखकर सब स्त्री-पुरुष स्नेहसे व्याकुल हो जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावनु दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि भवन गवनु तेइँ कीन्ह ॥१११॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने सखा गुहको अनेकों तरहसे [घर लौट जानेके लिये] समझाया। श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर उसने अपने घरको गमन किया ॥ १११ ॥

चौ०—पुनि सियँ राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई ॥ १ ॥

फिर सीताजी, श्रीरामजी और लक्ष्मणजीने हाथ जोड़कर यमुनाजीको पुनः प्रणाम किया, और सूर्यकन्या यमुनाजीकी बड़ाई करते हुए सीताजी-सहित दोनों भाई प्रसन्नतापूर्वक आगे चले ॥ १ ॥

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें॥ २॥

रास्तेमें जाते हुए उन्हें अनेकों यात्री मिलते हैं। वे दोनों भाइयोंको देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अङ्गोंमें राजचिन्ह देखकर हमारे हृदयमें बड़ा सोच होता है॥ २॥

मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥ ३॥

[ऐसे राजचिह्नोंके होते हुए भी] तुमलोग रास्तेमें पैदल ही चल रहे हो, इससे हमारी समझमें आता है कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा ही है। भारी जंगल और बड़े-बड़े पहाड़ोंका दुर्गम रास्ता है। तिसपर तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री है॥ ३॥

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई॥ ४॥

हाथी और सिंहोंसे भरा यह भयानक वन देखातक नहीं जाता। यदि आज्ञा हो तो हम चलें। आप जहाँतक जायँगे वहाँतक पहुँचाकर, फिर आपको प्रमाण करके हम लौट आवेंगे॥ ४॥

दो०—एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन॥११२॥

इस प्रकार वे यात्री प्रेमवश पुलकित-शरीर हो और नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भरकर पूछते हैं, किन्तु कृपाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी कोमल विनययुक्त वचन कहकर उन्हें लौटा देते हैं॥ ११२॥

चौ०—जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृतीं केहि घरीं बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥ १॥

जो गाँव और पुरवे रास्तेमें बसे हैं, नागों और देवताओंके नगर उनको देखकर प्रशंसापूर्वक ईर्ष्या करते और ललचाते हुए कहते हैं कि किस पुण्यवान्‌ने किस शुभ घड़ीमें इनको बसाया था, जो आज ये इतने धन्य और पुण्यमय तथा परम सुन्दर हो रहे हैं॥ १॥

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं ॥
पुन्य पुंज मग निकट निवासी। तिन्हहि सराहहिं सुरपुर बासी ॥ २ ॥

जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके चरण चले जाते हैं, उनके समान इन्द्रकी पुरी अमरावती भी नहीं है। रास्तेके समीप बसनेवाले भी बड़े पुण्यात्मा हैं—स्वर्गमें रहनेवाले देवता भी उनकी सराहना करते हैं—॥ २ ॥

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि। सीता लखन सहित घनस्यामहि ॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं ॥ ३ ॥

जो नेत्र भरकर सीताजी और लक्ष्मणजीसहित घनश्याम श्रीरामजीके दर्शन करते हैं, जिन तालाबों और नदियोंमें श्रीरामजी स्नान कर लेते हैं, देवसरोवर और देवनदियाँ भी उनकी बड़ाई करती हैं ॥ ३ ॥

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई ॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा ॥ ४ ॥

जिस वृक्षके नीचे प्रभु जा बैठते हैं, कल्पवृक्ष भी उसकी बड़ाई करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी रजका स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है ॥ ४ ॥

दो०—छाँह करहिं घन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं ॥११३॥

रास्तेमें बादल छाया करते हैं और देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियोंको देखते हुए श्रीरामजी रास्तेमें चले जा रहे हैं ॥ ११३ ॥

चौ०—सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काजु बिसारी ॥ १ ॥

सीताजी और लक्ष्मणजीसहित श्रीरघुनाथजी जब किसी गाँवके पास जा निकलते हैं, तब उनका आना सुनते ही बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब अपने घर और काम-काजको भूलकर तुरंत उन्हें देखनेके लिये चल देते हैं ॥ १ ॥

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा ॥ २ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीका रूप देखकर, नेत्रोंका [परम] फल पाकर वे सुखी होते हैं। दोनों भाइयोंको देखकर सब प्रेमानन्दमें

मग्न हो गये। उनके नेत्रोंमें जल भर आया और शरीर पुलकित हो गये ॥ २ ॥

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुर मनि ढेरी ॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं ॥ ३ ॥

उनकी दशा वर्णन नहीं की जाती। मानो दरिद्रोंने चिन्तामणिकी ढेरी पा ली हो। वे एक-एकको पुकारकर सीख देते हैं कि इसी क्षण नेत्रोंका लाभ ले लो ॥ ३ ॥

रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे ॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी ॥ ४ ॥

कोई श्रीरामचन्द्रजीको देखकर ऐसे अनुरागमें भर गये हैं कि वे उन्हें देखते हुए उनके साथ लगे चले जा रहे हैं। कोई नेत्रमार्गसे उनकी छविको हृदयमें लाकर शरीर, मन और श्रेष्ठ वाणीसे शिथिल हो जाते हैं (अर्थात् उनके शरीर, मन और वाणीका व्यवहार बंद हो जाता है) ॥ ४ ॥

दो०—एक देखि बट छाँह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात ॥ ११४ ॥

कोई बड़की सुन्दर छाया देखकर, वहाँ नरम घास और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि क्षणभर यहाँ बैठकर थकावट मिटा लीजिये। फिर चाहे अभी चले जाइयेगा, चाहे सवेरे ॥ ११४ ॥

चौ०—एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी ॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुसील बिसेषी ॥ १ ॥

कोई घड़ा भरकर पानी ले आते हैं और कोमल वाणीसे कहते हैं—नाथ! आचमन तो कर लीजिये। उनके प्यारे वचन सुनकर और उनका अत्यन्त प्रेम देखकर दयालु और परम सुशील श्रीरामचन्द्रजीने—॥ १ ॥

जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं ॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥ २ ॥

मनमें सीताजीको थकी हुई जानकर घड़ीभर बड़की छायामें विश्राम किया। स्त्री-पुरुष आनन्दित होकर शोभा देखते हैं। अनुपम रूपने उनके नेत्र और मनोंको लुभा लिया है ॥ २ ॥

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुख चंद चकोरा ॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा ॥ ३ ॥

सब लोग टकटकी लगाये श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको चकोरकी तरह (तन्मय होकर) देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। श्रीरामजीका नवीन तमाल वृक्षके रंगका (श्याम) शरीर अत्यन्त शोभा दे रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवोंके मन मोहित हो जाते हैं ॥३॥

दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के ॥
मुनिपट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ॥ ४ ॥

बिजलीके-से रंगके लक्ष्मणजी बहुत ही भले मालूम होते हैं। वे नखसे शिखातक सुन्दर हैं और मनको बहुत भाते हैं। दोनों मुनियोंके (वल्कल आदि) वस्त्र पहने हैं और कमरमें तरकस कसे हुए हैं। कमलके समान हाथोंमें धनुष-बाण शोभित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल ॥११५॥

उनके सिरोंपर सुन्दर जटाओंके मुकुट हैं; वक्षःस्थल, भुजा और नेत्र विशाल हैं और शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंपर पसीनेकी बूँदोंका समूह शोभित हो रहा है ॥ ११५ ॥

चौ०—बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥
राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई ॥ १ ॥

उस मनोहर जोड़ीका वर्णन नहीं किया जा सकता; क्योंकि शोभा बहुत अधिक है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीकी सुन्दरताको सब लोग मन, चित्त और बुद्धि तीनोंको लगाकर देख रहे हैं ॥ १ ॥

थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से ॥
सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं ॥ २ ॥

प्रेमके प्यासे [वे गाँवोंके] स्त्री-पुरुष [इनके सौन्दर्य-माधुर्यकी छटा देखकर] ऐसे थकित रह गये जैसे दीपकको देखकर हिरनी और हिरन [निस्तब्ध रह जाते हैं]! गाँवोंकी स्त्रियाँ सीताजीके पास जाती हैं; परन्तु अत्यन्त स्नेहके कारण पूछते सकुचाती हैं ॥ २ ॥

बार बार सब लागहिं पाएँ । कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं । तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं ॥ ३ ॥

बार-बार सब उनके पाँव लगतीं और सहज ही सीधे-सादे कोमल वचन कहती हैं—हे राजकुमारी ! हम विनती करती (कुछ निवेदन करना चाहती) हैं, परन्तु स्त्री-स्वभावके कारण कुछ पूछते हुए डरती हैं ॥ ३ ॥

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी ॥
राजकुअँर दोउ सहज सलोने । इन्ह तें लही दुति मरकत सोने ॥ ४ ॥

हे स्वामिनि ! हमारी ढिठाई क्षमा कीजियेगा और हमको गँवारी जानकर बुरा न मानियेगा । ये दोनों राजकुमार स्वभावसे ही लावण्यमय (परम सुन्दर) हैं । मरकतमणि (पन्ने) और सुवर्णने कान्ति इन्हींसे पायी है (अर्थात् मरकतमणिमें और स्वर्णमें जो हरित और स्वर्णवर्णकी आभा है वह इनकी हरिताभनील और स्वर्णकान्तिके एक कणके बराबर भी नहीं है) ॥ ४ ॥

दो०—स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन ।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन ॥११६॥

श्याम और गौरवर्ण है, सुन्दर किशोर अवस्था है; दोनों ही परम सुन्दर और शोभाके धाम हैं । शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान इनके मुख और शरद्-ऋतुके कमलके समान इनके नेत्र हैं ॥ ११६ ॥

मासपारायण, सोलहवाँ विश्राम
नवाह्नपारायण, चौथा विश्राम

चौ०—कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥ १ ॥

हे सुमुखि ! कहो तो अपनी सुन्दरतासे करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाले ये तुम्हारे कौन हैं ? उनकी ऐसी प्रेममयी सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गयीं और मन-ही-मन मुसकरायीं ॥ १ ॥

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी । दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी । बोली मधुर बचन पिकबयनी ॥ २ ॥

उत्तम (गौर) वर्णवाली सीताजी उनको देखकर [संकोचवश] पृथ्वीकी ओर देखती हैं । वे दोनों ओरके संकोचसे सकुचा रही हैं

(अर्थात् न बतानेमें ग्रामकी स्त्रियोंको दुःख होनेका संकोच है और बतानेमें लज्जारूप संकोच)। हिरनके बच्चेके सदृश नेत्रवाली और कोकिलकी-सी वाणीवाली सीताजी सकुचाकर प्रेमसहित मधुर वचन बोलीं ॥ २ ॥

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥ ३॥

ये जो सहजस्वभाव, सुन्दर और गोरे शरीरके हैं, उनका नाम लक्ष्मण है; ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर सीताजीने [लज्जावश] अपने चन्द्रमुखको आँचलसे ढककर और प्रियतम (श्रीरामजी) की ओर निहारकर भौंहें टेढ़ी करके, ॥ ३ ॥

खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं॥ ४॥

खंजन पक्षीके-से सुन्दर नेत्रोंको तिरछा करके सीताजीने इशारेसे उन्हें कहा कि ये (श्रीरामचन्द्रजी) मेरे पति हैं। यह जानकर गाँवकी सब युवती स्त्रियाँ इस प्रकार आनन्दित हुईं मानो कंगालोंने धनकी राशियाँ लूट ली हों ॥ ४ ॥

दो०—अति सप्रेम सिय पायँ परि बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस॥ ११७॥

वे अत्यन्त प्रेमसे सीताजीके पैरों पड़कर बहुत प्रकारसे आशिष देती हैं (शुभ कामना करती हैं) कि जबतक शेषजीके सिरपर पृथ्वी रहे तबतक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो, ॥ ११७ ॥

चौ०—पारबती सम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी॥ १॥

और पार्वतीजीके समान अपने पतिकी प्यारी होओ। हे देवि! हमपर कृपा न छोड़ना (बनाये रखना)। हम बार-बार हाथ जोड़कर विनती करती हैं जिसमें आप फिर इसी रास्ते लौटें, ॥ १ ॥

दरसनु देब जानि निज दासी। लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं॥ २॥

और हमें अपनी दासी जानकर दर्शन दें। सीताजीने उन सबको प्रेमकी प्यासी देखा और मधुर वचन कह-कहकर उनका भलीभाँति

सन्तोष किया। मानो चाँदनीने कुमुदिनियोंको खिलाकर पुष्ट कर दिया हो ॥ २ ॥

तबहिं लखन रघुबर रुख जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ॥
सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी ॥ ३ ॥

उसी समय श्रीरामचन्द्रजीका रुख जानकर लक्ष्मणजीने कोमल वाणीसे लोगोंसे रास्ता पूछा। यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दुखी हो गये। उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रोंमें [वियोगकी सम्भावनासे प्रेमका] जल भर आया ॥ ३ ॥

मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥ ४ ॥

उनका आनन्द मिट गया और मन ऐसे उदास हो गये मानो विधाता दी हुई सम्पत्ति छीने लेता हो। कर्मकी गति समझकर उन्होंने धैर्य धारण किया और अच्छी तरह निर्णय करके सुगम मार्ग बतला दिया ॥ ४ ॥

दो०—लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ ॥ ११८ ॥

तब लक्ष्मणजी और जानकीजीसहित श्रीरघुनाथजीने गमन किया और सब लोगोंको प्रिय वचन कहकर लौटाया, किन्तु उनके मनोंको अपने साथ ही लगा लिया ॥ ११८ ॥

चौ०—फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहि दोषु देहिं मन माहीं ॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥ १ ॥

लौटते हुए वे स्त्री-पुरुष बहुत ही पछताते हैं और मन-ही-मन दैवको दोष देते हैं। परस्पर [बड़े ही] विषादके साथ कहते हैं कि विधाताके सभी काम उलटे हैं ॥ १ ॥

निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा ॥ २ ॥

वह विधाता बिल्कुल निरंकुश (स्वतन्त्र), निर्दय और निडर है, जिसने चन्द्रमाको रोगी (घटने-बढ़नेवाला) और कलंकी बनाया। कल्पवृक्षको पेड़ और समुद्रको खारा बनाया। उसीने इन राजकुमारोंको वनमें भेजा है ॥ २ ॥

जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥ ३॥

जब विधाताने इनको वनवास दिया है, तब उसने भोग-विलास व्यर्थ ही बनाये। जब ये बिना जूतेके (नंगे ही पैरों) रास्तेमें चल रहे हैं, तब विधाताने अनेकों वाहन (सवारियाँ) व्यर्थ ही रचे॥ ३॥

ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥ ४॥

जब ये कुश और पत्ते बिछाकर जमीनपर ही पड़े रहते हैं, तब विधाता सुन्दर सेज (पलंग और बिछौने) किसलिये बनाता है? विधाताने जब इनको बड़े-बड़े पेड़ों [के नीचे] का निवास दिया, तब उज्ज्वल महलोंको बना-बनाकर उसने व्यर्थ ही परिश्रम किया॥ ४॥

दो०—जौं ए मुनि पट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार॥ ११९॥

जो ये सुन्दर और अत्यन्त सुकुमार होकर मुनियोंके (वल्कल) वस्त्र पहनते और जटा धारण करते हैं, तो फिर करतार (विधाता) ने भाँति-भाँतिके गहने और कपड़े वृथा ही बनाये॥ ११९॥

चौ०—जौं ए कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए॥ १॥

जो ये कन्द, मूल, फल खाते हैं तो जगत्‌में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। कोई एक कहते हैं—ये स्वभावसे ही सुन्दर हैं [इनका सौन्दर्य-माधुर्य नित्य और स्वाभाविक है]। ये अपने-आप प्रकट हुए हैं, ब्रह्माके बनाये नहीं हैं॥ १॥

जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥ २॥

हमारे कानों, नेत्रों और मनके द्वारा अनुभवमें आनेवाली विधाताकी करनीको जहाँतक वेदोंने वर्णन करके कहा है, वहाँतक चौदहों लोकोंमें ढूँढ़ देखो, ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं? [कहीं भी नहीं हैं इसीसे सिद्ध है कि ये विधाताके चौदहों लोकोंसे अलग हैं और अपनी महिमासे ही आप निर्मित हुए हैं]॥ २॥

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥ ३॥

इन्हें देखकर विधाताका मन अनुरक्त (मुग्ध) हो गया, तब वह भी इन्हींकी उपमाके योग्य दूसरे स्त्री-पुरुष बनाने लगा। उसने बहुत परिश्रम किया, परन्तु कोई उसकी अटकलमें ही नहीं आये (पूरे नहीं उतरे)। इसी ईर्ष्याके मारे उसने इनको जंगलमें लाकर छिपा दिया है॥ ३॥

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥ ४॥

कोई एक कहते हैं—हम बहुत नहीं जानते। हाँ, अपनेको परम धन्य अवश्य मानते हैं [जो इनके दर्शन कर रहे हैं] और हमारी समझमें वे भी बड़े पुण्यवान् हैं, जिन्होंने इनको देखा है, जो देख रहे हैं और जो देखेंगे॥ ४॥

दो०—एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर॥१२०॥

इस प्रकार प्रिय वचन कह-कहकर सब नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर लेते हैं और कहते हैं कि ये अत्यन्त सुकुमार शरीरवाले दुर्गम (कठिन) मार्गमें कैसे चलेंगे॥ १२०॥

चौ०—नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी॥ १॥

स्त्रियाँ स्नेहवश विकल हो जाती हैं। मानो सन्ध्याके समय चकवी [भावी वियोगकी पीड़ासे] सोह रही हों (दुःखी हो रही हों)। इनके चरणकमलोंको कोमल तथा मार्गको कठोर जानकर वे व्यथित हृदयसे उत्तम वाणी कहती हैं—॥ १॥

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥ २॥

इनके कोमल और लाल-लाल चरणों (तलवों) को छूते ही पृथ्वी वैसे ही सकुचा जाती है जैसे हमारे हृदय सकुचा रहे हैं। जगदीश्वरने यदि इन्हें वनवास ही दिया, तो सारे रास्तेको पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया ?॥ २॥

जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं । ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं ॥
जे नर नारि न अवसर आए । तिन्ह सिय रामु न देखन पाए ॥ ३ ॥

यदि ब्रह्मासे माँगे मिले तो हे सखि! [हम तो उनसे माँगकर] इन्हें अपनी आँखोंमें ही रक्खें ! जो स्त्री-पुरुष इस अवसरपर नहीं आये, वे श्रीसीतारामजीको नहीं देख सके ॥ ३ ॥

सुनि सुरूपु बूझहिं अकुलाई । अब लगि गए कहाँ लगि भाई ॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई । प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई ॥ ४ ॥

उनके सौन्दर्यको सुनकर वे व्याकुल होकर पूछते हैं कि भाई! अबतक वे कहाँतक गये होंगे ? और जो समर्थ हैं वे दौड़ते हुए जाकर उनके दर्शन कर लेते हैं और जन्मका परम फल पाकर विशेष आनन्दित होकर लौटते हैं ॥ ४ ॥

दो०—अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं ।
होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं ॥१२१॥

[गर्भवती, प्रसूता आदि] अबला स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े [दर्शन न पानेसे] हाथ मलते और पछताते हैं। इस प्रकार जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेमके वशमें हो जाते हैं ॥ १२१ ॥

चौ०—गावँ गावँ अस होइ अनंदू । देखि भानुकुल कैरव चंदू ॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं । ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं ॥ १ ॥

सूर्यकुलरूपी कुमुदिनीके प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमास्वरूप श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकर गाँव-गाँवमें ऐसा ही आनन्द हो रहा है। जो लोग [वनवास दिये जानेका] कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी [दशरथ-कैकेयी] को दोष लगाते हैं ॥ १ ॥

कहहिं एक अति भल नरनाहू । दीन्ह हमहि जोइ लोचन लाहू ॥
कहहिं परसपर लोग लोगाईं । बातें सरल सनेह सुहाईं ॥ २ ॥

कोई एक कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें अपने नेत्रोंका लाभ दिया। स्त्री-पुरुष सभी आपसमें सीधी, स्नेहभरी सुन्दर बातें कह रहे हैं ॥ २ ॥

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए । धन्य सो नगरु जहाँ तें आए ॥
धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ । जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ ॥ ३ ॥

[कहते हैं—] वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह

नगर धन्य है जहाँसे ये आये हैं। वह देश, पर्वत, वन और गाँव धन्य है, और वही स्थान धन्य है जहाँ-जहाँ ये जाते हैं ॥ ३ ॥

सुखु पायउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही ॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई ॥ ४ ॥

ब्रह्माने उसीको रचकर सुख पाया है जिसके ये (श्रीरामचन्द्रजी) सब प्रकारसे स्नेही हैं। पथिकरूप श्रीराम-लक्ष्मणकी सुन्दर कथा सारे रास्ते और जंगलमें छा गयी है ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत ॥१२२॥

रघुकुलरूपी कमलके खिलानेवाले सूर्य श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार मार्ग-के लोगोंको सुख देते हुए सीताजी और लक्ष्मणजीसहित वनको देखते हुए चले जा रहे हैं ॥ १२२ ॥

चौ०—आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें ॥ १ ॥

आगे श्रीरामजी हैं, पीछे लक्ष्मणजी सुशोभित हैं। तपस्वियोंके वेष बनाये दोनों बड़ी ही शोभा पा रहे हैं। दोनोंके बीचमें सीताजी कैसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे ब्रह्म और जीवके बीचमें माया ! ॥ १ ॥

बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥
उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही ॥ २ ॥

फिर जैसी छवि मेरे मनमें बस रही है, उसको कहता हूँ—मानो वसन्त-ऋतु और कामदेवके बीचमें रति (कामदेवकी स्त्री) शोभित हो। फिर अपने हृदयमें खोजकर उपमा कहता हूँ कि मानो बुध (चन्द्रमाके पुत्र) और चन्द्रमाके बीचमें रोहिणी (चन्द्रमाकी स्त्री) सोह रही हो ॥ २ ॥

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता ॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ ॥ ३ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके [जमीनपर अङ्कित होनेवाले दोनों] चरणचिह्नों-के बीच-बीचमें पैर रखती हुई सीताजी [कहीं भगवान्‌के चरणचिह्नोंपर पैर न टिक जाय इस बातसे] डरती हुई मार्गमें चल रही हैं, और लक्ष्मणजी [मर्यादाकी रक्षाके लिये] सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी दोनोंके चरण-चिह्नोंको बचाते हुए उन्हें दाहिने रखकर रास्ता चल रहे हैं ॥ ३ ॥

राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोहीं॥ ४॥

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीकी सुन्दर प्रीति वाणीका विषय नहीं है (अर्थात् अनिर्वचनीय है), अतः वह कैसे कही जा सकती है ! पक्षी और पशु भी उस छविको देखकर (प्रेमानन्दमें) मग्न हो जाते हैं। पथिकरूप श्रीरामचन्द्रजीने उनके भी चित्त चुरा लिये हैं॥ ४॥

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ॥१२३॥

प्यारे पथिक सीताजीसहित दोनों भाइयोंको जिन-जिन लोगोंने देखा, उन्होंने भवका अगम मार्ग (जन्म-मृत्युरूपी संसारमें भटकनेका भयानक मार्ग) बिना ही परिश्रम आनन्दके साथ तै कर लिया (अर्थात् वे आवागमनके चक्रसे सहज ही छूटकर मुक्त हो गये)॥ १२३॥

चौ०—अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥ १॥

आज भी जिसके हृदयमें स्वप्नमें भी कभी लक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसें, तो वह भी श्रीरामजीके परमधामके उस मार्गको पा जायगा जिस मार्गको कभी कोई बिरले ही मुनि पाते हैं॥ १॥

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥ २॥

तब श्रीरामजी सीताजीको थकी हुई जानकर और समीप ही एक बड़का वृक्ष और ठंडा पानी देखकर उस दिन वहीं ठहर गये। कन्द, मूल, फल खाकर [रातभर वहाँ रहकर] प्रातःकाल स्नान करके श्रीरघुनाथजी आगे चले॥ २॥

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए॥
राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥ ३॥

सुन्दर वन, तालाब और पर्वत देखते हुए प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वाल्मीकिजीके आश्रममें आये। श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि मुनिका निवासस्थान बहुत सुन्दर है, जहाँ सुन्दर पर्वत, वन और पवित्र जल है॥ ३॥

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥ ४॥

सरोवरोंमें कमल और वनोंमें वृक्ष फूल रहे हैं और मकरन्द-रसमें मस्त हुए भौंरे सुन्दर गुंजार कर रहे हैं। बहुत-से पक्षी और पशु कोलाहल कर रहे हैं और वैरसे रहित होकर प्रसन्न मनसे विचर रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउ लेन ॥१२४॥

पवित्र और सुन्दर आश्रमको देखकर कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी हर्षित हुए। रघुश्रेष्ठ श्रीरामजीका आगमन सुनकर मुनि वाल्मीकिजी उन्हें लेनेके लिये आगे आये ॥ १२४ ॥

चौ०—मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा ॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने मुनिको दण्डवत् किया। विप्रश्रेष्ठ मुनिने उन्हें आशीर्वाद दिया। श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखकर मुनिके नेत्र शीतल हो गये। सम्मानपूर्वक मुनि उन्हें आश्रममें ले आये ॥ १ ॥

मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मगाए ॥
सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आश्रम दिए सुहाए ॥ २ ॥

श्रेष्ठ मुनि वाल्मीकिजीने प्राणप्रिय अतिथियोंको पाकर उनके लिये मधुर कन्द, मूल और फल मँगवाये। श्रीसीताजी, लक्ष्मणजी और रामचन्द्रजीने फलोंको खाया। तब मुनिने उनको [विश्राम करनेके लिये] सुन्दर स्थान बतला दिये ॥ २ ॥

बालमीकि मन आनँदु भारी। मंगल मूरति नयन निहारी ॥
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई ॥ ३ ॥

[मुनि श्रीरामजीके पास बैठे हैं और उनकी] मङ्गलमूर्तिको नेत्रोंसे देखकर वाल्मीकिजीके मनमें बड़ा भारी आनन्द हो रहा है। तब श्रीरघुनाथजी कमलसदृश हाथोंको जोड़कर कानोंको सुख देनेवाले मधुर वचन बोले— ॥ ३ ॥

तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा ॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी ॥ ४ ॥

हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं। सम्पूर्ण विश्व आपके लिये हथेलीपर रक्खे हुए बेरके समान है। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहकर फिर जिस-जिस प्रकारसे रानी कैकेयीने वनवास दिया वह सब कथा विस्तारसे सुनायी ॥ ४ ॥

दो०—तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ ॥१२५॥

[और कहा—] हे प्रभो ! पिताकी आज्ञा [का पालन], माताका हित और भरत-जैसे [स्नेही एवं धर्मात्मा] भाईका राजा होना और फिर मुझे आपके दर्शन होना, यह सब मेरे पुण्योंका प्रभाव है ॥ १२५ ॥

चौ०—देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई ॥ १ ॥

हे मुनिराज ! आपके चरणोंका दर्शन करनेसे आज हमारे सब पुण्य सफल हो गये (हमें सारे पुण्योंका फल मिल गया)। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्वेगको प्राप्त न हो—॥ १ ॥

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू ॥ २ ॥

क्योंकि जिनसे मुनि और तपस्वी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्निके ही (अपने दुष्ट कर्मोंसे ही) जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणोंका संतोष सब मङ्गलोंकी जड़ है और भूदेव ब्राह्मणोंका क्रोध करोड़ों कुलोंको भस्म कर देता है ॥ २ ॥

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला ॥ ३ ॥

ऐसा हृदयमें समझकर—वह स्थान बतलाइये जहाँ मैं लक्ष्मण और सीतासहित जाऊँ। और वहाँ सुन्दर पत्तों और घासकी कुटी बनाकर, हे दयालु ! कुछ समय निवास करूँ ॥ ३ ॥

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू ॥ ४ ॥

श्रीरामजीकी सहज ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि वाल्मीकि बोले— धन्य ! धन्य ! हे रघुकुलके ध्वजास्वरूप ! आप ऐसा क्यों न कहेंगे ? आप सदैव वेदकी मर्यादाका पालन (रक्षण) करते हैं ॥ ४ ॥

छं०—श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नर राज तनु चले दलन खल निसिचर अनी ॥

हे राम ! आप वेदकी मर्यादाके रक्षक जगदीश्वर हैं और जानकीजी [आपकी स्वरूपभूता] माया हैं, जो कृपाके भण्डार आपकी रुख पाकर जगत्‌का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो हजार मस्तकवाले, सर्पोंके स्वामी और पृथ्वीको अपने सिरपर धारण करनेवाले हैं, वही चराचरके स्वामी शेषजी लक्ष्मण हैं। देवताओंके कार्यके लिये आप राजाका शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसोंकी सेनाका नाश करनेके लिये चले हैं।

सो०—राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥१२६॥

हे राम ! आपका स्वरूप वाणीके अगोचर, बुद्धिसे परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर उसका 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं ॥ १२६ ॥

चौ०—जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥ १ ॥

हे राम ! जगत् दृश्य है, आप उसके देखनेवाले हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करको भी नचानेवाले हैं। जब वे भी आपके मर्मको नहीं जानते, तब और कौन आपको जाननेवाला है? ॥ १ ॥

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥ २ ॥

वही आपको जानता है जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनन्दन ! हे भक्तोंके हृदयके शीतल करनेवाले चन्दन ! आपकी ही कृपासे भक्त आपको जान पाते हैं ॥ २ ॥

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥ ३ ॥

आपकी देह चिदानन्दमय है (यह प्रकृतिजन्य पञ्च महाभूतोंकी बनी हुई कर्मबन्धनयुक्त, त्रिदेहविशिष्ट मायिक नहीं है) और [उत्पत्ति-नाश, वृद्धि-क्षय आदि] सब विकारोंसे रहित है; इस रहस्यको अधिकारी पुरुष ही जानते हैं। आपने देवता और संतोंके कार्यके लिये [दिव्य] नर-शरीर धारण किया है, और प्राकृत (प्रकृतिके तत्त्वोंसे निर्मित देहवाले, साधारण) राजाओंकी तरहसे कहते और करते हैं ॥ ३ ॥

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ॥ ४ ॥

हे राम! आपके चरित्रोंको देखकर और सुनकर मूर्ख लोग तो मोहको प्राप्त होते हैं और ज्ञानीजन सुखी होते हैं। आप जो कुछ कहते, करते हैं, वह सब सत्य (उचित) ही है; क्योंकि जैसा स्वाँग भरे वैसा ही नाचना भी तो चाहिये (इस समय आप मनुष्यरूपमें हैं, अतः मनुष्योचित व्यवहार करना ठीक ही है) ॥ ४ ॥

दो०—पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ ॥१२७॥

आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिये। तब मैं आपके रहनेके लिये स्थान दिखाऊँ ॥ १२७ ॥

चौ०—सुनि मुनि बचन प्रेमरस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने ॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी ॥ १ ॥

मुनिके प्रेमरससे सने हुए वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी [रहस्य खुल जानेके डरसे] सकुचाकर मनमें मुसकराये। वाल्मीकिजी हँसकर फिर अमृत-रसमें डुबोयी हुई मीठी वाणी बोले— ॥ १ ॥

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥ २ ॥

हे रामजी! सुनिये, अब मैं वे स्थान बताता हूँ जहाँ आप सीताजी और लक्ष्मणजीसमेत निवास करिये। जिनके कान समुद्रकी भाँति आपकी सुन्दर कथारूपी अनेकों सुन्दर नदियोंसे— ॥ २ ॥

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥ ३ ॥

निरन्तर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, उनके हृदय आपके लिये सुन्दर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रोंको चातक बना रक्खा है, जो आपके दर्शनरूपी मेघके लिये सदा लालायित रहते हैं; ॥ ३ ॥

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥ ४ ॥

तथा जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलोंका निरादर करते

हैं और आपके सौन्दर्य [रूपी मेघ] के एक बूँद जलसे सुखी हो जाते हैं (अर्थात् आपके दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूपके किसी एक अङ्गकी जरा-सी भी झाँकीके सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत्के, अर्थात् पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोकतकके सौन्दर्यका तिरस्कार करते हैं), हे रघुनाथजी ! उन लोगोंके हृदयरूपी सुखदायी भवनोंमें आप भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित निवास कीजिये ॥ ४ ॥

दो०-जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु ॥१२८॥

आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवरमें जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुणसमूहरूपी मोतियोंको चुगती रहती है, हे रामजी ! आप उसके हृदयमें बसिये ॥ १२८ ॥

चौ०-प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ॥ १ ॥

जिसकी नासिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगन्धित [पुष्पादि] सुन्दर प्रसादको नित्य आदरके साथ ग्रहण करती (सूँघती) है और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसादरूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं ॥ १ ॥

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा ॥ २ ॥

जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणोंको देखकर बड़ी नम्रताके साथ प्रेमसहित झुक जाते हैं; जिनके हाथ नित्य श्रीरामचन्द्रजी (आप) के चरणोंकी पूजा करते हैं, और जिनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजी (आप) का ही भरोसा है, दूसरा नहीं; ॥ २ ॥

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ॥ ३ ॥

तथा जिनके चरण श्रीरामचन्द्रजी (आप) के तीर्थोंमें चलकर जाते हैं, हे रामजी ! आप उनके मनमें निवास कीजिये जो नित्य आपके [रामनामरूप] मन्त्रराजको जपते हैं और परिवार (परिकर) सहित आपकी पूजा करते हैं ॥ ३ ॥

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥ ४ ॥

जो अनेकों प्रकारसे तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर बहुत दान देते हैं; तथा जो गुरुको हृदयमें आपसे भी अधिक (बड़ा) जानकर सर्वभावसे सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं; ॥ ४ ॥

दो०—सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥१२९॥

और ये सब कर्म करके सबका एकमात्र यही फल माँगते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें हमारी प्रीति हो; उन लोगोंके मनरूपी मन्दिरोंमें सीताजी और रघुकुलको आनन्दित करनेवाले आप दोनों बसिये ॥ १२९ ॥

चौ०—काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ॥ १ ॥

जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह हैं; न लोभ है, न क्षोभ है; न राग है, न द्वेष है; और न कपट, दम्भ और माया ही है—हे रघुराज ! आप उनके हृदयमें निवास कीजिये ॥ १ ॥

सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥ २ ॥

जो सबके प्रिय और सबका हित करनेवाले हैं; जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई) और गाली (निन्दा) समान हैं; जो विचारकर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जो जागते-सोते आपकी ही शरण हैं, ॥२॥

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी ॥ ३ ॥

और आपको छोड़कर जिनके दूसरी कोई गति (आश्रय) नहीं है, हे रामजी ! आप उनके मनमें बसिये जो परायी स्त्रीको जन्म देनेवाली माताके समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विषसे भी भारी विष है; ॥३॥

जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥ ४ ॥

जो दूसरेकी सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरेकी विपत्ति देखकर विशेषरूपसे दुःखी होते हैं, और हे रामजी ! जिन्हें आप प्राणोंके समान प्यारे हैं उनके मन आपके रहनेयोग्य शुभ भवन हैं ॥ ४ ॥

दो०—स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

हे तात ! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मनरूपी मन्दिरमें सीतासहित आप दोनों भाई निवास कीजिये ॥ १३० ॥

चौ०—अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥ १ ॥

जो अवगुणोंको छोड़कर सबके गुणोंको ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गौके लिये संकट सहते हैं, नीति-निपुणतामें जिनकी जगत्में मर्यादा है, उनका सुन्दर मन आपका घर है ॥ १ ॥

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥ २ ॥

जो गुणोंको आपका और दोषोंको अपना समझता है, जिसे सब प्रकारसे आपका ही भरोसा है, और रामभक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदयमें आप सीतासहित निवास कीजिये ॥ २ ॥

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई ॥ ३ ॥

जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देनेवाला घर—सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदयमें धारण किये रहता है, हे रघुनाथजी ! आप उसके हृदयमें रहिये ॥ ३ ॥

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा ॥ ४ ॥

स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टिमें समान हैं, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ (सब जगह) केवल धनुष-बाण धारण किये आपको ही देखता है; और जो कर्मसे, वचनसे और मनसे आपका दास है, हे रामजी ! आप उसके हृदयमें डेरा कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥ १३१ ॥

जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिये, और जिसका आपसे स्वाभाविक

प्रेम है, आप उसके मनमें निरन्तर निवास कीजिये; वह आपका अपना घर है ॥ १३१ ॥

चौ०—एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए ॥
कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक। आश्रम कहउँ समय सुखदायक ॥ १ ॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीने श्रीरामचन्द्रजीको घर दिखाये। उनके प्रेमपूर्ण वचन श्रीरामजीके मनको अच्छे लगे। फिर मुनिने कहा—हे सूर्यकुलके स्वामी! सुनिये, अब मैं इस समयके लिये सुखदायक आश्रम कहता हूँ (निवासस्थान बतलाता हूँ) ॥ १ ॥

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ॥
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू ॥ २ ॥

आप चित्रकूट पर्वतपर निवास कीजिये, वहाँ आपके लिये सब प्रकारकी सुविधा है। सुहावना पर्वत है और सुन्दर वन है। वह हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियोंका विहारस्थल है ॥ २ ॥

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी ॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि ॥ ३ ॥

वहाँ पवित्र नदी है, जिसकी पुराणोंने प्रशंसा की है, और जिसको अत्रि ऋषिकी पत्नी अनसूयाजी अपने तपोबलसे लायी थीं वह गङ्गाजीकी धारा है, उसका मन्दाकिनी नाम है। वह सब पापरूपी बालकोंको खा डालनेके लिये डाकिनी (डाइन) रूप है ॥ ३ ॥

अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं ॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू ॥ ४ ॥

अत्रि आदि बहुत-से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं, जो योग, जप और तप करते हुए शरीरको कसते हैं। हे रामजी! चलिये, सबके परिश्रमको सफल कीजिये और पर्वतश्रेष्ठ चित्रकूटको भी गौरव दीजिये ॥ ४ ॥

दो०—चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ ॥ १३२ ॥

महामुनि वाल्मीकिजीने चित्रकूटकी अपरिमित महिमा बखानकर कही। तब सीताजीसहित दोनों भाइयोंने आकर श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनीमें स्नान किया ॥ १३२ ॥

चौ०—रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—लक्ष्मण! बड़ा अच्छा घाट है, अब यहीं कहीं ठहरनेकी व्यवस्था करो। तब लक्ष्मणजीने पयस्विनी नदीके उत्तरके ऊँचे किनारेको देखा [और कहा कि—] इसके चारों ओर धनुषके जैसा एक नाला फिरा हुआ है॥ १॥

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥ २॥

नदी (मन्दाकिनी) उस धनुषकी प्रत्यञ्चा (डोरी) है और शम, दम, दान बाण हैं। कलियुगके समस्त पाप उसके अनेकों हिंसक पशु [रूप निशाने] हैं। चित्रकूट ही मानो अचल शिकारी है, जिसका निशाना कभी चूकता नहीं और जो सामनेसे मारता है॥ २॥

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना॥ ३॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणजीने स्थान दिखलाया। स्थानको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने सुख पाया। जब देवताओंने जाना कि श्रीरामचन्द्रजीका मन यहाँ रम गया तब वे देवताओंके प्रधान थवई (मकान बनानेवाले) विश्वकर्माको साथ लेकर चले॥ ३॥

कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥ ४॥

सब देवता कोल-भीलोंके वेषमें आये और उन्होंने [दिव्य] पत्तों और घासोंके सुन्दर घर बना दिये। दो ऐसी सुन्दर कुटियाँ बनायीं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उनमें एक बड़ी सुन्दर छोटी-सी थी और दूसरी बड़ी थी॥ ४॥

दो०—लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत॥ १३३॥

लक्ष्मणजी और जानकीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर घास-पत्तोंके घरमें शोभायमान हैं। मानो कामदेव मुनिका वेष धारण करके पत्नी रति और वसन्तऋतुके साथ सुशोभित हो॥ १३३॥

मासपारायण, सत्रहवाँ विश्राम

चौ०—अमर नाग किंनर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू॥ १॥

उस समय देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल चित्रकूटमें आये और श्रीरामचन्द्रजीने सब किसीको प्रणाम किया। देवता नेत्रोंका लाभ पाकर आनन्दित हुए॥ १॥

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज निज सदन सिधाए॥ २॥

फूलोंकी वर्षा करके देवसमाजने कहा—हे नाथ! आज [आपका दर्शन पाकर] हम सनाथ हो गये। फिर विनती करके उन्होंने अपने दुःसह दुःख सुनाये और [दुःखोंके नाशका आश्वासन पाकर] हर्षित होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ २॥

चित्रकूट रघुनंदनु छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए॥
आवत देखि मुदित मुनिबृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुलचंदा॥ ३॥

श्रीरघुनाथजी चित्रकूटमें आ बसे हैं, यह समाचार सुन-सुनकर बहुत-से मुनि आये। रघुकुलके चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजीने मुदित हुई मुनिमण्डली-को आते देखकर दण्डवत्-प्रणाम किया॥ ३॥

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं॥ ४॥

मुनिगण श्रीरामजीको हृदयसे लगा लेते हैं और सफल होनेके लिये आशीर्वाद देते हैं। वे सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखते हैं और अपने सारे साधनोंको सफल हुआ समझते हैं॥ ४॥

दो०—जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनिबृंद।
करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हि सुछंद॥ १३४॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने यथायोग्य सम्मान करके मुनिमण्डलीको विदा किया। [श्रीरामचन्द्रजीके आ जानेसे] वे सब अपने-अपने आश्रमोंमें अब स्वतन्त्रताके साथ योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे॥ १३४॥

चौ०—यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥ १॥

यह (श्रीरामजीके आगमनका) समाचार जब कोल-भीलोंने पाया, तो वे ऐसे हर्षित हुए मानो नवों निधियाँ उनके घरहीपर आ गयी हों। वे

दोनोंमें कन्द, मूल, फल भर-भरकर चले। मानो दरिद्र सोना लूटने चले हों ॥ १ ॥

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूँछहिं मगु जाता ॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई ॥ २ ॥

उनमेंसे जो दोनों भाइयोंको [पहले] देख चुके थे, उनसे दूसरे लोग रास्तेमें जाते हुए पूछते हैं। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दरता कहते-सुनते सबने आकर श्रीरघुनाथजीके दर्शन किये ॥ २ ॥

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े ॥ ३ ॥

भेंट आगे रखकर वे लोग जोहार करते हैं और अत्यन्त अनुरागके साथ प्रभुको देखते हैं। वे मुग्ध हुए जहाँ-के-तहाँ मानो चित्रलिखे-से खड़े हैं। उनके शरीर पुलकित हैं और नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंके जलकी बाढ़ आ रही है ॥ ३ ॥

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी ॥ ४ ॥

श्रीरामजीने उन सबको प्रेममें मग्न जाना और प्रिय वचन कहकर सबका सम्मान किया। वे बार-बार प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको जोहार करते हुए हाथ जोड़कर विनीत वचन कहते हैं—॥ ४ ॥

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय ॥ १३५ ॥

हे नाथ! प्रभु (आप) के चरणोंका दर्शन पाकर अब हम सब सनाथ हो गये। हे कोसलराज! हमारे ही भाग्यसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है ॥ १३५ ॥

चौ०—धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा ॥
धन्य बिहग मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी ॥ १ ॥

हे नाथ! जहाँ-जहाँ आपने अपने चरण रक्खे हैं, वे पृथ्वी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य हैं, वे वनमें विचरनेवाले पक्षी और पशु धन्य हैं, जो आपको देखकर सफलजन्म हो गये ॥ १ ॥

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥ २ ॥

हम सब भी अपने परिवारसहित धन्य हैं, जिन्होंने नेत्र भरकर आपका दर्शन किया। आपने बड़ी अच्छी जगह विचारकर निवास किया है। यहाँ सभी ऋतुओंमें आप सुखी रहियेगा ॥ २ ॥

हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई ॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥ ३ ॥

हमलोग सब प्रकारसे हाथी, सिंह, सर्प और बाघोंसे बचाकर आपकी सेवा करेंगे। हे प्रभो! यहाँके बीहड़ वन, पहाड़, गुफाएँ और खोह (दर्रे) सब पग-पग हमारे देखे हुए हैं ॥ ३ ॥

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर जल ठाउँ देखाउब ॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता ॥ ४ ॥

हम वहाँ-वहाँ (उन-उन स्थानोंमें) आपको शिकार खेलावेंगे और तालाब, झरने आदि जलाशयोंको दिखावेंगे। हम कुटुम्बसमेत आपके सेवक हैं। हे नाथ! इसलिये हमें आज्ञा देनेमें संकोच न कीजियेगा ॥ ४ ॥

दो०—बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन ॥ १३६ ॥

जो वेदोंके वचन और मुनियोंके मनको भी अगम हैं, वे करुणाके धाम प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भीलोंके वचन इस तरह सुन रहे हैं जैसे पिता बालकोंके वचन सुनता है ॥ १३६ ॥

चौ०—रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा ॥
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको केवल प्रेम प्यारा है; जो जाननेवाला हो (जानना चाहता हो) वह जान ले। तब श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमसे परिपुष्ट हुए (प्रेमपूर्ण) कोमल वचन कहकर उन सब वनमें विचरण करनेवाले लोगोंको संतुष्ट किया ॥ १ ॥

बिदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए ॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई ॥ २ ॥

फिर उनको विदा किया। वे सिर नवाकर चले और प्रभुके गुण कहते-सुनते घर आये। इस प्रकार देवता और मुनियोंको सुख देनेवाले दोनों भाई सीताजीसमेत वनमें निवास करने लगे ॥ २ ॥

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगलदायकु ॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना ॥ ३ ॥

जबसे श्रीरघुनाथजी वनमें आकर रहे तबसे वन मङ्गलदायक हो गया। अनेकों प्रकारके वृक्ष फूलते और फलते हैं और उनपर लिपटी हुई सुन्दर बेलोंके मण्डप तने हैं॥ ३॥

सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी॥ ४॥

वे कल्पवृक्षके समान स्वाभाविक ही सुन्दर हैं। मानो वे देवताओंके वन (नन्दनवन) को छोड़कर आये हों। भौंरोंकी पंक्तियाँ बहुत ही सुन्दर गुंजार करती हैं और सुख देनेवाली शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा चलती रहती है॥ ४॥

दो०—नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर॥ १३७॥

नीलकण्ठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे और चकोर आदि पक्षी कानोंको सुख देनेवाली और चित्तको चुरानेवाली तरह-तरहकी बोलियाँ बोलते हैं॥ १३७॥

चौ०—करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृग बृंद बिसेषी॥ १॥

हाथी, सिंह, बंदर, सूअर और हिरन—ये सब वैर छोड़कर साथ-साथ विचरते हैं। शिकारके लिये फिरते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी छबिको देखकर पशुओंके समूह विशेष आनन्दित होते हैं॥ १॥

बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥ २॥

जगत्‌में जहाँतक (जितने) देवताओंके वन हैं, सब श्रीरामजीके वनको देखकर सिहाते हैं। गङ्गा, सरस्वती, सूर्यकुमारी यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि धन्य (पुण्यमयी) नदियाँ, ॥ २॥

सब सर सिंधु नदीं नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुरबासू॥ ३॥

सारे तालाब, समुद्र, नदी और अनेकों नद सब मन्दाकिनीकी बड़ाई करते हैं। उदयाचल, अस्ताचल, कैलास, मन्दराचल और सुमेरु आदि सब, जो देवताओंके रहनेके स्थान हैं, ॥ ३॥

सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥ ४॥

और हिमालय आदि जितने पर्वत हैं, सभी चित्रकूटका यश गाते हैं। विन्ध्याचल बड़ा आनन्दित है, उसके मनमें सुख समाता नहीं; क्योंकि उसने बिना परिश्रम ही बहुत बड़ी बड़ाई पा ली है ॥ ४ ॥

दो०—चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति ॥ १३८ ॥

चित्रकूटके पक्षी, पशु, बेल, वृक्ष, तृण, अंकुरादिकी सभी जातियाँ पुण्यकी राशि हैं और धन्य हैं—देवता दिन-रात ऐसा कहते हैं ॥ १३८ ॥

चौ०—नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी ॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी ॥ १ ॥

आँखोंवाले जीव श्रीरामचन्द्रजीको देखकर जन्मका फल पाकर शोकरहित हो जाते हैं, और अचर (पर्वत, वृक्ष, भूमि, नदी आदि) भगवान्‌की चरणरजका स्पर्श पाकर सुखी होते हैं। यों सभी परमपद (मोक्ष) के अधिकारी हो गये ॥ १ ॥

सो बनु सैलु सुभायँ सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन ॥
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥ २ ॥

वह वन और पर्वत स्वाभाविक ही सुन्दर, मङ्गलमय और अत्यन्त पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाला है। उसकी महिमा किस प्रकार कही जाय, जहाँ सुखके समुद्र श्रीरामजीने निवास किया है ॥ २ ॥

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई ॥
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन। जौं सत सहस होहिं सहसानन ॥ ३ ॥

क्षीरसागरको त्यागकर और अयोध्याको छोड़कर जहाँ सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजी आकर रहे, उस वनकी जैसी परम शोभा है, उसको हजार मुखवाले जो लाख शेषजी हों तो वे भी नहीं कह सकते ॥ ३ ॥

सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं ॥
सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी ॥ ४ ॥

उसे भला, मैं किस प्रकारसे वर्णन करके कह सकता हूँ। कहीं पोखरेका [क्षुद्र] कछुआ भी मन्दराचल उठा सकता है ? लक्ष्मणजी मन, वचन और कर्मसे श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करते हैं। उनके शील और स्नेहका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥

दो०—छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु ॥ १३९ ॥

क्षण-क्षणपर श्रीसीतारामजीके चरणोंको देखकर और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर लक्ष्मणजी स्वप्नमें भी भाइयों, माता-पिता और घरकी याद नहीं करते ॥ १३९ ॥

चौ०—राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके साथ सीताजी अयोध्यापुरी, कुटुम्बके लोग और घरकी याद भूलकर बहुत ही सुखी रहती हैं। क्षण-क्षणपर पति श्रीरामचन्द्र-जीके चन्द्रमाके समान मुखको देखकर वे वैसे ही परम प्रसन्न रहती हैं जैसे चकोरकुमारी (चकोरी) चन्द्रमाको देखकर ! ॥ १ ॥

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी ॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा ॥ २ ॥

स्वामीका प्रेम अपने प्रति नित्य बढ़ता हुआ देखकर सीताजी ऐसी हर्षित रहती हैं जैसे दिनमें चकवी। सीताजीका मन श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनुरक्त है इससे उनको वन हजारों अवधके समान प्रिय लगता है ॥ २ ॥

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा ॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असनु अमिअ सम कंद मूल फर ॥ ३ ॥

प्रियतम (श्रीरामचन्द्रजी) के साथ पर्णकुटी प्यारी लगती है। मृग और पक्षी प्यारे कुटुम्बियोंके समान लगते हैं। मुनियोंकी स्त्रियाँ सासके समान, श्रेष्ठ मुनि ससुरके समान और कन्द-मूल-फलोंका आहार उनको अमृतके समान लगता है ॥ ३ ॥

नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई ॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू ॥ ४ ॥

स्वामीके साथ सुन्दर साथरी (कुश और पत्तोंकी सेज) सैकड़ों कामदेवकी सेजोंके समान सुख देनेवाली है। जिनके [कृपापूर्वक] देखने-मात्रसे जीव लोकपाल हो जाते हैं, उनको कहीं भोग-विलास मोहित कर सकते हैं ! ॥ ४ ॥

दो०—सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
राम प्रिया जग जननि सिय कछु न आचरजु तासु॥ १४० ॥

जिन श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करनेसे ही भक्तजन तमाम भोग-विलासको तिनकेके समान त्याग देते हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीकी प्रिय पत्नी और जगत्‌की माता सीताजीके लिये यह [भोग-विलासका त्याग] कुछ भी आश्चर्य नहीं है॥ १४० ॥

चौ०—सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी॥ १ ॥

सीताजी और लक्ष्मणजीको जिस प्रकार सुख मिले, श्रीरघुनाथजी वही करते और वही कहते हैं। भगवान् प्राचीन कथाएँ और कहानियाँ कहते हैं और लक्ष्मणजी तथा सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते हैं॥ १ ॥

जब जब रामु अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई॥ २ ॥

जब-जब श्रीरामचन्द्रजी अयोध्याकी याद करते हैं, तब-तब उनके नेत्रोंमें जल भर आता है। माता-पिता, कुटुम्बियों और भाइयों तथा भरतके प्रेम, शील और सेवाभावको याद करके—॥ २ ॥

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं॥ ३ ॥

कृपाके समुद्र प्रभु श्रीरामचन्द्रजी दुखी हो जाते हैं, किन्तु फिर कुसमय समझकर धीरज धारण कर लेते हैं। श्रीरामचन्द्रजीको दुखी देखकर सीताजी और लक्ष्मणजी भी व्याकुल हो जाते हैं, जैसे किसी मनुष्यकी परछाहीं उस मनुष्यके समान ही चेष्टा करती है॥ ३ ॥

प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत उर चंदनु॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता॥ ४ ॥

तब धीर, कृपालु और भक्तोंके हृदयोंको शीतल करनेके लिये चन्दन-रूप, रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी प्यारी पत्नी और भाई लक्ष्मणकी दशा देखकर कुछ पवित्र कथाएँ कहने लगते हैं, जिन्हें सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी सुख प्राप्त करते हैं॥ ४ ॥

दो०—रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥ १४१ ॥

लक्ष्मणजी और सीताजीसहित श्रीरामचन्द्रजी पर्णकुटीमें ऐसे सुशोभित हैं जैसे अमरावतीमें इन्द्र अपनी पत्नी शची और पुत्र जयन्तसहित बसता है ॥ १४१ ॥

चौ०—जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें॥
सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥ १ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजीकी कैसी सँभाल रखते हैं, जैसे पलकें नेत्रोंके गोलकोंकी। इधर लक्ष्मणजी श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजीकी [अथवा लक्ष्मणजी और सीताजी श्रीरामचन्द्रजीकी] ऐसी सेवा करते हैं जैसे अज्ञानी मनुष्य शरीरकी करते हैं ॥ १ ॥

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी॥
कहेउँ राम बन गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा॥ २ ॥

पक्षी, पशु, देवता और तपस्वियोंके हितकारी प्रभु इस प्रकार सुखपूर्वक वनमें निवास कर रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—मैंने श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर वन-गमन कहा। अब जिस तरह सुमन्त्र अयोध्यामें आये वह [कथा] सुनो ॥ २ ॥

फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू॥ ३ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको पहुँचाकर जब निषादराज लौटा, तब आकर उसने रथको मन्त्री (सुमन्त्र) सहित देखा। मन्त्रीको व्याकुल देखकर निषादको जैसा दुःख हुआ वह कहा नहीं जाता ॥ ३ ॥

राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥ ४ ॥

[निषादको अकेले आया देखकर] सुमन्त्र हा राम ! हा राम ! हा सीते ! हा लक्ष्मण ! पुकारते हुए, बहुत व्याकुल होकर धरतीपर गिर पड़े। [रथके] घोड़े दक्षिण दिशाकी ओर [जिधर श्रीरामचन्द्रजी गये थे] देख-देखकर हिनहिनाते हैं। मानो बिना पंखके पक्षी व्याकुल हो रहे हों ॥ ४ ॥

दो०—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि ॥ १४२ ॥

वे न तो घास चरते हैं, न पानी पीते हैं। केवल आँखोंसे जल बहा

रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजीके घोड़ोंको इस दशामें देखकर सब निषाद व्याकुल हो गये ॥ १४२ ॥

चौ०—धरि धीरजु तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू ॥
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ॥ १ ॥

तब धीरज धरकर निषादराज कहने लगा—हे सुमन्त्रजी! अब विषादको छोड़िये। आप पण्डित और परमार्थके जाननेवाले हैं। विधाताको प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण कीजिये ॥ १ ॥

बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी ॥ २ ॥

कोमल वाणीसे भाँति-भाँतिकी कथाएँ कहकर निषादने जबर्दस्ती लाकर सुमन्त्रको रथपर बैठाया। परन्तु शोकके मारे वे इतने शिथिल हो गये कि रथको हाँक नहीं सकते। उनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके विरहकी बड़ी तीव्र वेदना है ॥ २ ॥

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥
अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोगि बिकल दुख तीछें ॥ ३ ॥

घोड़े तड़फड़ाते हैं और [ठीक] रास्तेपर नहीं चलते। मानो जंगली पशु लाकर रथमें जोत दिये गये हों। वे श्रीरामचन्द्रजीके वियोगी घोड़े कभी ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, कभी घूमकर पीछेकी ओर देखने लगते हैं। वे तीक्ष्ण दुःखसे व्याकुल हैं ॥ ३ ॥

जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती ॥ ४ ॥

जो कोई राम, लक्ष्मण या जानकीका नाम ले लेता है, घोड़े हिंकर-हिंकरकर उसकी ओर प्यारसे देखने लगते हैं। घोड़ोंकी विरहदशा कैसे कही जा सकती है। वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे मणिके बिना साँप व्याकुल होता है ॥ ४ ॥

दो०—भयउ निषादु बिषादबस देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग ॥ १४३ ॥

मन्त्री और घोड़ोंकी यह दशा देखकर निषादराज विषादके वश हो गया। तब उसने अपने चार उत्तम सेवक बुलाकर सारथीके साथ कर दिये ॥ १४३ ॥

चौ०—गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरहु बिषादु बरनि नहिं जाई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा॥ १॥

निषादराज गुह सारथी (सुमन्त्रजी) को पहुँचाकर (विदा करके) लौटा। उसके विरह और दुःखका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे चारों निषाद रथ लेकर अवधको चले। [सुमन्त्र और घोड़ोंको देख-देखकर] वे भी क्षण-क्षणभर विषादमें डूबे जाते थे॥ १॥

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥
रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥ २॥

व्याकुल और दुःखसे दीन हुए सुमन्त्रजी सोचते हैं कि श्रीरघुवीरके बिना जीनेको धिक्कार है। आखिर यह अधम शरीर रहेगा तो है ही नहीं। अभी श्रीरामचन्द्रजीके बिछुड़ते ही छूटकर इसने यश (क्यों) नहीं ले लिया॥ २॥

भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका॥ ३॥

ये प्राण अपयश और पापके भाँड़े हो गये। अब ये किस कारण कूच नहीं करते (निकलते नहीं)? हाय! नीच मन [बड़ा अच्छा] मौका चूक गया। अब भी तो हृदयके दो टुकड़े नहीं हो जाते?॥ ३॥

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥ ४॥

सुमन्त्र हाथ मल-मलकर और सिर पीट-पीटकर पछताते हैं। मानो कोई कंजूस धनका खजाना खो बैठा हो। वे इस प्रकार चले मानो कोई बड़ा योद्धा वीरका बाना पहनकर और उत्तम शूरवीर कहलाकर युद्धसे भाग चला हो!॥ ४॥

दो०—बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखें मद पान कर सचिव सोच तेहि भाँति॥१४४॥

जैसे कोई विवेकशील, वेदका ज्ञाता, साधुसम्मत आचरणोंवाला और उत्तम जातिका (कुलीन) ब्राह्मण धोखेसे मदिरा पी ले और पीछे पछतावे, उसी प्रकार मन्त्री सुमन्त्र सोच कर रहे (पछता रहे) हैं॥ १४४॥

चौ०—जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदयँ तिमि दारुन दाहू॥ १॥

जैसे किसी उत्तम कुलवाली साधुस्वभावकी, समझदार और मन, वचन, कर्मसे पतिको ही देवता माननेवाली पतिव्रता स्त्रीको भाग्यवश पतिको छोड़कर (पतिसे अलग) रहना पड़े, उस समय उसके हृदयमें जैसे भयानक सन्ताप होता है, वैसे ही मन्त्रीके हृदयमें हो रहा है ॥ १ ॥

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुहँ लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी॥ २ ॥

नेत्रोंमें जल भरा है, दृष्टि मन्द हो गयी है। कानोंसे सुनायी नहीं पड़ता, व्याकुल हुई बुद्धि बेठिकाने हो रही है। ओठ सूख रहे हैं, मुँहमें लाटी लग गयी है। किन्तु [ये सब मृत्युके लक्षण हो जानेपर भी] प्राण नहीं निकलते; क्योंकि हृदयमें अवधिरूपी किवाड़ लगे हैं (अर्थात् चौदह वर्ष बीत जानेपर भगवान् फिर मिलेंगे यही आशा रुकावट डाल रही है) ॥ २ ॥

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहु पिता महतारी॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी॥ ३ ॥

सुमन्त्रजीके मुखका रंग बदल गया है, जो देखा नहीं जाता। ऐसा मालूम होता है मानो इन्होंने माता-पिताको मार डाला हो। उनके मनमें रामवियोगरूपी हानिकी महान् ग्लानि (पीड़ा) छा रही है, जैसे कोई पापी मनुष्य नरकको जाता हुआ रास्तेमें सोच कर रहा हो ॥ ३ ॥

बचनु न आव हृदयँ पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
राम सहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥ ४ ॥

मुँहसे वचन नहीं निकलते। हृदयमें पछताते हैं कि मैं अयोध्यामें जाकर क्या देखूँगा। श्रीरामचन्द्रजीसे शून्य रथको जो भी देखेगा, वही मुझे देखनेमें संकोच करेगा (अर्थात् मेरा मुँह नहीं देखना चाहेगा) ॥४॥

दो०—धाइ पूँछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मैं सबहि तब हृदयँ बज्रु बैठारि॥१४५॥

नगरके सब व्याकुल स्त्री-पुरुष जब दौड़कर मुझसे पूछेंगे, तब मैं हृदयपर वज्र रखकर सबको उत्तर दूँगा ॥ १४५ ॥

चौ०—पूँछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता॥
पूछिहि जबहिं लखन महतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥ १ ॥

जब दीन-दुखी सब माताएँ पूछेंगी तब हे विधाता! मैं उन्हें क्या

कहूँगा ? जब लक्ष्मणजीकी माता मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन-सा सुख-दायी सँदेसा कहूँगा ? ॥ १ ॥

राम जननि जब आइहि धाई । सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई ॥
पूँछत उतरु देब मैं तेही । गे बनु राम लखनु बैदेही ॥ २ ॥

श्रीरामजीकी माता जब इस प्रकार दौड़ी आवेंगी जैसे नयी ब्यायी हुई गौ बछड़ेको याद करके दौड़ी आती है, तब उनके पूछनेपर मैं उन्हें यह उत्तर दूँगा कि श्रीराम-लक्ष्मण, सीता वनको चले गये ! ॥ २ ॥

जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा । जाइ अवध अब यहु सुखु लेबा ॥
पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना । जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥ ३ ॥

जो भी पूछेगा उसे यही उत्तर देना पड़ेगा । हाय ! अयोध्या जाकर अब मुझे यही सुख लेना है । जब दुःखसे दीन महाराज, जिनका जीवन श्रीरघुनाथजीके [दर्शनके] ही अधीन है, मुझसे पूछेंगे, ॥ ३ ॥

देहउँ उतरु कौनु मुहु लाई । आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई ॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू । तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ॥ ४ ॥

तब मैं कौन-सा मुँह लेकर उन्हें उत्तर दूँगा कि मैं राजकुमारोंको कुशलपूर्वक पहुँचा आया हूँ । लक्ष्मण, सीता और श्रीरामका समाचार सुनते ही महाराज तिनकेकी तरह शरीरको त्याग देंगे ॥ ४ ॥

दो०—हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु ।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु ॥ १४६ ॥

प्रियतम (श्रीरामजी) रूपी जलके बिछुड़ते ही मेरा हृदय कीचड़की तरह फट नहीं गया, इससे मैं जानता हूँ कि विधाताने मुझे यह 'यातना-शरीर' ही दिया है [जो पापी जीवोंको नरक भोगनेके लिये मिलता है] ॥ १४६ ॥

चौ०—एहि बिधि करत पंथ पछितावा । तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा । फिरे पायँ परि बिकल बिषादा ॥ १ ॥

सुमन्त्र इस प्रकार मार्गमें पछतावा कर रहे थे, इतनेमें ही रथ तुरंत तमसा नदीके तटपर आ पहुँचा । मन्त्रीने विनय करके चारों निषादोंको विदा किया । वे विषादसे व्याकुल होते हुए सुमन्त्रके पैरों पड़कर लौटे ॥ १ ॥

पैठत नगर सचिव सकुचाई । जनु मारेसि गुर बाँभन गाई ॥
बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा । साँझ समय तब अवसरु पावा ॥ २ ॥

नगरमें प्रवेश करते मन्त्री [ग्लानिके कारण] ऐसे सकुचाते हैं, मानो गुरु, ब्राह्मण या गौको मारकर आये हों। सारा दिन एक पेड़के नीचे बैठकर बिताया। जब सन्ध्या हुई तब मौका मिला॥ २॥

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधिआरें। पैठ भवन रथु राखि दुआरें॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए॥ ३॥

अँधेरा होनेपर उन्होंने अयोध्यामें प्रवेश किया और रथको दरवाजेपर खड़ा करके वे [चुपके-से] महलमें घुसे। जिन-जिन लोगोंने यह समाचार सुन पाया, वे सभी रथ देखनेको राजद्वारपर आये॥ ३॥

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें॥ ४॥

रथको पहचानकर और घोड़ोंको व्याकुल देखकर उनके शरीर ऐसे गले जा रहे हैं (क्षीण हो रहे हैं) जैसे घाममें ओले। नगरके स्त्री-पुरुष कैसे व्याकुल हैं। जैसे जलके घटनेपर मछलियाँ [व्याकुल होती हैं]॥ ४॥

दो०—सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेत निवासु॥ १४७॥

मन्त्रीका [अकेले ही] आना सुनकर सारा रनिवास व्याकुल हो गया। राजमहल उनको ऐसा भयानक लगा मानो प्रेतोंका निवासस्थान (श्मशान) हो॥ १४७॥

चौ०—अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥
सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृपु तेहि तेहि बूझा॥ १॥

अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछती हैं, पर सुमन्त्रको कुछ उत्तर नहीं आता, उनकी वाणी विकल हो गयी (रुक गयी) है। न कानोंसे सुनायी पड़ता है और न आँखोंसे कुछ सूझता है। वे जो भी सामने आता है उस-उससे पूछते हैं—कहो राजा कहाँ हैं ?॥ १॥

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृहँ गईं लवाई॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा॥ २॥

दासियाँ मन्त्रीको व्याकुल देखकर उन्हें कौसल्याजीके महलमें लिवा गयीं। सुमन्त्रने जाकर वहाँ राजाको कैसा [बैठे] देखा मानो बिना अमृतका चन्द्रमा हो॥ २॥

आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना ॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती ॥ ३ ॥

राजा आसन, शय्या और आभूषणोंसे रहित बिल्कुल मलिन (उदास) पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। वे लंबी साँसें लेकर इस प्रकार सोच करते हैं मानो राजा ययाति स्वर्गसे गिरकर सोच कर रहे हों ॥ ३ ॥

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती ॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही ॥ ४ ॥

राजा क्षण-क्षणमें सोचसे छाती भर लेते हैं। ऐसी विकल दशा है मानो [गीधराज जटायुका भाई] संपाती पंखोंके जल जानेपर गिर पड़ा हो। राजा [बार-बार] 'राम, राम' 'हा स्नेही (प्यारे) राम!' कहते हैं, फिर 'हा राम, हा लक्ष्मण, हा जानकी' ऐसा कहने लगते हैं ॥ ४ ॥

दो०—देखि सचिवँ जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु ॥ १४८ ॥

मन्त्रीने देखकर 'जयजीव' कहकर दण्डवत्-प्रणाम किया। सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठे और बोले—सुमन्त्र! कहो, राम कहाँ हैं? ॥ १४८ ॥

चौ०—भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूडत कछु अधार जनु पाई ॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूँछत राउ नयन भरि बारी ॥ १ ॥

राजाने सुमन्त्रको हृदयसे लगा लिया। मानो डूबते हुए आदमीको कुछ सहारा मिल गया हो। मन्त्रीको स्नेहके साथ पास बैठाकर, नेत्रोंमें जल भरकर राजा पूछने लगे—॥ १ ॥

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही ॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥ २ ॥

हे मेरे प्रेमी सखा! श्रीरामकी कुशल कहो। बताओ, श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी कहाँ हैं? उन्हें लौटा लाये हो कि वे वनको चले गये? यह सुनते ही मन्त्रीके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ २ ॥

सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कहु सिय राम लखन संदेसू ॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥ ३ ॥

शोकसे व्याकुल होकर राजा फिर पूछने लगे—सीता, राम और लक्ष्मणका सँदेसा तो कहो। श्रीरामचन्द्रजीके रूप, गुण, शील और स्वभावको याद कर-करके राजा हृदयमें सोच करते हैं ॥ ३ ॥

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू । सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना । को पापी बड़ मोहि समाना ॥ ४ ॥

[और कहते हैं—] मैंने राजा होनेकी बात सुनाकर वनवास दे दिया, यह सुनकर भी जिस (राम) के मनमें हर्ष और विषाद नहीं हुआ; ऐसे पुत्रके बिछुड़नेपर भी मेरे प्राण नहीं गये, तब मेरे समान बड़ा पापी कौन होगा ? ॥ ४ ॥

दो०—सखा रामु सिय लखनु जहँ तहाँ मोहि पहुँचाउ ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिभाउ ॥ १४९ ॥

हे सखा ! श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण जहाँ हैं, मुझे भी वहीं पहुँचा दो । नहीं तो मैं सत्यभावसे कहता हूँ कि मेरे प्राण अब चलना ही चाहते हैं ॥ १४९ ॥

चौ०—पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ । प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ । रामु लखनु सिय नयन देखाऊ ॥ १ ॥

राजा बार-बार मन्त्रीसे पूछते हैं—मेरे प्रियतम पुत्रोंका सँदेसा सुनाओ । हे सखा ! तुम तुरंत वही उपाय करो जिससे श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको मुझे आँखों दिखा दो ॥ १ ॥

सचिव धीर धरि कह मृदु बानी । महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी ॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा । साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा ॥ २ ॥

मन्त्री धीरज धरकर कोमल वाणी बोले—महाराज ! आप पण्डित और ज्ञानी हैं । हे देव ! आप शूरवीर तथा उत्तम धैर्यवान् पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं । आपने सदा साधुओंके समाजका सेवन किया है ॥ २ ॥

जनम मरन सब दुख सुख भोगा । हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम बस होहिं गोसाईं । बरबस राति दिवस की नाईं ॥ ३ ॥

जन्म-मरण, सुख-दुःखके भोग, हानि-लाभ, प्यारोंका मिलना-बिछुड़ना—ये सब हे स्वामी ! काल और कर्मके अधीन रात और दिनकी तरह बरबस होते रहते हैं ॥ ३ ॥

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी । छाड़िअ सोच सकल हितकारी ॥ ४ ॥

मूर्खलोग सुखमें हर्षित होते और दुःखमें रोते हैं, पर धीर पुरुष अपने मनमें दोनोंको समान समझते हैं । हे सबके हितकारी (रक्षक) ! आप विवेक विचारकर धीरज धरिये और शोकका परित्याग कीजिये ॥४॥

दो०—प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपानु करि सिय समेत दोउ बीर॥ १५०॥

श्रीरामजीका पहला निवास (मुकाम) तमसाके तटपर हुआ, दूसरा गङ्गातीरपर। सीताजीसहित दोनों भाई उस दिन स्नान करके जल पीकर ही रहे॥ १५०॥

चौ०—केवट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवाँई॥
होत प्रात बट छीरु मँगावा। जटा मुकुट निज सीस बनावा॥ १॥

केवट (निषादराज) ने बहुत सेवा की। वह रात सिंगरौर (शृंगवेरपुर) में ही बितायी। दूसरे दिन सबेरा होते ही बड़का दूध मँगवाया और उससे श्रीराम-लक्ष्मणने अपने सिरोंपर जटाओंके मुकुट बनाये॥ १॥

राम सखाँ तब नाव मगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई॥
लखन बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥ २॥

तब श्रीरामचन्द्रजीके सखा निषादराजने नाव मँगवायी। पहले प्रिया सीताजीको उसपर चढ़ाकर फिर श्रीरघुनाथजी चढ़े। फिर लक्ष्मणजीने धनुष-बाण सजाकर रक्खे और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर स्वयं चढ़े॥ २॥

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू॥ ३॥

मुझे व्याकुल देखकर श्रीरामचन्द्रजी धीरज धरकर मधुर वचन बोले—हे तात! पिताजीसे मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओरसे बार-बार उनके चरण-कमल पकड़ना॥ ३॥

करबि पायँ परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥
बन मग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें॥ ४॥

फिर पाँव पकड़कर विनती करना कि हे पिताजी! आप मेरी चिन्ता न कीजिये। आपकी कृपा, अनुग्रह और पुण्यसे वनमें और मार्गमें हमारा कुशल-मंगल होगा॥ ४॥

छं०—तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं॥
जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसल धनी॥

हे पिताजी ! आपके अनुग्रहसे मैं वन जाते हुए सब प्रकारका सुख पाऊँगा। आज्ञाका भलीभाँति पालन करके चरणोंका दर्शन करने कुशल-पूर्वक फिर लौट आऊँगा। सब माताओंके पैरों पड़-पड़कर उनका समाधान करके और उनसे बहुत विनती करके—तुलसीदासजी कहते हैं—तुम वही प्रयत्न करना जिसमें कोसलपति पिताजी कुशल रहें।

सो०—गुर सन कहब सँदेसु बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति ॥ १५१ ॥

बार-बार चरण-कमलोंको पकड़कर गुरु वशिष्ठजीसे मेरा सँदेसा कहना कि वे वही उपदेश दें जिससे अवधपति पिताजी मेरा सोच न करें ॥१५१॥

चौ०—पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएहु बिनती मोरी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जातें रह नरनाहु सुखारी ॥ १ ॥

हे तात ! सब पुरवासियों और कुटुम्बियोंसे निहोरा (अनुरोध) करके मेरी विनती सुनाना कि वही मनुष्य मेरा सब प्रकारसे हितकारी है जिसकी चेष्टासे महाराज सुखी रहें ॥ १ ॥

कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी ॥ २ ॥

भरतके आनेपर उनको मेरा सँदेसा कहना कि राजाका पद पा जाने-पर नीति न छोड़ देना। कर्म, वचन और मनसे प्रजाका पालन करना और सब माताओंको समान जानकर उनकी सेवा करना ॥ २ ॥

ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई ॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहिं करै न काऊ ॥ ३ ॥

और हे भाई ! पिता, माता और स्वजनोंकी सेवा करके भाईपनेको अन्ततक निबाहना। हे तात ! राजा (पिताजी) को उसी प्रकारसे रखना जिससे वे कभी (किसी तरह भी) मेरा सोच न करें ॥ ३ ॥

लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई ॥ ४ ॥

लक्ष्मणजीने कुछ कठोर वचन कहे। किन्तु श्रीरामजीने उन्हें बरजकर फिर मुझसे अनुरोध किया और बार-बार अपनी सौगंध दिलायी [और कहा—] हे तात ! लक्ष्मणका लड़कपन वहाँ न कहना ॥ ४ ॥

दो०—कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह ॥१५२॥

प्रणामकर सीताजी भी कुछ कहने लगी थीं परन्तु स्नेहवश वे शिथिल हो गयीं। उनकी वाणी रुक गयी, नेत्रोंमें जल भर आया और शरीर रोमाञ्चसे व्याप्त हो गया ॥ १५२ ॥

चौ०—तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई॥
रघुकुलतिलक चले एहि भाँती। देखउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥ १॥

इसी समय श्रीरामचन्द्रजीका रुख पाकर केवटने पार जानेके लिये नाव चला दी। इस प्रकार रघुवंशतिलक श्रीरामचन्द्रजी चल दिये और मैं छातीपर वज्र रखकर खड़ा-खड़ा देखता रहा ॥ १ ॥

मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ॥ २॥

मैं अपने क्लेशको कैसे कहूँ, जो श्रीरामचन्द्रजीका यह सँदेसा लेकर जीता ही लौट आया। ऐसा कहकर मन्त्रीकी वाणी रुक गयी (वे चुप हो गये) और वे हानिकी ग्लानि और सोचके वश हो गये ॥ २ ॥

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा॥ ३॥

सारथी सुमन्त्रके वचन सुनते ही राजा पृथ्वीपर गिर पड़े, उनके हृदयमें भयानक जलन होने लगी। वे तड़पने लगे, उनका मन भीषण मोहसे व्याकुल हो गया। मानो मछलीको माँजा व्याप गया हो (पहली वर्षाका जल लग गया हो) ॥ ३ ॥

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा॥ ४॥

सब रानियाँ विलाप करके रो रही हैं। उस महान् विपत्तिका कैसे वर्णन किया जाय? उस समयके विलापको सुनकर दुःखको भी दुःख लगा और धीरजका भी धीरज भाग गया ॥ ४ ॥

दो०—भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु ॥१५३॥

राजाके रावले (रनिवास) में [रोनेका] शोर सुनकर अयोध्याभरमें बड़ा भारी कुहराम मच गया! [ऐसा जान पड़ता था] मानो पक्षियोंके विशाल वनमें रातके समय कठोर वज्र गिरा हो ॥ १५३ ॥

चौ०—प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥
इंद्रीं सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी॥ १॥

राजाके प्राण कण्ठमें आ गये। मानो मणिके बिना साँप व्याकुल (मरणासन्न) हो गया हो। इन्द्रियाँ सब बहुत ही विकल हो गयीं, मानो बिना जलके तालाबमें कमलोंका वन मुरझा गया हो॥ १॥

कौसल्याँ नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥ २॥

कौसल्याजीने राजाको बहुत दुःखी देखकर अपने हृदयमें जान लिया कि अब सूर्यकुलका सूर्य अस्त हो चला। तब श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्या हृदयमें धीरज धरकर समयके अनुकूल वचन बोलीं—॥ २॥

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥ ३॥

हे नाथ! आप मनमें समझकर विचार कीजिये कि श्रीरामचन्द्रका वियोग अपार समुद्र है। अयोध्या जहाज है और आप उसके कर्णधार (खेनेवाले) हैं। सब प्रियजन (कुटुम्बी और प्रजा) ही यात्रियोंका समाज है, जो इस जहाजपर चढ़ा हुआ है॥ ३॥

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥ ४॥

आप धीरज धरियेगा, तो सब पार पहुँच जायँगे। नहीं तो सारा परिवार डूब जायगा। हे प्रिय स्वामी! यदि मेरी विनती हृदयमें धारण कीजियेगा तो श्रीराम, लक्ष्मण, सीता फिर आ मिलेंगे॥ ४॥

दो०—प्रिय बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥१५४॥

प्रिय पत्नी कौसल्याके कोमल वचन सुनते हुए राजाने आँखें खोलकर देखा। मानो तड़पती हुई दीन मछलीपर कोई शीतल जल छिड़क रहा हो॥ १५४॥

चौ०—धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥ १॥

धीरज धरकर राजा उठ बैठे और बोले—सुमन्त्र! कहो, कृपालु श्रीराम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ हैं? स्नेही राम कहाँ हैं? और मेरी प्यारी बहू जानकी कहाँ है?॥ १॥

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥
तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥ २॥

राजा व्याकुल होकर बहुत प्रकारसे विलाप कर रहे हैं। वह रात युगके समान बड़ी हो गयी, बीतती ही नहीं। राजाको अंधे तपस्वी (श्रवण-कुमारके पिता) के शापकी याद आ गयी। उन्होंने सब कथा कौसल्याको कह सुनायी॥ २॥

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा॥ ३॥

उस इतिहासका वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गये और कहने लगे कि श्रीरामके बिना जीनेकी आशाको धिक्कार है। मैं उस शरीरको रखकर क्या करूँगा जिसने मेरा प्रेमका प्रण नहीं निबाहा ! ॥ ३॥

हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥ ४॥

हा रघुकुलको आनन्द देनेवाले मेरे प्राणप्यारे राम ! तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये। हा जानकी, लक्ष्मण ! हा रघुवर ! हा पिताके चित्तरूपी चातकके हित करनेवाले मेघ ! ॥ ४॥

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥१५५॥

राम-राम कहकर, फिर राम कहकर, फिर राम-राम कहकर और फिर राम कहकर राजा श्रीरामके विरहमें शरीर त्यागकर सुरलोकको सिधार गये॥ १५५॥

चौ०—जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥ १॥

जीने और मरनेका फल तो दशरथजीने ही पाया, जिनका निर्मल यश अनेकों ब्रह्माण्डोंमें छा गया। जीते-जी तो श्रीरामचन्द्रजीके चन्द्रमाके समान मुखको देखा और श्रीरामके विरहको निमित्त बनाकर अपना मरण सुधार लिया॥ १॥

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेजु बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा॥ २॥

सब रानियाँ शोकके मारे व्याकुल होकर रो रही हैं। वे राजाके रूप,

शील, बल और तेजका बखान कर-करके अनेकों प्रकारसे विलाप कर रही हैं और बार-बार धरतीपर गिर-गिर पड़ती हैं ॥ २ ॥

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदनु करहिं पुरबासी॥
अँथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू॥ ३ ॥

दास-दासीगण व्याकुल होकर विलाप कर रहे हैं और नगर-निवासी घर-घर रो रहे हैं। कहते हैं कि आज धर्मकी सीमा, गुण और रूपके भण्डार सूर्यकुलके सूर्य अस्त हो गये! ॥ ३ ॥

गारीं सकल कैकइहि देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं॥
एहि बिधि बिलपत रैन बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी॥ ४ ॥

सब कैकेयीको गालियाँ देते हैं, जिसने संसारभरको बिना नेत्रका (अंधा) कर दिया। इस प्रकार विलाप करते रात बीत गयी। प्रातःकाल सब बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि आये ॥ ४ ॥

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास ॥१५६॥

तब वसिष्ठ मुनिने समयके अनुकूल अनेक इतिहास कहकर अपने विज्ञानके प्रकाशसे सबका शोक दूर किया ॥ १५६ ॥

चौ०—तेल नावँ भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥ १ ॥

वसिष्ठजीने नावमें तेल भरवाकर राजाके शरीरको उसमें रखवा दिया। फिर दूतोंको बुलवाकर उनसे ऐसा कहा—तुमलोग जल्दी दौड़कर भरतके पास जाओ! राजाकी मृत्युका समाचार कहीं किसीसे न कहना ॥ १ ॥

एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए॥ २ ॥

जाकर भरतसे इतना ही कहना कि दोनों भाइयोंको गुरुजीने बुलावा भेजा है। मुनिकी आज्ञा सुनकर धावन (दूत) दौड़े। वे अपने वेगसे उत्तम घोड़ोंको भी लजाते हुए चले ॥ २ ॥

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥ ३ ॥

जबसे अयोध्यामें अनर्थ प्रारम्भ हुआ, तभीसे भरतजीको अपशकुन

होने लगे। वे रातको भयङ्कर स्वप्न देखते थे और जागनेपर [उन स्वप्नोंके कारण] करोड़ों (अनेकों) तरहकी बुरी-बुरी कल्पनाएँ किया करते थे ॥ ३॥

बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥ ४॥

[अनिष्टशान्तिके लिये] वे प्रतिदिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दान देते थे। अनेकों विधियोंसे रुद्राभिषेक करते थे। महादेवजीको हृदयमें मनाकर उनसे माता-पिता, कुटुम्बी और भाइयोंका कुशल-क्षेम माँगते थे॥ ४॥

दो०-एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ॥१५७॥

भरतजी इस प्रकार मनमें चिन्ता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजीकी आज्ञा कानोंसे सुनते ही वे गणेशजीको मनाकर चल पड़े॥१५७॥

चौ०-चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके॥
हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई॥ १॥

हवाके समान वेगवाले घोड़ोंको हाँकते हुए वे विकट नदी, पहाड़ तथा जंगलोंको लाँघते हुए चले। उनके हृदयमें बड़ा सोच था, कुछ सुहाता न था। मनमें ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जाऊँ॥ १॥

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥ २॥

एक-एक निमेष वर्षके समान बीत रहा था। इस प्रकार भरतजी नगरके निकट पहुँचे। नगरमें प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौए बुरी जगह बैठकर बुरी तरहसे काँव-काँव कर रहे हैं॥ २॥

खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा॥ ३॥

गदहे और सियार विपरीत बोल रहे हैं। यह सुन-सुनकर भरतके मनमें बड़ी पीड़ा हो रही है। तालाब, नदी, वन, बगीचे सब शोभाहीन हो रहे हैं। नगर बहुत ही भयानक लग रहा है॥ ३॥

खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥ ४॥

श्रीरामजीके वियोगरूपी बुरे रोगसे सताये हुए पक्षी-पशु, घोड़े-हाथी

[ऐसे दुखी हो रहे हैं कि] देखे नहीं जाते। नगरके स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। मानो सब अपनी सारी सम्पत्ति हार बैठे हों॥ ४॥

दो०—**पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहिं जोहारहिं जाहिं।**
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं॥१५८॥

नगरके लोग मिलते हैं, पर कुछ कहते नहीं; गौंसे (चुपके-से) जोहार (वन्दना) करके चले जाते हैं। भरतजी भी किसीसे कुशल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उनके मनमें भय और विषाद छा रहा है॥ १५८॥

चौ०—**हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी॥**
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि॥ १॥

बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते। मानो नगरमें दसों दिशाओंमें दावाग्नि लगी है! पुत्रको आते सुनकर सूर्यकुलरूपी कमलके लिये चाँदनी-रूपी कैकेयी [बड़ी] हर्षित हुई॥ १॥

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा॥ २॥

वह आरती सजाकर आनन्दमें भरकर उठ दौड़ी और दरवाजेपर ही मिलकर भरत-शत्रुघ्नको महलमें ले आयी। भरतने सारे परिवारको दुखी देखा। मानो कमलोंके वनको पाला मार गया हो॥ २॥

कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूँछति नैहर कुसल हमारें॥ ३॥

एक कैकेयी ही इस तरह हर्षित दीखती है मानो भीलनी जंगलमें आग लगाकर आनन्दमें भर रही हो। पुत्रको सोचवश और मनमारे (बहुत उदास) देखकर वह पूछने लगी—हमारे नैहरमें कुशल तो है?॥ ३॥

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥ ४॥

भरतजीने सब कुशल कह सुनायी। फिर अपने कुलकी कुशल-क्षेम पूछी। [भरतजीने कहा—] कहो, पिताजी कहाँ हैं? मेरी सब माताएँ कहाँ हैं? सीताजी और मेरे प्यारे भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं॥ ४॥

दो०—**सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।**
भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन॥१५९॥

पुत्रके स्नेहमय वचन सुनकर नेत्रोंमें कपटका जल भरकर पापिनी कैकेयी भरतके कानोंमें और मनमें शूलके समान चुभनेवाले वचन बोली—॥१५९॥

चौ०—तात बात मैं सकल सँवारी। भै मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥ १॥

हे तात! मैंने सारी बात बना ली थी। बेचारी मन्थरा सहायक हुई। पर विधाताने बीचमें जरा-सा काम बिगाड़ दिया। वह यह कि राजा देवलोकको पधार गये॥ १॥

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥ २॥

भरत यह सुनते ही विषादके मारे विवश (बेहाल) हो गये। मानो सिंहकी गर्जना सुनकर हाथी सहम गया हो। वे 'तात! तात! हा तात!' पुकारते हुए अत्यन्त व्याकुल होकर जमीनपर गिर पड़े॥ २॥

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥ ३॥

[और विलाप करने लगे कि] हे तात! मैं आपको [स्वर्गके लिये] चलते समय देख भी न सका। [हाय!] आप मुझे श्रीरामजीको सौंप भी नहीं गये। फिर धीरज धरकर वे सम्हलकर उठे और बोले—माता! पिताके मरनेका कारण तो बताओ॥ ३॥

सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥ ४॥

पुत्रका वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी। मानो मर्मस्थानको पाछकर (चाकूसे चीरकर) उसमें जहर भर रही हो। कुटिल और कठोर कैकेयीने अपनी सब करनी शुरूसे [आखीरतक बड़े] प्रसन्न मनसे सुना दी॥ ४॥

दो०—भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु॥१६०॥

श्रीरामचन्द्रजीका वन जाना सुनकर भरतजीको पिताका मरण भूल गया और हृदयमें इस सारे अनर्थका कारण अपनेको ही जानकर वे मौन होकर स्तम्भित रह गये (अर्थात् उनकी बोली बंद हो गयी और वे सन्न रह गये)॥ १६०॥

चौ०—बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोनु लगावति॥
तात राउ नहिं सोचै जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू॥ १॥

पुत्रको व्याकुल देखकर कैकेयी समझाने लगी। मानो जलेपर नमक

लगा रही हो। [वह बोली—] हे तात! राजा सोच करने योग्य नहीं हैं। उन्होंने पुण्य और यश कमाकर उसका पर्याप्त भोग किया॥ १॥

जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥ २॥

जीवन-कालमें ही उन्होंने जन्म लेनेके सम्पूर्ण फल पा लिये और अन्तमें वे इन्द्रलोकको चले गये। ऐसा विचारकर सोच छोड़ दो और समाजसहित नगरका राज्य करो॥ २॥

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छत जनु लाग अँगारू॥
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुल नासा॥ ३॥

राजकुमार भरतजी यह सुनकर बहुत ही सहम गये। मानो पके घावपर अँगार छू गया हो। उन्होंने धीरज धरकर बड़ी लम्बी साँस लेते हुए कहा—पापिनी! तूने सभी तरहसे कुलका नाश कर दिया॥ ३॥

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा॥ ४॥

हाय! यदि तेरी ऐसी ही अत्यन्त बुरी रुचि (दुष्ट इच्छा) थी, तो तूने जन्मते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला? तूने पेड़को काटकर पत्तेको सींचा है और मछलीके जीनेके लिये पानीको उलीच डाला! (अर्थात् मेरा हित करने जाकर उलटा तूने मेरा अहित कर डाला)॥ ४॥

दो०—हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥१६१॥

मुझे सूर्यवंश [-सा वंश], दशरथजी [-सरीखे] पिता और राम-लक्ष्मण-से भाई मिले। पर हे जननी! मुझे जन्म देनेवाली माता तू हुई! [क्या किया जाय?] विधातासे कुछ भी वश नहीं चलता॥ १६१॥

चौ०—जब तैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ। खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ॥
बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा॥ १॥

अरी कुमति! जब तूने हृदयमें यह बुरा विचार (निश्चय) ठाना, उसी समय तेरे हृदयके टुकड़े-टुकड़े [क्यों] न हो गये? वरदान माँगते समय तेरे मनमें कुछ भी पीड़ा नहीं हुई? तेरी जीभ गल नहीं गयी? तेरे मुँहमें कीड़े नहीं पड़ गये?॥ १॥

मूएँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही॥
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥ २॥

राजाने तेरा विश्वास कैसे कर लिया? [जान पड़ता है,] विधाताने मरनेके समय उनकी बुद्धि हर ली थी। स्त्रियोंके हृदयकी गति (चाल) विधाता भी नहीं जान सके। वह सम्पूर्ण कपट, पाप और अवगुणोंकी खान है॥ २॥

सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किमि जानै तीय सुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं॥ ३॥

फिर राजा तो सीधे, सुशील और धर्मपरायण थे। वे भला स्त्री-स्वभावको कैसे जानते? अरे, जगत्‌के जीव-जन्तुओंमें ऐसा कौन है जिसे श्रीरघुनाथजी प्राणोंके समान प्यारे नहीं हैं॥ ३॥

भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥
जो हसि सो हसि मुहँ मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥ ४॥

वे श्रीरामजी भी तुझे अहित हो गये (वैरी लगे)! तू कौन है? मुझे सच-सच कह! तू जो है, सो है, अब मुँहमें स्याही पोतकर (मुँह काला करके) उठकर मेरी आँखोंकी ओटमें जा बैठ॥ ४॥

दो०—राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि॥१६२॥

विधाताने मुझे श्रीरामजीसे विरोध करनेवाले (तेरे) हृदयसे उत्पन्न किया [अथवा विधाताने मुझे हृदयसे रामका विरोधी जाहिर कर दिया]। मेरे बराबर पापी दूसरा कौन है? मैं व्यर्थ ही तुझे कुछ कहता हूँ॥१६२॥

चौ०—सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥ १॥

माताकी कुटिलता सुनकर शत्रुघ्नजीके सब अङ्ग क्रोधसे जल रहे हैं, पर कुछ वश नहीं चलता। उसी समय भाँति-भाँतिके कपड़ों और गहनोंसे सजकर कुबरी (मन्थरा) वहाँ आयी॥ १॥

लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुहँ भर महि करत पुकारा॥ २॥

उसे [सजी] देखकर लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नजी क्रोधमें भर गये। मानो जलती हुई आगको घीकी आहुति मिल गयी हो। उन्होंने जोरसे

तककर कूबड़पर एक लात जमा दी। वह चिल्लाती हुई मुँहके बल जमीन-पर गिर पड़ी ॥ २ ॥

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू ॥
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा ॥ ३ ॥

उसका कूबड़ टूट गया, कपाल फूट गया, दाँत टूट गये और मुँहसे खून बहने लगा। [वह कराहती हुई बोली—] 'हाय दैव !' मैंने क्या बिगाड़ा ? जो भला करते बुरा फल पाया ॥ ३ ॥

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी ॥
भरत दयानिधि दीन्हि छड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई ॥ ४ ॥

उसकी यह बात सुनकर और उसे नखसे शिखातक दुष्ट जानकर शत्रुघ्नजी झोंटा पकड़-पकड़कर उसे घसीटने लगे। तब दयानिधि भरतजीने उसको छुड़ा दिया और दोनों भाई [तुरंत] कौसल्याजीके पास गये ॥४॥

दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार ॥१६३॥

कौसल्याजी मैले वस्त्र पहने हैं, चेहरेका रंग बदला हुआ है, व्याकुल हो रही हैं, दुःखके बोझसे शरीर सूख गया है। ऐसी दीख रही हैं मानो सोनेकी सुन्दर कल्पलताको वनमें पाला मार गया हो ॥ १६३ ॥

चौ०—भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँ आई ॥
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी ॥ १ ॥

भरतको देखते ही माता कौसल्याजी उठ दौड़ीं। पर चक्कर आ जानेसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। यह देखते ही भरतजी बड़े व्याकुल हो गये और शरीरकी सुध भुलाकर चरणोंमें गिर पड़े ॥ १ ॥

मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥ २ ॥

[फिर बोले—] माता ! पिताजी कहाँ हैं ? उन्हें दिखा दे। सीताजी तथा मेरे दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण कहाँ हैं ? [उन्हें दिखा दे]। कैकेयी जगत्में क्यों जनमी ! और यदि जनमी ही तो फिर बाँझ क्यों न हुई ! ॥ २ ॥

कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥ ३ ॥

जिसने कुलके कलंक, अपयशके भाँड़े और प्रियजनोंके द्रोही मुझ-जैसे

पुत्रको उत्पन्न किया। तीनों लोकोंमें मेरे समान अभागा कौन है ? जिसके कारण, हे माता ! तेरी यह दशा हुई ॥ ३ ॥

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥
धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी ॥ ४ ॥

पिताजी स्वर्गमें हैं और श्रीरामजी वनमें हैं। केतुके समान केवल मैं ही इन सब अनर्थोंका कारण हूँ। मुझे धिक्कार है ! मैं बाँसके वनमें आग उत्पन्न हुआ और कठिन दाह, दुःख और दोषोंका भागी बना ॥ ४ ॥

दो०—मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ॥१६४॥

भरतजीके कोमल वचन सुनकर माता कौसल्याजी फिर सँभालकर उठीं। उन्होंने भरतको उठाकर छातीसे लगा लिया और नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं ॥ १६४ ॥

चौ०—सरल सुभाय मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥ १ ॥

सरल स्वभाववाली माताने बड़े प्रेमसे भरतजीको छातीसे लगा लिया, मानो, श्रीरामजी ही लौटकर आ गये हों। फिर लक्ष्मणजीके छोटे भाई शत्रुघ्नको हृदयसे लगाया। शोक और स्नेह हृदयमें समाता नहीं है ॥ १ ॥

देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई ॥
मातॉं भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥ २ ॥

कौसल्याजीका स्वभाव देखकर सब कोई कह रहे हैं—श्रीरामकी माताका ऐसा स्वभाव क्यों न हो। माताने भरतजीको गोदमें बैठा लिया और उनके आँसू पोंछकर कोमल वचन बोलीं ॥ २ ॥

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी ॥ ३ ॥

हे वत्स ! मैं बलैया लेती हूँ। तुम अब भी धीरज धरो। बुरा समय जानकर शोक त्याग दो। काल और कर्मकी गति अमिट जानकर हृदयमें हानि और ग्लानि मत मानो ॥ ३ ॥

काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥ ४ ॥

हे तात ! किसीको दोष मत दो। विधाता मुझको सब प्रकारसे उलटा

हो गया है, जो इतने दुःखपर भी मुझे जिला रहा है। अब भी कौन जानता है, उसे क्या भा रहा है? ॥ ४ ॥

दो०—पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
विसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर ॥१६५॥

हे तात! पिताकी आज्ञासे श्रीरघुवीरने भूषण-वस्त्र त्याग दिये और वल्कल-वस्त्र पहन लिये। उनके हृदयमें न कुछ विषाद था, न हर्ष ॥१६५॥

चौ०—मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥ १ ॥

उनका मुख प्रसन्न था; मनमें न आसक्ति थी, न रोष (द्वेष)। सबका सब तरहसे सन्तोष कराकर वे वनको चले। यह सुनकर सीता भी उनके साथ लग गयीं। श्रीरामके चरणोंकी अनुरागिणी वे किसी तरह न रहीं ॥ १ ॥

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥ २ ॥

सुनते ही लक्ष्मण भी साथ ही उठ चले। श्रीरघुनाथने उन्हें रोकनेके बहुत यत्न किये, पर वे न रहे। तब श्रीरघुनाथजी सबको सिर नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मणको साथ लेकर चले गये ॥ २ ॥

रामु लखनु सिय बनहि सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए॥
यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें। तउ न तजा तनु जीव अभागें॥ ३ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वनको चले गये। मैं न तो साथ ही गयी और न मैंने अपने प्राण ही उनके साथ भेजे। यह सब इन्हीं आँखोंके सामने हुआ तो भी अभागे जीवने शरीर नहीं छोड़ा ॥ ३ ॥

मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिऐ मरै भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥ ४ ॥

अपने स्नेहकी ओर देखकर मुझे लाज भी नहीं आती; राम-सरीखे पुत्रकी मैं माता! जीना और मरना तो राजाने खूब जाना। मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रोंके समान कठोर है ॥ ४ ॥

दो०—कौसल्याके बचन सुनि भरत सहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोक नेवासु ॥१६६॥

कौसल्याजीके वचनोंको सुनकर भरतसहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा। राजमहल मानो शोकका निवास बन गया ॥१६६॥

चौ०—बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्याँ लिए हृदयँ लगाई॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुनाए॥ १॥

भरत, शत्रुघ्न दोनों भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्याजीने उनको हृदयसे लगा लिया। अनेकों प्रकारसे भरतजीको समझाया और बहुत-सी विवेकभरी बातें उन्हें कहकर सुनायीं॥ १॥

भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाईं॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥ २॥

भरतजीने भी सब माताओंको पुराण और वेदोंकी सुन्दर कथाएँ कहकर समझाया। दोनों हाथ जोड़कर भरतजी छलरहित पवित्र और सीधी सुन्दर वाणी बोले—॥ २॥

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महिसुर पुर जारें॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥ ३॥

जो पाप माता-पिता और पुत्रके मारनेसे होते हैं और जो गोशाला और ब्राह्मणोंके नगर जलानेसे होते हैं; जो पाप स्त्री और बालककी हत्या करनेसे होते हैं और जो मित्र और राजाको जहर देनेसे होते हैं—॥ ३॥

जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥ ४॥

कर्म, वचन और मनसे होनेवाले जितने पातक एवं उपपातक (बड़े-छोटे पाप) हैं जिनको कवि लोग कहते हैं, हे विधाता! यदि इस काममें मेरा मत हो, तो हे माता! वे सब पाप मुझे लगें॥ ४॥

दो०—जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥ १६७॥

जो लोग श्रीहरि और श्रीशंकरजीके चरणोंको छोड़कर भयानक भूत-प्रेतोंको भजते हैं, हे माता! यदि इसमें मेरा मत हो तो विधाता मुझे उनकी गति दे॥ १६७॥

चौ०—बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥ १॥

जो लोग वेदोंको बेचते हैं, धर्मको दुह लेते हैं, चुगलखोर हैं, दूसरोंके पापोंको कह देते हैं; जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय और क्रोधी हैं तथा जो वेदोंकी निन्दा करनेवाले और विश्वभरके विरोधी हैं;॥ १॥

लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा॥ २॥

जो लोभी, लम्पट और लालचियोंका आचरण करनेवाले हैं; जो पराये धन और परायी स्त्रीकी ताकमें रहते हैं; हे जननी! यदि इस काममें मेरी सम्मति हो तो मैं उनकी भयानक गतिको पाऊँ॥ २॥

जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई॥ ३॥

जिनका सत्सङ्गमें प्रेम नहीं है; जो अभागे परमार्थके मार्गसे विमुख हैं; जो मनुष्यशरीर पाकर श्रीहरिका भजन नहीं करते; जिनको हरि-हर (भगवान् विष्णु और शंकरजी) का सुयश नहीं सुहाता; ॥ ३॥

तजि श्रुति पंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानौं भेऊ॥ ४॥

जो वेदमार्गको छोड़कर वाम (वेदप्रतिकूल) मार्गपर चलते हैं; जो ठग हैं और वेष बनाकर जगत्‌को छलते हैं; हे माता! यदि मैं इस भेदको जानता भी होऊँ तो शंकरजी मुझे उन लोगोंकी गति दें॥ ४॥

दो०—मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥ १६८॥

माता कौसल्याजी भरतजीके स्वाभाविक ही सच्चे और सरल वचनोंको सुनकर कहने लगीं—हे तात! तुम तो मन, वचन और शरीरसे सदा ही श्रीरामचन्द्रके प्यारे हो॥ १६८॥

चौ०—राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥ १॥

श्रीराम तुम्हारे प्राणोंसे भी बढ़कर प्राण (प्रिय) हैं और तुम भी श्रीरघुनाथको प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हो। चन्द्रमा चाहे विष चुआने लगे और पाला आग बरसाने लगे; जलचर जीव जलसे विरक्त हो जाय, ॥ १॥

भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥ २॥

और ज्ञान हो जानेपर भी चाहे मोह न मिटे; पर तुम श्रीरामचन्द्रके प्रतिकूल कभी नहीं हो सकते। इसमें तुम्हारी सम्मति है, जगत्‌में जो कोई ऐसा कहते हैं वे स्वप्नमें भी सुख और शुभगति नहीं पावेंगे॥ २॥

अस कहि मातु भरतु हियँ लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहिं बीति गई सब राती॥३॥

ऐसा कहकर माता कौसल्याने भरतजीको हृदयसे लगा लिया। उनके स्तनोंसे दूध बहने लगा और नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल छा गया। इस प्रकार बहुत विलाप करते हुए सारी रात बैठे-ही-बैठे बीत गयी॥३॥

बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥४॥

तब वामदेवजी और वशिष्ठजी आये। उन्होंने सब मन्त्रियों तथा महाजनोंको बुलवाया। फिर मुनि वशिष्ठजीने परमार्थके सुन्दर समयानुकूल वचन कहकर बहुत प्रकारसे भरतजीको उपदेश दिया॥४॥

दो०—तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु॥१६९॥

[वशिष्ठजीने कहा—] हे तात! हृदयमें धीरज धरो और आज जिस कार्यके करनेका अवसर है, उसे करो। गुरुजीके वचन सुनकर भरतजी उठे और उन्होंने सब तैयारी करनेके लिये कहा॥१६९॥

चौ०—नृप तनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा॥
गहि पद भरत मातु सब राखी। रहीं रानि दरसन अभिलाषी॥१॥

वेदोंमें बतायी हुई विधिसे राजाकी देहको स्नान कराया गया और परम विचित्र विमान बनाया गया। भरतजीने सब माताओंको चरण पकड़कर रक्खा (अर्थात् प्रार्थना करके उनको सती होनेसे रोक लिया); वे रानियाँ भी [श्रीरामके] दर्शनकी अभिलाषासे रह गयीं॥१॥

चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥२॥

चन्दन और अगरके तथा और भी अनेकों प्रकारके अपार [कपूर, गुग्गुल, केसर आदि] सुगन्ध-द्रव्योंके बहुत-से बोझ आये। सरयूजीके तटपर सुन्दर चिता रचकर बनायी गयी, [जो ऐसी मालूम होती थी] मानो स्वर्गकी सुन्दर सीढ़ी हो॥२॥

एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥३॥

इस प्रकार सब दाहक्रिया की गयी और सबने विधिपूर्वक स्नान करके

तिलाञ्जलि दी। फिर वेद, स्मृति और पुराण सबका मत निश्चय करके उसके अनुसार भरतजीने पिताका दशगात्र-विधान (दश दिनोंके कृत्य) किया॥ ३॥

जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा॥
भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥ ४॥

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने जहाँ जैसी आज्ञा दी, वहाँ भरतजीने सब वैसा ही हजारों प्रकारसे किया। शुद्ध हो जानेपर [विधिपूर्वक] सब दान दिये। गौएँ तथा घोड़े, हाथी आदि अनेक प्रकारकी सवारियाँ, ॥ ४॥

दो०-सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम॥ १७०॥

सिंहासन, गहने, कपड़े, अन्न, पृथ्वी, धन और मकान भरतजीने दिये; भूदेव ब्राह्मण दान पाकर परिपूर्णकाम हो गये (अर्थात् उनकी सारी मनोकामनाएँ अच्छी तरहसे पूरी हो गयीं)॥ १७०॥

चौ०-पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी॥
सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥ १॥

पिताजीके लिये भरतजीने जैसी करनी की वह लाखों मुखोंसे भी वर्णन नहीं की जा सकती। तब शुभ दिन शोधकर श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी आये और उन्होंने मन्त्रियों तथा सब महाजनोंको बुलवाया॥ १॥

बैठे राजसभाँ सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ट निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥ २॥

सब लोग राजसभामें जाकर बैठ गये। तब मुनिने भरतजी तथा शत्रुघ्नजी दोनों भाइयोंको बुलवा भेजा। भरतको वशिष्ठजीने अपने पास बैठा लिया और नीति तथा धर्मसे भरे हुए वचन कहे॥ २॥

प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥
भूप धरमब्रतु सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥ ३॥

पहले तो कैकेयीने जैसी कुटिल करनी की थी, श्रेष्ठ मुनिने वह सारी कथा कही। फिर राजाके धर्मव्रत और सत्यकी सराहना की, जिन्होंने शरीर त्यागकर प्रेमको निबाहा॥ ३॥

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुण, शील और स्वभावका वर्णन करते-करते तो मुनिराजके नेत्रोंमें जल भर आया और वे शरीरसे पुलकित हो गये। फिर लक्ष्मणजी और सीताजीके प्रेमकी बड़ाई करते हुए ज्ञानी मुनि शोक और स्नेहमें मग्न हो गये ॥ ४ ॥

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ॥ १७१ ॥

मुनिनाथने बिलखकर (दुखी होकर) कहा—हे भरत ! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान् है। हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश—ये सब विधाताके हाथ हैं ॥ १७१ ॥

चौ०—अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू ॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं ॥ १ ॥

ऐसा विचारकर किसे दोष दिया जाय ? और व्यर्थ किसपर क्रोध किया जाय ? हे तात ! मनमें विचार करो। राजा दशरथ सोच करनेके योग्य नहीं हैं ॥ १ ॥

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना ॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥ २ ॥

सोच उस ब्राह्मणका करना चाहिये जो वेद नहीं जानता और जो अपना धर्म छोड़कर विषय-भोगमें ही लीन रहता है। उस राजाका सोच करना चाहिये जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणोंके समान प्यारी नहीं है ॥ २ ॥

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ॥
सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ॥ ३ ॥

उस वैश्यका सोच करना चाहिये जो धनवान् होकर भी कंजूस है और जो अतिथिसत्कार तथा शिवजीकी भक्ति करनेमें कुशल नहीं है। उस शूद्रका सोच करना चाहिये जो ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला, बहुत बोलनेवाला, मान-बड़ाई चाहनेवाला और ज्ञानका घमंड रखनेवाला है ॥ ३ ॥

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई ॥ ४ ॥

पुनः उस स्त्रीका सोच करना चाहिये जो पतिको छलनेवाली, कुटिल, कलहप्रिय और स्वेच्छाचारिणी है। उस ब्रह्मचारीका सोच करना चाहिये

जो अपने ब्रह्मचर्य-व्रतको छोड़ देता है और गुरुकी आज्ञाके अनुसार नहीं चलता ॥ ४ ॥

दो०—सोचिअ गृही जो मोहबस करइ करम पथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग ॥ १७२ ॥

उस गृहस्थका सोच करना चाहिये जो मोहवश कर्ममार्गका त्याग कर देता है; उस संन्यासीका सोच करना चाहिये जो दुनियाके प्रपञ्चमें फँसा हुआ है और ज्ञान-वैराग्यसे हीन है ॥ १७२ ॥

चौ०—बैखानस सोइ सोचै जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ॥ १ ॥

वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है जिसको तपस्या छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं। सोच उसका करना चाहिये जो चुगलखोर है, बिना ही कारण क्रोध करनेवाला है तथा माता, पिता, गुरु एवं भाई-बन्धुओंके साथ विरोध रखनेवाला है ॥ १ ॥

सब बिधि सोचिअ पर अपकारी । निज तनु पोषक निरदय भारी ॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई । जो न छाड़ि छलु हरि जन होई ॥ २ ॥

सब प्रकारसे उसका सोच करना चाहिये जो दूसरोंका अनिष्ट करता है, अपने ही शरीरका पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है। और वह तो सभी प्रकारसे सोच करने योग्य है जो छल छोड़कर हरिका भक्त नहीं होता ॥ २ ॥

सोचनीय नहिं कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥ ३ ॥

कोसलराज दशरथजी सोच करने योग्य नहीं हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकोंमें प्रकट है। हे भरत ! तुम्हारे पिता-जैसा राजा तो न हुआ, न है और न अब होनेका ही है ॥ ३ ॥

बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा । बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा ॥ ४ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल सभी दशरथजीके गुणोंकी कथाएँ कहा करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु ।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु ॥ १७३ ॥

हे तात ! कहो, उनकी बड़ाई कोई किस प्रकार करेगा जिनके श्रीराम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न-सरीखे पवित्र पुत्र हैं ? ॥ १७३ ॥

चौ०—सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ॥
यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ॥ १ ॥

राजा सब प्रकारसे बड़भागी थे। उनके लिये विषाद करना व्यर्थ है। यह सुन और समझकर सोच त्याग दो और राजाकी आज्ञा सिर चढ़ाकर तदनुसार करो ॥ १ ॥

रायँ राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहिं बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥ २ ॥

राजाने राजपद तुमको दिया है। पिताका वचन तुम्हें सत्य करना चाहिये, जिन्होंने वचनके लिये ही श्रीरामचन्द्रजीको त्याग दिया और रामविरहकी अग्निमें अपने शरीरकी आहुति दे दी ! ॥ २ ॥

नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना ॥
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ॥ ३ ॥

राजाको वचन प्रिय थे, प्राण प्रिय नहीं थे। इसलिये हे तात ! पिताके वचनोंको प्रमाण (सत्य) करो। राजाकी आज्ञा सिर चढ़ाकर पालन करो, इसमें तुम्हारी सब तरह भलाई है ॥ ३ ॥

परसुराम पितु अग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी ॥
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ ॥ ४ ॥

परशुरामजीने पिताकी आज्ञा रक्खी और माताको मार डाला; सब लोक इस बातके साक्षी हैं। राजा ययातिके पुत्रने पिताको अपनी जवानी दे दी। पिताकी आज्ञा पालन करनेसे उन्हें पाप और अपयश नहीं हुआ ॥ ४ ॥

दो०—अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ॥ १७४ ॥

जो अनुचित और उचितका विचार छोड़कर पिताके वचनोंका पालन करते हैं, वे [यहाँ] सुख और सुयशके पात्र होकर अन्तमें इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में निवास करते हैं ॥ १७४ ॥

चौ०—अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहुँ सुकृतु सुजसु नहिं दोषू ॥ १ ॥

राजाका वचन अवश्य सत्य करो। शोक त्याग दो और प्रजाका पालन करो। ऐसा करनेसे स्वर्गमें राजा सन्तोष पावेंगे और तुमको पुण्य और सुन्दर यश मिलेगा, दोष नहीं लगेगा ॥ १ ॥

बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी ॥ २ ॥

यह वेदमें प्रसिद्ध है और [स्मृति-पुराणादि] सभी शास्त्रोंके द्वारा सम्मत है कि पिता जिसको दे वही राजतिलक पाता है। इसलिये तुम राज्य करो, ग्लानिका त्याग कर दो। मेरे वचनको हित समझकर मानो ॥२॥

सुनि सुखु लहब राम बैदेहीं। अनुचित कहब न पंडित केहीं ॥
कौसल्यादि सकल महतारीं। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारीं ॥ ३ ॥

इस बातको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजी सुख पावेंगे और कोई पण्डित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्याजी आदि तुम्हारी सब माताएँ भी प्रजाके सुखसे सुखी होंगी ॥ ३ ॥

परम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि ॥
सौंपेहु राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥ ४ ॥

जो तुम्हारे और श्रीरामचन्द्रजीके श्रेष्ठ सम्बन्धको जान लेगा, वह सभी प्रकारसे तुमसे भला मानेगा। श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेपर राज्य उन्हें सौंप देना और सुन्दर स्नेहसे उनकी सेवा करना ॥ ४ ॥

दो०—**कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।**
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि ॥ १७५ ॥

मन्त्री हाथ जोड़कर कह रहे हैं—गुरुजीकी आज्ञाका अवश्य ही पालन कीजिये। श्रीरघुनाथजीके लौट आनेपर जैसा उचित हो, तब फिर वैसा ही कीजियेगा ॥ १७५ ॥

चौ०—**कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयसु अहई ॥**
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी ॥ १ ॥

कौसल्याजी भी धीरज धरकर कह रही हैं—हे पुत्र! गुरुजीकी आज्ञा पथ्यरूप है। उसका आदर करना चाहिये और हित मानकर उसका पालन करना चाहिये। कालकी गतिको जानकर विषादका त्याग कर देना चाहिये ॥ १ ॥

बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू ॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजी वनमें हैं, महाराज स्वर्गका राज्य करने चले गये और हे तात ! तुम इस प्रकार कातर हो रहे हो। हे पुत्र ! कुटुम्ब, प्रजा, मन्त्री और सब माताओंके—सबके एक तुम ही सहारे हो ॥ २ ॥

लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥

सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू॥ ३॥

विधाताको प्रतिकूल और कालको कठोर देखकर धीरज धरो, माता तुम्हारी बलिहारी जाती है। गुरुकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर उसीके अनुसार कार्य करो और प्रजाका पालन कर कुटुम्बियोंका दुःख हरो ॥ ३ ॥

गुर के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु॥

सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी॥ ४॥

भरतजीने गुरुके वचनों और मन्त्रियोंके अभिनन्दन (अनुमोदन) को सुना, जो उनके हृदयके लिये मानो चन्दनके समान [शीतल] थे। फिर उन्होंने शील-स्नेह और सरलताके रसमें सनी हुई माता कौसल्याकी कोमल वाणी सुनी ॥ ४ ॥

छं०—**सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु ब्याकुल भए।**
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की॥

सरलताके रसमें सनी हुई माताकी वाणी सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये। उनके नेत्र-कमल जल (आँसू) बहाकर हृदयके विरहरूपी नवीन अंकुरको सींचने लगे। (नेत्रोंके आँसुओंने उनके वियोग-दुःखको बहुत ही बढ़ाकर उन्हें अत्यन्त व्याकुल कर दिया) उनकी वह दशा देखकर उस समय सबको अपने शरीरकी सुध भूल गयी। तुलसीदासजी कहते हैं—स्वाभाविक प्रेमकी सीमा श्रीभरतजीकी सब लोग आदरपूर्वक सराहना करने लगे।

सो०—**भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।**
बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥ १७६॥

धैर्यकी धुरीको धारण करनेवाले भरतजी धीरज धरकर, कमलके समान हाथोंको जोड़कर, वचनोंको मानो अमृतमें डुबाकर सबको उचित उत्तर देने लगे—॥ १७६ ॥

मासपारायण, अठारहवाँ विश्राम

चौ०—मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥ १॥

गुरुजीने मुझे सुन्दर उपदेश दिया [फिर] प्रजा, मन्त्री आदि सभीको यही सम्मत है। माताने भी उचित समझकर ही आज्ञा दी है और मैं भी अवश्य उसको सिर चढ़ाकर वैसा ही करना चाहता हूँ॥ १॥

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥ २॥

[क्योंकि] गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद् (मित्र) की वाणी सुनकर प्रसन्न मनसे उसे अच्छी समझकर करना (मानना) चाहिये। उचित-अनुचितका विचार करनेसे धर्म जाता है और सिरपर पापका भार चढ़ता है॥ २॥

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोषु न जी कें॥ ३॥

आप तो मुझे वही सरल शिक्षा दे रहे हैं, जिसके आचरण करनेमें मेरा भला हो। यद्यपि मैं इस बातको भलीभाँति समझता हूँ, तथापि मेरे हृदयको सन्तोष नहीं होता॥ ३॥

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥ ४॥

अब आपलोग मेरी विनती सुन लीजिये और मेरी योग्यताके अनुसार मुझे शिक्षा दीजिये। मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह अपराध क्षमा कीजिये। साधु पुरुष दुखी मनुष्यके दोष-गुणोंको नहीं गिनते॥ ४॥

दो०—पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु॥ १७७॥

पिताजी स्वर्गमें हैं, श्रीसीतारामजी वनमें हैं और मुझे आप राज्य करनेके लिये कह रहे हैं। इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं या अपना कोई बड़ा काम [होनेकी आशा रखते हैं]? ॥ १७७॥

चौ०—हित हमार सियपति सेवकाईं। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाईं॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपायँ मोर हित नाहीं॥ १॥

मेरा कल्याण तो सीतापति श्रीरामजीकी चाकरीमें है, सो उसे माता-

की कुटिलताने छीन लिया। मैंने अपने मनमें अनुमान करके देख लिया है कि दूसरे किसी उपायसे मेरा कल्याण नहीं है ॥ १ ॥

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें ॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू ॥ २ ॥

यह शोकका समुदाय राज्य लक्ष्मण, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके चरणोंको देखे बिना किस गिनतीमें है (इसका क्या मूल्य है)? जैसे कपड़ोंके बिना गहनोंका बोझ व्यर्थ है। वैराग्यके बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है ॥ २ ॥

सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा ॥
जायँ जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई ॥ ३ ॥

रोगी शरीरके लिये नाना प्रकारके भोग व्यर्थ हैं। श्रीहरिकी भक्तिके बिना जप और योग व्यर्थ हैं। जीवके बिना सुन्दर देह व्यर्थ है। वैसे ही श्रीरघुनाथजीके बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है ॥ ३ ॥

जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आँक मोर हित एहू ॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू ॥ ४ ॥

मुझे आज्ञा दीजिये, मैं श्रीरामजीके पास जाऊँ। एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) मेरा हित इसीमें है। और मुझे राजा बनाकर आप अपना भला चाहते हैं, यह भी आप स्नेहकी जड़ता (मोह) के वश होकर ही कह रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम कें राज ॥ १७८ ॥

कैकेयीके पुत्र, कुटिलबुद्धि, रामविमुख और निर्लज्ज मुझसे अधमके राज्यसे आप मोहके वश होकर ही सुख चाहते हैं ॥ १७८ ॥

चौ०—कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥ १ ॥

मैं सत्य कहता हूँ, आप सब सुनकर विश्वास करें, धर्मशीलको ही राजा होना चाहिये। आप मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे त्यों ही पृथ्वी पातालमें धँस जायगी ॥ १ ॥

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू ॥
रायँ राम कहुँ काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा ॥ २ ॥

मेरे समान पापोंका घर कौन होगा। जिसके कारण सीताजी और

श्रीरामका वनवास हुआ ? राजाने श्रीरामजीको वन दिया और उनके बिछुड़ते ही स्वयं स्वर्गको गमन किया ॥ २ ॥

मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥ ३ ॥

और मैं दुष्ट, जो सारे अनर्थोंका कारण हूँ, होश-हवाशमें बैठा सब बातें सुन रहा हूँ। श्रीरघुनाथजीसे रहित घरको देखकर और जगत्‌का उपहास सहकर भी ये प्राण बने हुए हैं ॥ ३ ॥

राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे ॥
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई ॥ ४ ॥

[इसका यही कारण है कि ये प्राण] श्रीरामरूपी पवित्र विषय-रसमें आसक्त नहीं हैं। ये लालची भूमि और भोगोंके ही भूखे हैं। मैं अपने हृदयकी कठोरता कहाँतक कहूँ ? जिसने वज्रका भी तिरस्कार करके बड़ाई पायी है ॥ ४ ॥

दो०—कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥ १७९ ॥

कारणसे कार्य कठिन होता ही है, इसमें मेरा दोष नहीं। हड्डीसे वज्र और पत्थरसे लोहा भयानक और कठोर होता है ॥ १७९ ॥

चौ०—कैकेई भव तनु अनुरागे। पावँर प्रान अघाइ अभागे ॥
जौं प्रिय बिरहँ प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे ॥ १ ॥

कैकेयीसे उत्पन्न देहमें प्रेम करनेवाले ये पामर प्राण भरपेट (पूरी तरहसे) अभागे हैं। जब प्रियके वियोगमें भी मुझे प्राण प्रिय लग रहे हैं तब अभी आगे मैं और भी बहुत कुछ देखूँ-सुनूँगा ॥ १ ॥

लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू ॥ २ ॥

लक्ष्मण, श्रीरामजी और सीताजीको तो वन दिया; स्वर्ग भेजकर पतिका कल्याण किया; स्वयं विधवापन और अपयश लिया; प्रजाको शोक और सन्ताप दिया; ॥ २ ॥

मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकईं सब कर काजू ॥
एहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ॥ ३ ॥

और मुझे सुख, सुन्दर यश और उत्तम राज्य दिया। कैकेयीने सभीका

काम बना दिया। इससे अच्छा अब मेरे लिये और क्या होगा? उसपर भी आपलोग मुझे राजतिलक देनेको कहते हैं! ॥ ३ ॥

कैकइ जठर जनमि जग माहीं। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं॥
मोरि बात सब बिधिहिं बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥ ४॥

कैकेयीके पेटसे जगत्में जन्म लेकर यह मेरे लिये कुछ भी अनुचित नहीं है। मेरी सब बात तो विधाताने ही बना दी है [फिर] उसमें प्रजा और पंच (आपलोग) क्यों सहायता कर रहे हैं॥ ४॥

दो०—ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार॥ १८०॥

जिसे कुग्रह लगे हों [अथवा जो पिशाचग्रस्त हो], फिर जो वायुरोगसे पीड़ित हो और उसीको फिर बिच्छू डंक मार दे, उसको यदि मदिरा पिलायी जाय, तो कहिये यह कैसा इलाज है! ॥ १८०॥

चौ०—कैकइ सुअन जोगु जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई॥ १॥

कैकेयीके लड़केके लिये संसारमें जो कुछ योग्य था, चतुर विधाताने मुझे वही दिया। पर 'दशरथजीका पुत्र' और 'रामका छोटा भाई' होनेकी बड़ाई मुझे विधाताने व्यर्थ ही दी॥ १॥

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही॥ २॥

आप सब लोग भी मुझे टीका कढ़ानेके लिये कह रहे हैं। राजाकी आज्ञा सभीके लिये अच्छी है। मैं किस-किसको किस-किस प्रकारसे उत्तर दूँ! जिसकी जैसी रुचि हो आपलोग सुखपूर्वक वही कहें॥ २॥

मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं॥ ३॥

मेरी कुमाता कैकेयीसमेत मुझे छोड़कर, कहिये और कौन कहेगा कि यह काम अच्छा किया गया? जड़-चेतन जगत्में मेरे सिवा और कौन है जिसको श्रीसीतारामजी प्राणोंके समान प्यारे न हों॥ ३॥

परम हानि सब कहँ बड़ लाहू। अदिनु मोर नहिं दूषन काहू॥
संसय सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सब जो कछु कहहू॥ ४॥

जो परम हानि है, उसीमें सबको बड़ा लाभ दीख रहा है। मेरा बुरा दिन है, किसीका दोष नहीं। आप सब जो कुछ कहते हैं सो सब उचित ही है; क्योंकि आपलोग संशय, शील और प्रेमके वश हैं ॥ ४ ॥

दो०—राम मातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु बिसेषि।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि ॥ १८१ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माता बहुत ही सरलहृदय हैं और मुझपर उनका विशेष प्रेम है। इसलिये मेरी दीनता देखकर वे स्वाभाविक स्नेहवश ही ऐसा कह रही हैं ॥ १८१ ॥

चौ०–गुर बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना ॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ ॥ १ ॥

गुरुजी ज्ञानके समुद्र हैं, इस बातको सारा जगत् जानता है, जिनके लिये विश्व हथेलीपर रक्खे हुए बेरके समान है, वे भी मेरे लिये राजतिलकका साज सज रहे हैं। सत्य है, विधाताके विपरीत होनेपर सब कोई विपरीत हो जाते हैं ॥ १ ॥

परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ॥
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी। अंतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीको छोड़कर जगत्में कोई यह नहीं कहेगा कि इस अनर्थमें मेरी सम्मति नहीं है। मैं उसे सुखपूर्वक सुनूँगा और सहूँगा। क्योंकि जहाँ पानी होता है, वहाँ अन्तमें कीचड़ होता ही है ॥ २ ॥

डरु न मोहि जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी ॥ ३ ॥

मुझे इसका डर नहीं है कि जगत् मुझे बुरा कहेगा और न मुझे परलोकका ही सोच है। मेरे हृदयमें तो बस, एक ही दुःसह दावानल धधक रहा है कि मेरे कारण श्रीसीतारामजी दुखी हुए ॥ ३ ॥

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा ॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी ॥ ४ ॥

जीवनका उत्तम लाभ तो लक्ष्मणने पाया, जिन्होंने सब कुछ तजकर श्रीरामजीके चरणोंमें मन लगाया। मेरा जन्म तो श्रीरामजीके वनवासके लिये ही हुआ था। मैं अभागा झूठ-मूठ क्या पछताता हूँ ? ॥ ४ ॥

दो०—आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ ॥ १८२ ॥

सबको सिर झुकाकर मैं अपनी दारुण दीनता कहता हूँ। श्रीरघुनाथ-जीके चरणोंके दर्शन किये बिना मेरे जीकी जलन न जायगी ॥ १८२ ॥

चौ०—आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ॥
एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ॥ १ ॥

मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं सूझता। श्रीरामके बिना मेरे हृदयकी बात कौन जान सकता है। मनमें एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) यही है कि प्रातःकाल प्रभु श्रीरामजीके पास चल दूँगा ॥ १ ॥

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ॥ २ ॥

यद्यपि मैं बुरा और अपराधी हूँ और मेरे ही कारण यह सब उपद्रव हुआ है, तथापि श्रीरामजी मुझे शरणमें सम्मुख आया हुआ देखकर सब अपराध क्षमा करके मुझपर विशेष कृपा करेंगे ॥ २ ॥

सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजी शील-संकोच, अत्यन्त सरल स्वभाव, कृपा और स्नेहके घर हैं। श्रीरामजीने कभी शत्रुका भी अनिष्ट नहीं किया। मैं यद्यपि टेढ़ा हूँ पर हूँ तो उनका बच्चा और गुलाम ही ॥ ३ ॥

तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी ॥ ४ ॥

आप पंच (सब) लोग भी इसीमें मेरा कल्याण मानकर सुन्दर वाणी-से आज्ञा और आशीर्वाद दीजिये, जिसमें मेरी विनती सुनकर और मुझे अपना दास जानकर श्रीरामचन्द्रजी राजधानीको लौट आवें ॥ ४ ॥

दो०—जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ॥ १८३ ॥

यद्यपि मेरा जन्म कुमातासे हुआ है और मैं दुष्ट तथा सदा दोषयुक्त भी हूँ, तो भी मुझे श्रीरामजीका भरोसा है कि वे मुझे अपना जानकर त्यागेंगे नहीं ॥ १८३ ॥

चौ०—भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधाँ जनु पागे॥
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥ १॥

भरतजीके वचन सबको प्यारे लगे। मानो वे श्रीरामजीके प्रेमरूपी अमृतमें पगे हुए थे। श्रीरामवियोगरूपी भीषण विषसे सब लोग जले हुए थे। वे मानो बीजसहित मन्त्रको सुनते ही जाग उठे॥ १॥

मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेहँ बिकल भए भारी॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥ २॥

माता, मन्त्री, गुरु, नगरके स्त्री-पुरुष सभी स्नेहके कारण बहुत ही व्याकुल हो गये। सब भरतजीको सराह-सराहकर कहते हैं कि आपका शरीर श्रीरामप्रेमकी साक्षात् मूर्ति ही है॥ २॥

तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू॥
जो पावँरु अपनी जड़ताईं। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाईं॥ ३॥

हे तात भरत! आप ऐसा क्यों न कहें। श्रीरामजीको आप प्राणोंके समान प्यारे हैं। जो नीच अपनी मूर्खतासे आपकी माता कैकेयीकी कुटिलताको लेकर आपपर सन्देह करेगा॥ ३॥

सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसिहि कलप सत नरक निकेता॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥ ४॥

वह दुष्ट करोड़ों पुरुषोंसहित सौ कल्पोंतक नरकके घरमें निवास करेगा। साँपके पाप और अवगुणको मणि नहीं ग्रहण करती। बल्कि वह विषको हर लेती है और दुःख तथा दरिद्रताको भस्म कर देती है॥ ४॥

दो०—अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥१८४॥

हे भरतजी! वनको अवश्य चलिये, जहाँ श्रीरामजी हैं; आपने बहुत अच्छी सलाह विचारी। शोकसमुद्रमें डूबते हुए सब लोगोंको आपने [बड़ा] सहारा दे दिया॥ १८४॥

चौ०—भा सब कें मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥ १॥

सबके मनमें कम आनन्द नहीं हुआ (अर्थात् बहुत ही आनन्द हुआ)। मानो मेघोंकी गर्जना सुनकर चातक और मोर आनन्दित हो रहे हों। [दूसरे दिन] प्रातःकाल चलनेका सुन्दर निर्णय देखकर भरतजी सभीको प्राणप्रिय हो गये॥ १॥

मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई ॥
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सीलु सनेहु सराहत जाहीं ॥ २ ॥

मुनि वशिष्ठजीकी वन्दना करके और भरतजीको सिर नवाकर, सब लोग विदा लेकर अपने-अपने घरको चले। जगत्‌में भरतजीका जीवन धन्य है, इस प्रकार कहते हुए वे उनके शील और स्नेहकी सराहना करते जाते हैं ॥ २ ॥

कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू ॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥ ३ ॥

आपसमें कहते हैं, बड़ा काम हुआ। सभी चलनेकी तैयारी करने लगे। जिसको भी घरकी रखवालीके लिये रहो, ऐसा कहकर रखते हैं, वही समझता है मानो मेरी गर्दन मारी गयी ॥ ३ ॥

कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। को न चहइ जग जीवन लाहू ॥ ४ ॥

कोई-कोई कहते हैं—रहनेके लिये किसीको मत कहो, जगत्‌में जीवन-का लाभ कौन नहीं चाहता ? ॥ ४ ॥

दो०—जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ ॥१८५॥

वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता-पिता, भाई जल जाय जो श्रीरामजीके चरणोंके सम्मुख होनेमें हँसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) सहायता न करे ॥ १८५ ॥

चौ०—घर घर साजहिं वाहन नाना। हरषु हृदयँ परभात पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवन भँडारू ॥ १ ॥

घर-घर लोग अनेकों प्रकारकी सवारियाँ सजा रहे हैं। हृदयमें [बड़ा] हर्ष है कि सबेरे चलना है। भरतजीने घर जाकर विचार किया कि नगर, घोड़े, हाथी, महल-खजाना आदि—॥ १ ॥

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई ॥ २ ॥

सारी सम्पत्ति श्रीरघुनाथजीकी है। यदि उसकी [रक्षाकी] व्यवस्था किये बिना उसे ऐसे ही छोड़कर चल दूँ, तो परिणाममें मेरी भलाई नहीं है। क्योंकि स्वामीका द्रोह सब पापोंमें शिरोमणि (श्रेष्ठ) है ॥ २ ॥

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले॥ ३॥

सेवक वही है जो स्वामीका हित करे, चाहे कोई करोड़ों दोष क्यों न दे। भरतजीने ऐसा विचारकर ऐसे विश्वासपात्र सेवकोंको बुलाया जो कभी स्वप्नमें भी अपने धर्मसे नहीं डिगे थे॥ ३॥

कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे॥ ४॥

भरतजीने उनको सब भेद समझाकर फिर उत्तम धर्म बतलाया; और जो जिस योग्य था, उसे उसी कामपर नियुक्त कर दिया। सब व्यवस्था करके, रक्षकोंको रखकर भरतजी राममाता कौसल्याजीके पास गये॥ ४॥

दो०—आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान॥१८६॥

स्नेहके सुजान (प्रेमके तत्त्वको जाननेवाले) भरतजीने सब माताओंको आर्त (दुःखी) जानकर उनके लिये पालकियाँ तैयार करने तथा सुखासन यान (सुखपाल) सजानेके लिये कहा॥ १८६॥

चौ०—चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना॥ १॥

नगरके नर-नारी चकवे-चकवीकी भाँति हृदयमें अत्यन्त आर्त होकर प्रातःकालका होना चाहते हैं। सारी रात जागते-जागते सबेरा हो गया। तब भरतजीने चतुर मन्त्रियोंको बुलवाया—

कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहि राजू॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे॥ २॥

और कहा—तिलकका सब समान ले चलो। वनमें ही मुनि वशिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजीको राज्य देंगे, जल्दी चलो। यह सुनकर मन्त्रियोंने वन्दना की और तुरंत घोड़े, रथ और हाथी सजवा दिये॥ २॥

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना॥ ३॥

सबसे पहले मुनिराज वशिष्ठजी अरुन्धती और अग्निहोत्रकी सब सामग्रीसहित रथपर सवार होकर चले। फिर ब्राह्मणोंके समूह, जो सब-के-सब तपस्या और तेजके भण्डार थे, अनेकों सवारियोंपर चढ़कर चले॥३॥

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥ ४॥

नगरके सब लोग रथोंको सजा-सजाकर चित्रकूटको चल पड़े। जिनका वर्णन नहीं हो सकता, ऐसी सुन्दर पालकियोंपर चढ़-चढ़कर सब रानियाँ चलीं॥ ४॥

दो०—सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ॥१८७॥

विश्वासपात्र सेवकोंको नगर सौंपकर और सबको आदरपूर्वक रवाना करके, तब श्रीसीतारामजीके चरणोंको स्मरण करके भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले॥ १८७॥

चौ०—राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥
बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहिं जाहीं॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके वशमें हुए (दर्शनकी अनन्य लालसासे) सब नर-नारी ऐसे चले मानो प्यासे हाथी-हथिनी जलको तककर [बड़ी तेजीसे बावले-से हुए] जा रहे हों। श्रीसीतारामजी [सब सुखोंको छोड़कर] वनमें हैं, मनमें ऐसा विचार करके छोटे भाई शत्रुघ्नजीसहित भरतजी पैदल ही चले जा रहे हैं॥ १॥

देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली॥ २॥

उनका स्नेह देखकर लोग प्रेममें मग्न हो गये और सब घोड़े, हाथी, रथोंको छोड़कर उनसे उतरकर पैदल चलने लगे। तब श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजी भरतजीके पास जाकर और अपनी पालकी उनके समीप खड़ी करके कोमल वाणीसे बोलीं—॥ २॥

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरें चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥ ३॥

हे बेटा! माता बलैया लेती है, तुम रथपर चढ़ जाओ। नहीं तो सारा प्यारा परिवार दुखी हो जायगा। तुम्हारे पैदल चलनेसे सभी लोग पैदल चलेंगे। शोकके मारे सब दुबले हो रहे हैं, पैदल रास्तेके (पैदल चलनेके) योग्य नहीं हैं॥ ३॥

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई ॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू ॥ ४ ॥

माताकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर और उनके चरणोंमें सिर नवाकर दोनों भाई रथपर चढ़कर चलने लगे। पहले दिन तमसापर वास (मुकाम) करके दूसरा मुकाम गोमतीके तीरपर किया ॥ ४ ॥

दो०—पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग ॥ १८८ ॥

कोई दूध पीते, कोई फलाहार करते और कुछ लोग रातको एक ही बार भोजन करते हैं। भूषण और भोग-विलासको छोड़कर सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके लिये नियम और व्रत करते हैं ॥ १८८ ॥

चौ०—सई तीर बसि चले बिहाने। शृंगबेरपुर सब निअराने ॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करइ सबिषादा ॥ १ ॥

रातभर सई नदीके तीरपर निवास करके सबेरे वहाँसे चल दिये और सब शृङ्गवेरपुरके समीप जा पहुँचे। निषादराजने सब समाचार सुने, तो वह दुखी होकर हृदयमें विचार करने लगा— ॥ १ ॥

कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं ॥
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई ॥ २ ॥

क्या कारण है जो भरत वनको जा रहे हैं, मनमें कुछ कपट-भाव अवश्य है। यदि मनमें कुटिलता न होती, तो साथमें सेना क्यों ले चले हैं ॥ २ ॥

जानहिं सानुज रामहि मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी ॥ ३ ॥

समझते हैं कि छोटे भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामको मारकर सुखसे निष्कण्टक राज्य करूँगा। भरतने हृदयमें राजनीतिको स्थान नहीं दिया (राजनीतिका विचार नहीं किया)। तब (पहले) तो कलंक ही लगा था, अब तो जीवनसे ही हाथ धोना पड़ेगा ॥ ३ ॥

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा ॥
का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण देवता और दैत्य वीर जुट जायँ तो भी श्रीरामजीको रणमें

जीतनेवाला कोई नहीं है। भरत जो ऐसा कर रहे हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? विषकी बेलें अमृतफल कभी नहीं फलतीं ! ॥ ४ ॥

दो०—अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु ॥ १८९ ॥

ऐसा विचारकर गुह (निषादराज) ने अपनी जातिवालोंसे कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। नावोंको हाथमें (कब्जेमें) कर लो और फिर उन्हें डुबा दो तथा सब घाटोंको रोक दो ॥ १८९ ॥

चौ०—होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥ १ ॥

सुसज्जित होकर घाटोंको रोक लो और सब लोग मरनेके साज सजा लो (अर्थात् भरतसे युद्धमें लड़कर मरनेके लिये तैयार हो जाओ)। मैं भरतसे सामने (मैदानमें) लोहा लूँगा (मुठभेड़ करूँगा) और जीते-जी उन्हें गङ्गापार न उतरने दूँगा ॥ १ ॥

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा ॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइअ मीचू ॥ २ ॥

युद्धमें मरण, फिर गङ्गाजीका तट, श्रीरामजीका काम और क्षणभङ्गुर शरीर (जो चाहे जब नाश हो जाय); भरत श्रीरामजीके भाई और राजा (उनके हाथसे मरना) और मैं नीच सेवक—बड़े भाग्यसे ऐसी मृत्यु मिलती है ॥ २ ॥

स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी ॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें ॥ ३ ॥

मैं स्वामीके कामके लिये रणमें लड़ाई करूँगा और चौदहों लोकोंको अपने यशसे उज्ज्वल कर दूँगा। श्रीरघुनाथजीके निमित्त प्राण त्याग दूँगा। मेरे तो दोनों ही हाथोंमें आनन्दके लड्डू हैं (अर्थात् जीत गया तो रामसेवकका यश प्राप्त करूँगा और मारा गया तो श्रीरामजीकी नित्य सेवा प्राप्त करूँगा) ॥ ३ ॥

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा ॥
जाएँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू ॥ ४ ॥

साधुओंके समाजमें जिसकी गिनती नहीं और श्रीरामजीके भक्तोंमें

जिसका स्थान नहीं, वह जगत्‌में पृथ्वीका भार होकर व्यर्थ ही जीता है। वह माताके यौवनरूपी वृक्षके काटनेके लिये कुल्हाड़ामात्र है ॥ ४ ॥

दो०-विगत विषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु ॥ १९० ॥

[इस प्रकार श्रीरामजीके लिये प्राणसमर्पणका निश्चय करके] निषादराज विषादसे रहित हो गया और सबका उत्साह बढ़ाकर तथा श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके उसने तुरंत ही तरकस, धनुष और कवच माँगा ॥ १९० ॥

चौ०-बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ॥
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहि एक बढ़ावइ करषा ॥ १ ॥

[उसने कहा—] हे भाइयो! जल्दी करो और सब सामान सजाओ। मेरी आज्ञा सुनकर कोई मनमें कायरता न लावे। सब हर्षके साथ बोल उठे—हे नाथ! बहुत अच्छा; और आपसमें एक दूसरेका जोश बढ़ाने लगे ॥१॥

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी ॥
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं ॥ २ ॥

निषादराजको जोहार कर-करके सब निषाद चले। सभी बड़े शूरवीर हैं और संग्राममें लड़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी जूतियोंका स्मरण करके उन्होंने भाथियाँ (छोटे-छोटे तरकस) बाँधकर धनुहियों (छोटे-छोटे धनुषों) पर प्रत्यञ्चा चढ़ायी ॥२॥

अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं ॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े ॥ ३ ॥

कवच पहनकर सिरपर लोहेका टोप रखते हैं और फरसे, भाले तथा बरछोंको सीधा कर रहे हैं (सुधार रहे हैं)। कोई तलवारके वार रोकनेमें अत्यन्त ही कुशल हैं। वे ऐसे उमंगमें भरे हैं मानो धरती छोड़कर आकाशमें कूद (उछल) रहे हों ॥ ३ ॥

निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने ॥ ४ ॥

अपना-अपना साज-समाज (लड़ाईका सामान और दल) बनाकर उन्होंने जाकर निषादराज गुहको जोहार की। निषादराजने सुन्दर योद्धाओंको देखकर, सबको सुयोग्य जाना और नाम ले-लेकर सबका सम्मान किया ॥ ४ ॥

दो०–भाइहु लावहु धोख जनि आजु काजु बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहि॥ १९१॥

[उसने कहा—] हे भाइयो! धोखा न लाना (अर्थात् मरनेसे न घबराना), आज मेरा बड़ा भारी काम है। यह सुनकर सब योद्धा बड़े जोशके साथ बोल उठे—हे वीर! अधीर मत हो॥ १९१॥

चौ०–राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं॥ १॥

हे नाथ! श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे और आपके बलसे हमलोग भरतकी सेनाको बिना वीर और बिना घोड़ेकी कर देंगे (एक-एक वीर और एक-एक घोड़ेको मार डालेंगे)। जीते-जी पीछे पाँव न रक्खेंगे। पृथ्वीको रुण्ड-मुण्डमयी कर देंगे। (सिरों और धड़ोंसे छा देंगे)॥ १॥

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥ २॥

निषादराजने वीरोंका बढ़िया दल देखकर कहा—जुझाऊ (लड़ाईका) ढोल बजाओ। इतना कहते ही बायीं ओर छींक हुई। शकुन विचारनेवालोंने कहा कि खेत सुन्दर है (जीत होगी)॥ २॥

बूढ़ु एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं॥ ३॥

एक बूढ़ेने शकुन विचारकर कहा—भरतसे मिल लीजिये, उनसे लड़ाई नहीं होगी। भरत श्रीरामचन्द्रजीको मनाने जा रहे हैं। शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है॥ ३॥

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें॥ ४॥

यह सुनकर निषादराज गुहने कहा—बूढ़ा ठीक कह रहा है। जल्दीमें (बिना विचारे) कोई काम करके मूर्खलोग पछताते हैं। भरतजीका शील-स्वभाव बिना समझे और बिना जाने युद्ध करनेमें हितकी बहुत बड़ी हानि है॥ ४॥

दो०–गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आइ॥ १९२॥

अतएव हे वीरो! तुमलोग इकट्ठे होकर सब घाटोंको रोक लो, मैं

जाकर भरतजीसे मिलकर उनका भेद लेता हूँ। उनका भाव मित्रका है या शत्रुका या उदासीनका, यह जानकर तब आकर वैसा (उसीके अनुसार) प्रबन्ध करूँगा ॥ १९२ ॥

चौ०–लखब सनेहु सुभायँ सुहाएँ। बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ ॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मागे ॥ १ ॥

उनके सुन्दर स्वभावसे मैं उनके स्नेहको पहचान लूँगा। वैर और प्रेम छिपानेसे नहीं छिपते। ऐसा कहकर वह भेंटका सामान सजाने लगा। उसने कंद, मूल, फल, पक्षी और हिरन मँगवाये ॥ १ ॥

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए ॥ २ ॥

कहार लोग पुरानी और मोटी पहिना नामक मछलियोंके भार भरकर लाये। भेंटका सामान सजाकर मिलनेके लिये चले तो मङ्गलदायक शुभ शकुन मिले ॥ २ ॥

देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू ॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥ ३ ॥

निषादराजने मुनिराज वसिष्ठजीको देखकर अपना नाम बतलाकर दूरहीसे दण्डवत् प्रणाम किया। मुनीश्वर वसिष्ठजीने उसको रामका प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और भरतजीको समझाकर कहा [कि यह श्रीरामजीका मित्र है] ॥ ३ ॥

राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा ॥
गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ॥ ४ ॥

यह श्रीरामका मित्र है, इतना सुनते ही भरतजीने रथ त्याग दिया। वे रथसे उतरकर प्रेममें उमँगते हुए चले। निषादराज गुहने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाकर पृथ्वीपर माथा टेककर जोहार की ॥ ४ ॥

दो०–करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ ॥ १९३ ॥

दण्डवत् करते देखकर भरतजीने उठाकर उसको छातीसे लगा लिया। हृदयमें प्रेम समाता नहीं है, मानो स्वयं लक्ष्मणजीसे भेंट हो गयी हो ॥ १९३ ॥

चौ०–भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ॥
धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला ॥ १ ॥

भरतजी गुहको अत्यन्त प्रेमसे गले लगा रहे हैं। प्रेमकी रीतिको सब लोग सिहा रहे हैं (ईर्ष्यापूर्वक प्रशंसा कर रहे हैं); मङ्गलकी मूल 'धन्य-धन्य' की ध्वनि करके देवता उसकी सराहना करते हुए फूल बरसा रहे हैं॥

लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥ २ ॥

[वे कहते हैं–] जो लोक और वेद दोनोंमें सब प्रकारसे नीचा माना जाता है, जिसकी छायाके छू जानेसे भी स्नान करना होता है, उसी निषादसे अँकवार भरकर (हृदयसे चिपटाकर) श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई भरतजी [आनन्द और प्रेमवश] शरीरमें पुलकावलीसे परिपूर्ण हो मिल रहे हैं ॥ २ ॥

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा॥ ३ ॥

जो लोग राम-राम कहकर जँभाई लेते हैं (अर्थात् आलस्यसे भी जिनके मुँहसे राम-नामका उच्चारण हो जाता है) पापोंके समूह (कोई भी पाप) उनके सामने नहीं आते। फिर इस गुहको तो स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने हृदयसे लगा लिया और कुलसमेत इसे जगत्पावन (जगत्‌को पवित्र करनेवाला) बना दिया ॥ ३ ॥

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥ ४ ॥

कर्मनाशा नदीका जल गङ्गाजीमें पड़ जाता है (मिल जाता है), तब कहिये, उसे कौन सिरपर धारण नहीं करता ? जगत् जानता है कि उलटा नाम (मरा-मरा) जपते-जपते वाल्मीकिजी ब्रह्मके समान हो गये ॥ ४ ॥

दो०–स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥१९४॥

मूर्ख और पामर चाण्डाल, शबर, खस, यवन, कोल और किरात भी राम-नाम कहते ही परम पवित्र और त्रिभुवनमें विख्यात हो जाते हैं॥१९४॥

चौ०–नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं॥ १ ॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, युग-युगान्तरसे यही रीति चली आ रही है। श्रीरघुनाथजीने किसको बड़ाई नहीं दी ? इस प्रकार देवता रामनामकी महिमा कह रहे हैं। उसे सुन-सुनकर अयोध्याके लोग सुख पा रहे हैं॥१॥

रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूँछी कुसल सुमंगल खेमा॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥ २॥

रामसखा निषादराजसे प्रेमके साथ मिलकर भरतजीने कुशल, मङ्गल और क्षेम पूछी। भरतजीका शील और प्रेम देखकर निषाद उस समय विदेह हो गया (प्रेममुग्ध होकर देहकी सुध भूल गया)॥ २॥

सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥ ३॥

उसके मनमें संकोच, प्रेम और आनन्द इतना बढ़ गया कि वह खड़ा-खड़ा टकटकी लगाये भरतजीको देखता रहा। फिर धीरज धरकर भरतजीके चरणोंकी वन्दना करके प्रेमके साथ हाथ जोड़कर विनती करने लगा—॥३॥

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें॥ ४॥

हे प्रभो! कुशलके मूल आपके चरणकमलोंके दर्शन कर मैंने तीनों कालोंमें अपना कुशल जान लिया। अब आपके परम अनुग्रहसे करोड़ों कुलों (पीढ़ियों) सहित मेरा मङ्गल (कल्याण) हो गया॥ ४॥

दो०—समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जियँ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधि बंचित सोइ॥१९५॥

मेरी करतूत और कुलको समझकर और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाको मनमें देख (विचार) कर (अर्थात् कहाँ तो मैं नीच जाति और नीच कर्म करनेवाला जीव, और कहाँ अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी! पर उन्होंने मुझ-जैसे नीचको भी अपनी अहैतुकी कृपावश अपना लिया—यह समझकर) जो रघुवीर श्रीरामजीके चरणोंका भजन नहीं करता, वह जगत्‌में विधाताके द्वारा ठगा गया है॥ १९५॥

चौ०—कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन भूषन तबही तें॥ १॥

मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति हूँ और लोक-वेद दोनोंसे सब प्रकारसे बाहर हूँ। पर जबसे श्रीरामचन्द्रजीने मुझे अपनाया है, तभीसे मैं विश्वका भूषण हो गया॥ १॥

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबानीं। सादर सकल जोहारीं रानीं॥ २॥

निषादराजकी प्रीतिको देखकर और सुन्दर विनय सुनकर फिर भरतजीके छोटे भाई शत्रुघ्नजी उससे मिले। फिर निषादने अपना नाम ले-लेकर सुन्दर (नम्र और मधुर) वाणीसे सब रानियोंको आदरपूर्वक जोहार की ॥ २ ॥

जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा॥
निरखि निषादु नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी॥ ३ ॥

रानियाँ उसे लक्ष्मणजीके समान समझकर आशीर्वाद देती हैं कि तुम सौ लाख वर्षोंतक सुखपूर्वक जिओ। नगरके स्त्री-पुरुष निषादको देखकर ऐसे सुखी हुए मानो लक्ष्मणजीको देख रहे हों ॥ ३ ॥

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई॥ ४ ॥

सब कहते हैं कि जीवनका लाभ तो इसीने पाया है, जिसे कल्याण-स्वरूप श्रीरामचन्द्रजीने भुजाओंमें बाँधकर गले लगाया है। निषाद अपने भाग्यकी बड़ाई सुनकर मनमें परम आनन्दित हो सबको अपने साथ लिवा ले चला ॥ ४ ॥

दो०—सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरुतर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

उसने अपने सब सेवकोंको इशारेसे कह दिया। वे स्वामीका रुख पाकर चले और उन्होंने घरोंमें, वृक्षोंके नीचे, तालाबोंपर तथा बगीचों और जंगलोंमें ठहरनेके लिये स्थान बना दिये ॥ १९६ ॥

चौ०—सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहँ सब अंग सिथिल तब॥
सोहत दिएँ निषादहि लागू। जनु तनु धरें बिनय अनुरागू॥ १ ॥

भरतजीने जब शृङ्गवेरपुरको देखा, तब उनके सब अङ्ग प्रेमके कारण शिथिल हो गये। वे निषादको लाग दिये (अर्थात् उसके कंधेपर हाथ रक्खे चलते हुए) ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो विनय और प्रेम शरीर धारण किये हुए हों ॥ १ ॥

एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा। दीखि जाइ जग पावनि गंगा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥ २ ॥

इस प्रकार भरतजीने सब सेनाको साथमें लिये हुए जगत्को पवित्र करनेवाली गङ्गाजीके दर्शन किये। श्रीरामघाटको [जहाँ श्रीरामजीने

स्नान-सन्ध्या की थी] प्रणाम किया। उनका मन इतना आनन्दमग्न हो गया मानो उन्हें स्वयं श्रीरामजी मिल गये हों ॥ २ ॥

करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु मागहिं कर जोरी। रामचंद्र पद प्रीति न थोरी॥ ३॥

नगरके नर-नारी प्रणाम कर रहे हैं और गङ्गाजीके ब्रह्मरूप जलको देख-देखकर आनन्दित हो रहे हैं। गङ्गाजीमें स्नानकर हाथ जोड़कर सब यही वर माँगते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें हमारा प्रेम कम न हो (अर्थात् बहुत अधिक हो) ॥ ३ ॥

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पानि बर मागउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥ ४॥

भरतजीने कहा—हे गंगे! आपकी रज सबको सुख देनेवाली तथा सेवकके लिये तो कामधेनु ही है। मैं हाथ जोड़कर यही वरदान माँगता हूँ कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ॥१९७॥

इस प्रकार भरतजी स्नानकर और गुरुजीकी आज्ञा पाकर तथा यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकी हैं, डेरा उठा ले चले ॥ १९७ ॥

चौ०—जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहिं गे दोउ भाई॥ १॥

लोगोंने जहाँ-तहाँ डेरा डाल दिया। भरतजीने सभीका पता लगाया [कि सब लोग आकर आरामसे टिक गये हैं या नहीं]। फिर देवपूजन करके आज्ञा पाकर दोनों भाई श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजीके पास गये ॥ १ ॥

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननीं सकल भरत सनमानी॥
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥ २॥

चरण दबाकर और कोमल वचन कह-कहकर भरतजीने सब माताओंका सत्कार किया। फिर भाई शत्रुघ्नको माताओंकी सेवा सौंपकर आपने निषादको बुला लिया ॥ २ ॥

चले सखा कर सों कर जोरें। सिथिल सरीरु सनेह न थोरें॥
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥ ३॥

सखा निषादराजके हाथ-से-हाथ मिलाये हुए भरतजी चले। प्रेम कुछ थोड़ा नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है) जिससे उनका शरीर शिथिल हो रहा है। भरतजी सखासे पूछते हैं कि मुझे वह स्थान दिखलाओ और नेत्र और मनकी जलन कुछ ठंडी करो—॥ ३ ॥

जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयउ निषादू॥ ४ ॥

जहाँ सीताजी, श्रीरामजी और लक्ष्मण रातको सोये थे। ऐसा कहते ही उनके नेत्रोंके कोयोंमें (प्रेमाश्रुओंका) जल भर आया। भरतजीके वचन सुनकर निषादको बड़ा विषाद हुआ। वह तुरंत ही उन्हें वहाँ ले गया—॥

दो०–जहँ सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेहँ सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु॥१९८॥

जहाँ पवित्र अशोकके वृक्षके नीचे श्रीरामजीने विश्राम किया था। भरतजीने वहाँ अत्यन्त प्रेमसे आदरपूर्वक दण्डवत् प्रणाम किया॥ १९८ ॥

चौ०–कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥ १ ॥

कुशोंकी सुन्दर साथरी देखकर उसकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्रजीके चरणचिह्नोंकी रज आँखोंमें लगायी। [उस समयके] प्रेमकी अधिकता कहते नहीं बनती॥ १ ॥

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदयँ गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी॥ २ ॥

भरतजीने दो-चार स्वर्णबिन्दु (सोनेके कण या तारे आदि जो सीताजीके गहने-कपड़ोंसे गिर पड़े थे) देखे तो उनको सीताजीके समान समझकर सिरपर रख लिया। उनके नेत्र [प्रेमाश्रुके] जलसे भरे हैं और हृदयमें ग्लानि भरी है। वे सखासे सुन्दर वाणीमें ये वचन बोले—॥ २ ॥

श्रीहत सीय बिरहँ दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोगु जोगु जग जेही॥ ३ ॥

ये स्वर्णके कण या तारे भी सीताजीके विरहसे ऐसे श्रीहत (शोभाहीन) एवं कान्तिहीन हो रहे हैं जैसे [राम-वियोगमें] अयोध्याके नर-नारी विलीन (शोकके कारण क्षीण) हो रहे हैं। जिन सीताजीके पिता राजा

जनक हैं, इस जगत्में भोग और योग दोनों ही जिनकी मुट्ठीमें हैं, उन जनकजीको मैं किसकी उपमा दूँ ? ॥ ३ ॥

ससुर भानुकुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जो बड़ होत सो राम बड़ाईं॥ ४॥

सूर्यकुलके सूर्य राजा दशरथजी जिनके ससुर हैं, जिनको अमरावतीके स्वामी इन्द्र भी सिहाते थे। (ईर्ष्यापूर्वक उनके-जैसा ऐश्वर्य और प्रताप पाना चाहते थे); और प्रभु श्रीरघुनाथजी जिनके प्राणनाथ हैं, जो इतने बड़े हैं कि जो कोई भी बड़ा होता है वह श्रीरामचन्द्रजीकी [दी हुई] बड़ाईसे ही होता है ॥ ४ ॥

दो०—पति देवता सुतीय मनि सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदउ न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेषि ॥१९९॥

उन श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियोंमें शिरोमणि सीताजीकी साथरी (कुशशय्या) देखकर मेरा हृदय हहराकर (दहलकर) फट नहीं जाता; हे शङ्कर ! यह वज्रसे भी अधिक कठोर है ! ॥ १९९ ॥

चौ०—लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे॥ १॥

मेरे छोटे भाई लक्ष्मण बहुत ही सुन्दर और प्यार करने योग्य हैं। ऐसे भाई न तो किसीके हुए, न हैं, न होनेके ही हैं। जो लक्ष्मण अवधके लोगोंको प्यारे, माता-पिताके दुलारे और श्रीसीतारामजीके प्राणप्यारे हैं; ॥१॥

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती॥ २॥

जिनकी कोमल मूर्ति और सुकुमार स्वभाव है, जिनके शरीरमें कभी गरम हवा भी नहीं लगी, वे वनमें सब प्रकारकी विपत्तियाँ सह रहे हैं। [हाय !] इस मेरी छातीने [कठोरतामें] करोड़ों वज्रोंका भी निरादर कर दिया [नहीं तो यह कभीकी फट गयी होती] ॥ २ ॥

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर॥
पुरजन परिजन गुर पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता॥ ३॥

श्रीरामचन्द्रजीने जन्म (अवतार) लेकर जगत्को प्रकाशित (परम सुशोभित) कर दिया। वे रूप, शील, सुख और समस्त गुणोंके समुद्र हैं।

पुरवासी, कुटुम्बी, गुरु, पिता-माता सभीको श्रीरामजीका स्वभाव सुख देनेवाला है ॥ ३ ॥

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ॥
सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा ॥ ४ ॥

शत्रु भी श्रीरामजीकी बड़ाई करते हैं। बोल-चाल, मिलनेके ढंग और विनयसे वे मनको हर लेते हैं। करोड़ों सरस्वती और अरबों शेषजी भी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके गुण-समूहोंकी गिनती नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

दो०—सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान ॥२००॥

जो सुख-स्वरूप रघुवंशशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी मङ्गल और आनन्दके भण्डार हैं, वे पृथ्वीपर कुश बिछाकर सोते हैं। विधाताकी गति बड़ी ही बलवान् है ॥ २०० ॥

चौ०–राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कानोंसे भी कभी दुःखका नाम नहीं सुना। महाराज स्वयं जीवन-वृक्षकी तरह उनकी सार-सँभाल किया करते थे। सब माताएँ भी रात-दिन उनकी ऐसी सार-सँभाल करती थीं जैसे पलक नेत्रोंकी और साँप अपनी मणिकी करते हैं ॥ १ ॥

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी ॥
धिग कैकई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला ॥ २ ॥

वही श्रीरामचन्द्रजी अब जंगलोंमें पैदल फिरते हैं और कन्द-मूल तथा फल-फूलोंका भोजन करते हैं। अमङ्गलकी मूल कैकेयीको धिक्कार है, जो अपने प्राण-प्रियतम पतिसे भी प्रतिकूल हो गयी ॥ २ ॥

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी।
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाताँ। साइँदोह मोहि कीन्ह कुमाताँ ॥ ३ ॥

मुझ पापोंके समुद्र और अभागेको धिक्कार है, धिक्कार है, जिसके कारण ये सब उत्पात हुए। विधाताने मुझे कुलका कलङ्क बनाकर पैदा किया और कुमाताने मुझे स्वामिद्रोही बना दिया ॥ ३ ॥

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू ॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि ॥ ४ ॥

यह सुनकर निषादराज प्रेमपूर्वक समझाने लगा—हे नाथ! आप व्यर्थ विषाद किसलिये करते हैं? श्रीरामचन्द्रजी आपको प्यारे हैं और आप श्रीरामचन्द्रजीको प्यारे हैं। यही निचोड़ (निश्चित सिद्धान्त) है, दोष तो प्रतिकूल विधाताको है॥ ४॥

छं०—बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी॥
तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौंहें किएँ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ॥

प्रतिकूल विधाताकी करनी बड़ी कठोर है, जिसने माता कैकेयीको बावली बना दिया (उसकी मति फेर दी)। उस रातको प्रभु श्रीरामचन्द्रजी बार-बार आदरपूर्वक आपकी बड़ी सराहना करते थे। तुलसीदासजी कहते हैं—[निषादराज कहता है कि—] श्रीरामचन्द्रजीको आपके समान अतिशय प्रिय और कोई नहीं है, मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ। परिणाममें मङ्गल होगा, यह जानकर आप अपने हृदयमें धैर्य धारण कीजिये।

सो०—अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ बिश्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन॥२०१॥

श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्यामी तथा संकोच, प्रेम और कृपाके धाम हैं, यह विचारकर और मनमें दृढ़ता लाकर चलिये और विश्राम कीजिये॥२०१॥

चौ०—सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा॥
यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी॥ १॥

सखाके वचन सुनकर, हृदयमें धीरज धरकर श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करते हुए भरतजी डेरेको चले। नगरके सारे स्त्री-पुरुष यह (श्रीरामजीके ठहरनेके स्थानका) समाचार पाकर बड़े आतुर होकर उस स्थानको देखने चले॥ १॥

परदखिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं॥ २॥

वे उस स्थानकी परिक्रमा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयीको बहुत दोष देते हैं। नेत्रोंमें जल भर-भर लेते हैं और प्रतिकूल विधाताको दूषण देते हैं॥ २॥

एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि॥ ३॥

कोई भरतजीके स्नेहकी सराहना करते हैं और कोई कहते हैं कि राजाने अपना प्रेम खूब निबाहा। सब अपनी निन्दा करके निषादकी प्रशंसा करते हैं। उस समयके विमोह और विषादको कौन कह सकता है? ॥ ३ ॥

एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा॥
गुरहि सुनावँ चढ़ाइ सुहाईं। नईं नाव सब मातु चढ़ाईं॥ ४॥

इस प्रकार रातभर सब लोग जागते रहे। सवेरा होते ही खेवा लगा। सुन्दर नावपर गुरुजीको चढ़ाकर फिर नयी नावपर सब माताओंको चढ़ाया॥ ४॥

दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा॥ ५॥

चार घड़ीमें सब गङ्गाजीके पार उतर गये। तब भरतजीने उतरकर सबको सँभाला॥ ५॥

दो०—प्रातक्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ।
आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ॥२०२॥

प्रातःकालकी क्रियाओंको करके माताके चरणकी वन्दना कर और गुरुजीको सिर नवाकर भरतजीने निषादगणोंको [रास्ता दिखलानेके लिये] आगे कर लिया और सेना चला दी॥ २०२॥

चौ०—कियउ निषादनाथु अगुआईं। मातु पालकीं सकल चलाईं॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा॥ १॥

निषादराजको आगे करके पीछे सब माताओंकी पालकियाँ चलायीं। छोटे भाई शत्रुघ्नजीको बुलाकर उनके साथ कर दिया। फिर ब्राह्मणोंसहित गुरुजीने गमन किया॥ १॥

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू॥
गवने भरत पयादेहिं पाए। कोतल संग जाहिं डोरिआए॥ २॥

तदनन्तर आप (भरतजी) ने गङ्गाजीको प्रणाम किया और लक्ष्मण-सहित श्रीसीतारामजीका स्मरण किया। भरतजी पैदल ही चले। उनके साथ कोतल (बिना सवारके) घोड़े बागडोरसे बँधे हुए चले जा रहे हैं॥ २॥

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥ ३॥

उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं कि हे नाथ! आप घोड़ेपर सवार हो लीजिये। [भरतजी जवाब देते हैं कि] श्रीरामचन्द्रजी तो पैदल ही गये और हमारे लिये रथ, हाथी और घोड़े बनाये गये हैं॥ ३॥

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब तें सेवक धरमु कठोरा ॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी । सब सेवक गन गरहिं गलानी ॥ ४ ॥

मुझे उचित तो ऐसा है कि मैं सिरके बल चलकर जाऊँ । सेवकका धर्म सबसे कठिन होता है । भरतजीकी दशा देखकर और कोमल वाणी सुनकर सब सेवकगण ग्लानिके मारे गले जा रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग ।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ॥ २०३ ॥

प्रेममें उमँग-उमँगकर सीताराम-सीताराम कहते हुए भरतजीने तीसरे पहर प्रयागमें प्रवेश किया ॥ २०३ ॥

चौ०—झलका झलकत पायन्ह कैसें । पंकज कोस ओस कन जैसें ॥
भरत पयादेहिं आए आजू । भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥ १ ॥

उनके चरणोंमें छाले कैसे चमकते हैं, जैसे कमलकी कलीपर ओसकी बूँदें चमकती हों । भरतजी आज पैदल ही चलकर आये हैं, यह समाचार सुनकर सारा समाज दुखी हो गया ॥ १ ॥

खबरि लीन्ह सब लोग नहाए । कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए ॥
सबिधि सितासित नीर नहाने । दिए दान महिसुर सनमाने ॥ २ ॥

जब भरतजीने यह पता पा लिया कि सब लोग स्नान कर चुके, तब त्रिवेणीपर आकर उन्हें प्रणाम किया । फिर विधिपूर्वक [गङ्गा-यमुनाके] श्वेत और श्याम जलमें स्नान किया और दान देकर ब्राह्मणोंका सम्मान किया ॥ २ ॥

देखत स्यामल धवल हलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल काम प्रद तीरथराऊ । बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥ ३ ॥

श्याम और सफेद (यमुनाजी और गङ्गाजीकी) लहरोंको देखकर भरतजीका शरीर पुलकित हो उठा और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—हे तीर्थराज ! आप समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं । आपका प्रभाव वेदोंमें प्रसिद्ध और संसारमें प्रकट है ॥ ३ ॥

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ॥
अस जियँ जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग जाचक बानी ॥ ४ ॥

मैं अपना धर्म (न माँगनेका क्षत्रियधर्म) त्यागकर आपसे भीख माँगता हूँ । आर्त्त मनुष्य कौन-सा कुकर्म नहीं करता ? ऐसा हृदयमें जानकर

सुजान उत्तम दानी जगत्में माँगनेवालेकी वाणीको सफल किया करते हैं (अर्थात् वह जो माँगता है सो दे देते हैं) ॥ ४ ॥

दो०–अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ॥२०४॥

मुझे न अर्थकी रुचि (इच्छा) है, न धर्मकी, न कामकी और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ । जन्म-जन्ममें मेरा श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम हो, बस, यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं ॥ २०४ ॥

चौ०–जानहुँ रामु कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ॥
सीता राम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥ १ ॥

स्वयं श्रीरामचन्द्रजी भी भले ही मुझे कुटिल समझें और लोग मुझे गुरुद्रोही तथा स्वामिद्रोही भले ही कहें; पर श्रीसीतारामजीके चरणोंमें मेरा प्रेम आपकी कृपासे दिन-दिन बढ़ता ही रहे ॥ १ ॥

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पबि पाहन डारउ ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई ॥ २ ॥

मेघ चाहे जन्मभर चातककी सुधि भुला दे और जल माँगनेपर वह चाहे वज्र और पत्थर (ओले) ही गिरावे । पर चातककी रटन घटनेसे तो उसकी बात ही घट जायगी (प्रतिष्ठा ही नष्ट हो जायगी) । उसकी तो प्रेम बढ़नेमें ही सब तरहसे भलाई है ॥ २ ॥

कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ॥
भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी । भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ॥ ३ ॥

जैसे तपानेसे सोनेपर आब (चमक) आ जाती है, वैसे ही प्रियतमके चरणोंमें प्रेमका नियम निबाहनेसे प्रेमी सेवकका गौरव बढ़ जाता है । भरतजीके वचन सुनकर बीच त्रिवेणीमेंसे सुन्दर मङ्गल देनेवाली कोमल वाणी हुई ॥ ३ ॥

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम चरन अनुराग अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माहीं । तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं ॥ ४ ॥

हे तात भरत ! तुम सब प्रकारसे साधु हो । श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें तुम्हारा अथाह प्रेम है । तुम व्यर्थ ही मनमें ग्लानि कर रहे हो । श्रीरामचन्द्रको तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है ॥ ४ ॥

दो०–तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल ॥२०५॥

त्रिवेणीजीके अनुकूल वचन सुनकर भरतजीका शरीर पुलकित हो गया, हृदयमें हर्ष छा गया। भरतजी धन्य हैं, धन्य हैं, कहकर देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे ॥ २०५ ॥

चौ०–प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी ॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ॥ १ ॥

तीर्थराज प्रयागमें रहनेवाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासीन (संन्यासी) सब बहुत ही आनन्दित हैं और दस-पाँच मिलकर आपसमें कहते हैं कि भरतजीका प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है ॥ १ ॥

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए ॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर गुण-समूहोंको सुनते हुए वे मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजीके पास आये। मुनिने भरतजीको दण्डवत्-प्रणाम करते देखा और उन्हें अपना मूर्तिमान् सौभाग्य समझा ॥ २ ॥

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे ॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे ॥ ३ ॥

उन्होंने दौड़कर भरतजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया। मुनिने उन्हें आसन दिया। वे सिर नवाकर इस तरह बैठे मानो भागकर संकोचके घरमें घुस जाना चाहते हैं ॥ ३ ॥

मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू ॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई ॥ ४ ॥

उनके मनमें यह बड़ा सोच है कि मुनि कुछ पूछेंगे [तो मैं क्या उत्तर दूँगा]। भरतजीके शील और संकोचको देखकर ऋषि बोले—भरत! सुनो, हम सब खबर पा चुके हैं। विधाताके कर्तव्यपर कुछ वश नहीं चलता ॥४॥

दो०–तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति ॥२०६॥

माताकी करतूतको समझकर (याद करके) तुम हृदयमें ग्लानि मत करो। हे तात! कैकेयीका कोई दोष नहीं है, उसकी बुद्धि तो सरस्वती बिगाड़ गयी थी ॥ २०६ ॥

चौ०—यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध संमत दोऊ॥
तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई॥ १॥

यह कहते भी कोई भला न कहेगा, क्योंकि लोक और वेद दोनों ही विद्वानोंको मान्य हैं। किन्तु हे तात! तुम्हारा निर्मल यश गाकर तो लोक और वेद दोनों बड़ाई पावेंगे॥ १॥

लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥
राउ सत्यब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई॥ २॥

यह लोक और वेद दोनोंको मान्य है और सब यही कहते हैं कि पिता जिसको राज्य दे वही पाता है। राजा सत्यव्रती थे; तुमको बुलाकर राज्य देते, तो सुख मिलता, धर्म रहता और बड़ाई होती॥ २॥

राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहुँ पछितानी॥ ३॥

सारे अनर्थकी जड़ तो श्रीरामचन्द्रजीका वन-गमन है, जिसे सुनकर समस्त संसारको पीड़ा हुई। वह श्रीरामका वन-गमन भी भावीवश हुआ। बेसमझ रानी तो भावीवश कुचाल करके अन्तमें पछतायी॥ ३॥

तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान असाधू॥
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू॥ ४॥

उसमें भी तुम्हारा कोई तनिक-सा भी अपराध कहे, तो वह अधम, अज्ञानी और असाधु है। यदि तुम राज्य करते तो भी तुम्हें दोष न होता। सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको भी संतोष ही होता॥ ४॥

दो०—अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु॥२०७॥

हे भरत! अब तो तुमने बहुत ही अच्छा किया; यही मत तुम्हारे लिये उचित था। श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम होना ही संसारमें समस्त सुन्दर मङ्गलोंका मूल है॥ २०७॥

चौ०—सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता॥ १॥

सो वह (श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका प्रेम) तो तुम्हारा धन, जीवन और प्राण ही है; तुम्हारे समान बड़भागी कौन है? हे तात! तुम्हारे लिये

यह आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि तुम दशरथजीके पुत्र और श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे भाई हो ॥ १ ॥

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥ २॥

हे भरत! सुनो, श्रीरामचन्द्रके मनमें तुम्हारे समान प्रेमपात्र दूसरा कोई नहीं है। लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजी तीनोंकी सारी रात उस दिन अत्यन्त प्रेमके साथ तुम्हारी सराहना करते ही बीती ॥ २ ॥

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें॥ ३॥

प्रयागराजमें जब वे स्नान कर रहे थे, उस समय मैंने उनका यह मर्म जाना। वे तुम्हारे प्रेममें मग्न हो रहे थे। तुमपर श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा ही (अगाध) स्नेह है जैसा मूर्ख (विषयासक्त) मनुष्यका संसारमें सुखमय जीवनपर होता है ॥ ३ ॥

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥ ४॥

यह श्रीरघुनाथजीकी बहुत बड़ाई नहीं है; क्योंकि श्रीरघुनाथजी तो शरणागतके कुटुम्बभरको पालनेवाले हैं। हे भरत! मेरा यह मत है कि तुम तो मानो शरीरधारी श्रीरामजीके प्रेम ही हो ॥ ४ ॥

दो०—तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु॥ २०८॥

हे भरत! तुम्हारे लिये (तुम्हारी समझमें) यह कलङ्क है, पर हम सबके लिये तो उपदेश है। श्रीरामभक्तिरूपी रसकी सिद्धिके लिये यह समय गणेश (बड़ा शुभ) हुआ है ॥ २०८ ॥

चौ०—नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥
उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥ १॥

हे तात! तुम्हारा यश निर्मल नवीन चन्द्रमा है और श्रीरामचन्द्रजीके दास कुमुद और चकोर हैं [वह चन्द्रमा तो प्रतिदिन अस्त होता और घटता है, जिससे कुमुद और चकोरको दुःख होता है]; परन्तु यह तुम्हारा यशरूपी चन्द्रमा सदा उदय रहेगा; कभी अस्त होगा ही नहीं। जगत्‌रूपी आकाशमें यह घटेगा नहीं, वरं दिन-दिन दूना होगा ॥ १ ॥

कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू ॥ २ ॥

त्रैलोक्यरूपी चकवा इस यशरूपी चन्द्रमापर अत्यन्त प्रेम करेगा और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका प्रतापरूपी सूर्य इसकी छविको हरण नहीं करेगा। यह चन्द्रमा रात-दिन सदा सब किसीको सुख देनेवाला होगा, कैकेयीका कुकर्मरूपी राहु इसे ग्रास नहीं करेगा ॥ २ ॥

पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा ॥
राम भगत अब अमिअँ अघाहूँ। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ ॥ ३ ॥

यह चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर प्रेमरूपी अमृतसे पूर्ण है। यह गुरुके अपमानरूपी दोषसे दूषित नहीं है। तुमने इस यशरूपी चन्द्रमाकी सृष्टि करके पृथ्वीपर भी अमृतको सुलभ कर दिया। अब श्रीरामजीके भक्त इस अमृतसे तृप्त हो लें ॥ ३ ॥

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी ॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं ॥ ४ ॥

राजा भगीरथ गङ्गाजीको लाये, जिन (गङ्गाजी) का स्मरण ही सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलोंकी खान है। दशरथजीके गुणसमूहोंका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता; अधिक क्या, जिनकी बराबरीका जगत्‌में कोई नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ ॥ २०९ ॥

जिनके प्रेम और संकोच (शील) के वशमें होकर स्वयं [सच्चिदानन्दघन] भगवान् श्रीराम आकर प्रकट हुए, जिन्हें श्रीमहादेवजी अपने हृदयके नेत्रोंसे कभी अघाकर नहीं देख पाये (अर्थात् जिनका स्वरूप हृदयमें देखते-देखते शिवजी कभी तृप्त नहीं हुए) ॥ २०९ ॥

चौ०—कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम पेम मृगरूपा ॥
तात गलानि करहु जियँ जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ ॥ १ ॥

[परंतु उनसे भी बढ़कर] तुमने कीर्तिरूपी अनुपम चन्द्रमाको उत्पन्न किया, जिसमें श्रीरामप्रेम ही हिरनके [चिह्नके] रूपमें बसता है। हे तात ! तुम व्यर्थ ही हृदयमें ग्लानि कर रहे हो। पारस पाकर भी तुम दरिद्रतासे डर रहे हो ! ॥ १ ॥

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥ २॥

हे भरत! सुनो, हम झूठ नहीं कहते। हम उदासीन हैं (किसीका पक्ष नहीं करते), तपस्वी हैं (किसीकी मुँह-देखी नहीं कहते) और वनमें रहते हैं (किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं रखते)। सब साधनोंका उत्तम फल हमें लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजीका दर्शन प्राप्त हुआ॥ २॥

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ॥ ३॥

[सीता-लक्ष्मणसहित श्रीरामदर्शनरूप] उस महान् फलका परम फल यह तुम्हारा दर्शन है। प्रयागराजसमेत हमारा बड़ा भाग्य है। हे भरत! तुम धन्य हो, तुमने अपने यशसे जगत्को जीत लिया है। ऐसा कहकर मुनि प्रेममें मग्न हो गये॥ ३॥

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन पयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥ ४॥

भरद्वाज मुनिके वचन सुनकर सभासद् हर्षित हो गये। साधु-साधु कहकर सराहना करते हुए देवताओंने फूल बरसाये। आकाशमें और प्रयागराजमें धन्य, धन्यकी ध्वनि सुन-सुनकर भरतजी प्रेममें मग्न हो रहे हैं॥ ४॥

दो०—पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गदगद बैन॥ २१०॥

भरतजीका शरीर पुलकित है, हृदयमें श्रीसीतारामजी हैं और कमलके समान नेत्र [प्रेमाश्रुके] जलसे भरे हैं। वे मुनियोंकी मण्डलीको प्रणाम करके गद्गद वचन बोले—॥ २१०॥

चौ०—मुनि समाजु अरु तीरथराजू। साँचिहुँ सपथ अघाइ अकाजू॥
एहिं थल जौं किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥ १॥

मुनियोंका समाज है और फिर तीर्थराज है। यहाँ सच्ची सौगंध खानेसे भी भरपूर हानि होती है। इस स्थानमें यदि कुछ बनाकर कहा जाय तो इसके समान कोई बड़ा पाप और नीचता न होगी॥ १॥

तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू॥ २॥

मैं सच्चे भावसे कहता हूँ । आप सर्वज्ञ हैं, और श्रीरघुनाथजी हृदयके भीतरकी जाननेवाले हैं (मैं कुछ भी असत्य कहूँगा तो आपसे और उनसे छिपा नहीं रह सकता) । मुझे माता कैकेयीकी करनीका कुछ भी सोच नहीं है और न मेरे मनमें इसी बातका दुःख है कि जगत् मुझे नीच समझेगा ॥ २ ॥

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू । पितहु मरन कर मोहि न सोकू ॥

सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए । लछिमन राम सरिस सुत पाए ॥ ३ ॥

न यही डर है कि मेरा परलोक बिगड़ जायगा और न पिताजीके मरनेका ही मुझे शोक है । क्योंकि उनका सुन्दर पुण्य और सुयश विश्वभरमें सुशोभित है । उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मण-सरीखे पुत्र पाये ॥ ३ ॥

राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू । भूप सोच कर कवन प्रसंगू ॥

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं ॥ ४ ॥

फिर जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें अपने क्षणभङ्गुर शरीरको त्याग दिया, ऐसे राजाके लिये सोच करनेका कौन प्रसङ्ग है ? [सोच इसी बातका है कि] श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी पैरोंमें बिना जूतीके मुनियोंका वेष बनाये वन-वनमें फिरते हैं ॥ ४ ॥

दो०—अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात ।

बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात ॥ २११ ॥

वे वल्कल वस्त्र पहनते हैं, फलोंका भोजन करते हैं, पृथ्वीपर कुश और पत्ते बिछाकर सोते हैं और वृक्षोंके नीचे निवास करके नित्य सर्दी-गर्मी, वर्षा और हवा सहते हैं ॥ २११ ॥

चौ०—एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती । भूख न बासर नीद न राती ॥

एहि कुरोग कर औषधु नाहीं । सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं ॥ १ ॥

इसी दुःखकी जलनसे निरन्तर मेरी छाती जलती रहती है । मुझे न दिनमें भूख लगती है, न रातको नींद आती है । मैंने मन-ही-मन समस्त विश्वको खोज डाला, पर इस कुरोगकी औषध कहीं नहीं है ॥ १ ॥

मातु कुमत बढ़ई अघ मूला । तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला ॥

कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू । गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥ २ ॥

माताका कुमत (बुरा विचार) पापोंका मूल बढ़ई है । उसने हमारे हितका बसूला बनाया । उससे कलहरूपी कुकाठका कुयन्त्र बनाया और

चौदह वर्षकी अवधिरूपी कठिन कुमन्त्र पढ़कर उस यन्त्रको गाड़ दिया। [यहाँ माताका कुविचार बढ़ई है, भरतको राज्य बसूला है, रामका वनवास कुयन्त्र है और चौदह वर्षकी अवधि कुमन्त्र है] ॥ २ ॥

मोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा। घालेसि सब जगु बारहबाटा ॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसइ अवध नहिं आन उपाएँ ॥ ३ ॥

मेरे लिये उसने यह सारा कुठाट (बुरा साज) रचा और सारे जगत्‌को बारह बाट (छिन्न-भिन्न) करके नष्ट कर डाला। यह कुयोग श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेपर ही मिट सकता है और तभी अयोध्या बस सकती है, दूसरे किसी उपायसे नहीं ॥ ३ ॥

भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई। सबहिं कीन्हि बहु भाँति बड़ाई ॥
तात करहु जनि सोचु बिसेषी। सब दुखु मिटिहि राम पग देखी ॥ ४ ॥

भरतजीके वचन सुनकर मुनिने सुख पाया और सभीने उनकी बहुत प्रकारसे बड़ाई की। [मुनिने कहा—] हे तात! अधिक सोच मत करो। श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका दर्शन करते ही सारा दुःख मिट जायगा ॥ ४ ॥

दो०—करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि पेमप्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥ २१२ ॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजीने उनका समाधान करके कहा—अब आपलोग हमारे प्रेमप्रिय अतिथि बनिये और कृपा करके कन्द-मूल, फल-फूल जो कुछ हम दें, स्वीकार कीजिये ॥ २१२ ॥

चौ०—सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुर गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी ॥ १ ॥

मुनिके वचन सुनकर भरतके हृदयमें सोच हुआ कि यह बेमौके बड़ा बेढब संकोच आ पड़ा। फिर गुरुजनोंकी वाणीको महत्त्वपूर्ण (आदरणीय) समझकर, चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर बोले—॥ १ ॥

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यहु नाथ हमारा ॥
भरत बचन मुनिबर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए ॥ २ ॥

हे नाथ! आपकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर उसका पालन करना, यह हमारा परम धर्म है। भरतजीके ये वचन मुनिश्रेष्ठके मनको अच्छे लगे। उन्होंने विश्वासपात्र सेवकों और शिष्योंको पास बुलाया ॥ २ ॥

चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए ॥ ३ ॥

[और कहा कि] भरतकी पहुनई करनी चाहिये। जाकर कन्द, मूल और फल लाओ। उन्होंने 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर सिर नवाया और तब वे बड़े आनन्दित होकर अपने-अपने कामको चल दिये॥ ३॥

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। आयसु होइ सो करहिं गोसाई॥४॥

मुनिको चिन्ता हुई कि हमने बहुत बड़े मेहमानको न्योता है। अब जैसा देवता हो, वैसी ही उसकी पूजा भी होनी चाहिये। यह सुनकर ऋद्धियाँ और अणिमादि सिद्धियाँ आ गयीं [और बोलीं] हे गोसाईं! जो आपकी आज्ञा हो सो हम करें॥ ४॥

दो०—राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज॥२१३॥

मुनिराजने प्रसन्न होकर कहा—छोटे भाई शत्रुघ्न और समाजसहित भरतजी श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें व्याकुल हैं, उनकी पहुनाई (आतिथ्य-सत्कार) करके इनके श्रमको दूर करो॥ २१३॥

चौ०—रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥१॥

ऋद्धि-सिद्धिने मुनिराजकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर अपनेको बड़भागिनी समझा। सब सिद्धियाँ आपसमें कहने लगीं—श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई भरत ऐसे अतिथि हैं जिनकी तुलनामें कोई नहीं आ सकता॥ १॥

मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥ २॥

अतः मुनिके चरणोंकी वन्दना करके आज वही करना चाहिये जिससे सारा राजसमाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन्होंने बहुत-से सुन्दर घर बनाये, जिन्हें देखकर विमान भी विलखते हैं (लजा जाते हैं)॥ २॥

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे॥
दासीं दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें॥ ३॥

उन घरोंमें बहुत-से भोग (इन्द्रियोंके विषय) और ऐश्वर्य (ठाट-बाट) का सामान भरकर रख दिया, जिन्हें देखकर देवता भी ललचा गये। दासी-

दास सब प्रकारकी सामग्री लिये हुए मन लगाकर उनके मनोंको देखते रहते हैं (अर्थात् उनके मनकी रुचिके अनुसार करते रहते हैं) ॥ ३ ॥

सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं॥
प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही॥ ४ ॥

जो सुखके सामान स्वर्गमें भी स्वप्नमें भी नहीं हैं, ऐसे सब सामान सिद्धियोंने पलभरमें सज दिये। पहले तो उन्होंने सब किसीको, जिसकी जैसी रुचि थी वैसे ही सुन्दर सुखदायक निवासस्थान दिये ॥ ४ ॥

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह ॥२१४॥

और फिर कुटुम्बसहित भरतजीको दिये, क्योंकि ऋषि भरद्वाजजीने ऐसी ही आज्ञा दे रक्खी थी। [भरतजी चाहते थे कि उनके सब संगियों-को आराम मिले, इसलिये उनके मनकी बात जानकर मुनिने पहले उन लोगोंको स्थान देकर पीछे सपरिवार भरतजीको स्थान देनेके लिये आज्ञा दी थी।] मुनिश्रेष्ठने तपोबलसे ब्रह्माको भी चकित कर देनेवाला वैभव रच दिया ॥ २१४ ॥

चौ०—मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी॥ १ ॥

जब भरतजीने मुनिके प्रभावको देखा, तो उसके सामने उन्हें [इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि] सभी लोकपालोंके लोक तुच्छ जान पड़े। सुखकी सामग्रीका वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर ज्ञानीलोग भी वैराग्य भूल जाते हैं ॥ १ ॥

आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना॥ २ ॥

आसन, सेज, सुन्दर वस्त्र, चँदोवे, वन, बगीचे, भाँति-भाँतिके पक्षी और पशु, सुगन्धित फूल और अमृतके समान स्वादिष्ट फल, अनेकों प्रकारके (तालाब, कुएँ, बावली आदि) निर्मल जलाशय, ॥ २ ॥

असन पान सुचि अमिअ अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही कें। लखि अभिलाषु सुरेस सची कें॥ ३ ॥

तथा अमृतके भी अमृत-सरीखे पवित्र खान-पानके पदार्थ थे, जिन्हें देखकर सब लोग संयमी पुरुषों (विरक्त मुनियों) की भाँति सकुचा रहे

हैं। सभीके डेरोंमें [मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले] कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणीको भी अभिलाषा होती है (उनका भी मन ललचा जाता है) ॥ ३ ॥

रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा॥ ४॥

वसन्त ऋतु है। शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन प्रकारकी हवा बह रही है। सभीको [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष] चारों पदार्थ सुलभ हैं। माला, चन्दन, स्त्री आदिक भोगोंको देखकर सब लोग हर्ष और विषादके वश हो रहे हैं। [हर्ष तो भोग-सामग्रियोंको और मुनिके तपःप्रभावको देखकर होता है और विषाद इस बातसे होता है कि श्रीरामके वियोगमें नियम-व्रतसे रहनेवाले हमलोग भोग-विलासमें क्यों आ फँसे; कहीं इनमें आसक्त होकर हमारा मन नियम-व्रतोंको न त्याग दे ॥ ४ ॥

दो०—संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥२१५॥

सम्पत्ति (भोग-विलासकी सामग्री) चकवी है और भरतजी चकवा हैं, और मुनिकी आज्ञा खेल है, जिसने उस रातको आश्रमरूपी पिंजड़ेमें दोनोंको बंद कर रक्खा और ऐसे ही सबेरा हो गया। [जैसे किसी बहेलियेके द्वारा एक पिंजड़ेमें रक्खे जानेपर भी चकवी-चकवेका रातको संयोग नहीं होता; वैसे ही भरद्वाजजीकी आज्ञासे रातभर भोग-सामग्रियोंके साथ रहनेपर भी भरतजीने मनसे भी उनका स्पर्शतक नहीं किया।] ॥२१५॥

मासपारायण, उन्नीसवाँ विश्राम

चौ०—कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा। नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी॥ १॥

[प्रातःकाल] भरतजीने तीर्थराजमें स्नान किया और समाजसहित मुनिको सिर नवाकर और ऋषिकी आज्ञा तथा आशीर्वादको सिर चढ़ाकर दण्डवत् करके बहुत विनती की ॥ १ ॥

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें॥
रामसखा कर दीन्हें लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू॥ २॥

तदनन्तर रास्तेकी पहचान रखनेवाले लोगों (कुशल पथप्रदर्शकों) के साथ सब लोगोंको लिये हुए भरतजी चित्रकूटमें चित्त लगाये चले। भरतजी

रामसखा गुहके हाथ-में-हाथ दिये हुए ऐसे जा रहे हैं, मानो साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किये हुए हो ॥ २ ॥

नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी॥ ३॥

न तो उनके पैरोंमें जूते हैं और न सिरपर छाया है। उनका प्रेम, नियम, व्रत और धर्म निष्कपट (सच्चा) है। वे सखा निषादराजसे लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके रास्तेकी बातें पूछते हैं और वह कोमल वाणीसे कहता है ॥ ३ ॥

राम बास थल बिटप बिलोकें। उर अनुराग रहत नहिं रोकें॥
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीके ठहरनेकी जगहों और वृक्षोंको देखकर उनके हृदयमें प्रेम रोके नहीं रुकता। भरतजीकी यह दशा देखकर देवता फूल बरसाने लगे। पृथ्वी कोमल हो गयी और मार्ग मङ्गलका मूल बन गया ॥ ४ ॥

दो०—किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥२१६॥

बादल छाया किये जा रहे हैं, सुख देनेवाली सुन्दर हवा बह रही है। भरतजीके जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा श्रीरामचन्द्रजीको भी नहीं हुआ था ॥ २१६ ॥

चौ०—जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू॥ १॥

रास्तेमें असंख्य जड़-चेतन जीव थे। उनमेंसे जिनको प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने देखा, अथवा जिन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको देखा वे सब [उसी समय] परमपदके अधिकारी हो गये। परन्तु अब भरतजीके दर्शनने तो उनका भव (जन्म-मरण) रूपी रोग मिटा ही दिया। [श्रीरामदर्शनसे तो वे परमपदके अधिकारी ही हुए थे, परन्तु भरतदर्शनसे उन्हें वह परमपद प्राप्त हो गया] ॥ १ ॥

यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं॥
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥ २॥

भरतजीके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिन्हें श्रीरामजी स्वयं अपने मनमें स्मरण करते रहते हैं। जगत्‌में जो भी मनुष्य एक बार 'राम' कह लेते हैं, वे भी तरने-तारनेवाले हो जाते हैं ॥ २ ॥

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता॥
सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हियँ लहहीं॥३॥

फिर भरतजी तो श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे तथा उनके छोटे भाई ठहरे। तब भला उनके लिये मार्ग मङ्गल (सुख) दायक कैसे न हो ? सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि ऐसा कह रहे हैं और भरतजीको देखकर हृदयमें हर्ष लाभ करते हैं ॥ ३ ॥

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू॥
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेट न होई॥ ४ ॥

भरतजीके [इस प्रेमके] प्रभावको देखकर देवराज इन्द्रको सोच हो गया [कि कहीं इनके प्रेमवश श्रीरामजी लौट न जायँ और हमारा बना-बनाया काम बिगड़ जाय] संसार भलेके लिये भला और बुरेके लिये बुरा है (मनुष्य जैसा आप होता है, जगत् उसे वैसा ही दीखता है]। उसने गुरु बृहस्पतिजीसे कहा—हे प्रभो ! वही उपाय कीजिये जिससे श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीकी भेंट ही न हो ॥ ४ ॥

दो०—**रामु सँकोची प्रेम बस भरत सपेम पयोधि।**
बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि ॥२१७॥

श्रीरामचन्द्रजी संकोची और प्रेमके वश हैं और भरतजी प्रेमके समुद्र हैं। बनी-बनायी बात बिगड़ना चाहती है। इसलिये कुछ छल ढूँढ़कर इसका उपाय कीजिये ॥ २१७ ॥

चौ०—बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन बिनु लोचन जाने॥
मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥ १ ॥

इन्द्रके वचन सुनते ही देवगुरु बृहस्पतिजी मुसकराये। उन्होंने हजार नेत्रोंवाले इन्द्रको [ज्ञानरूपी] नेत्रोंसे रहित (मूर्ख) समझा और कहा—हे देवराज ! मायाके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके सेवकके साथ कोई माया करता है तो वह उलटकर अपने ही ऊपर आ पड़ती है ॥ १ ॥

तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी॥
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥ २ ॥

उस समय (पिछली बार) तो श्रीरामचन्द्रजीका रुख जानकर कुछ किया था। परन्तु इस समय कुचाल करनेसे हानि ही होगी। हे देवराज ! श्रीरघुनाथजीका स्वभाव सुनो, वे अपने प्रति किये हुए अपराधसे कभी रुष्ट नहीं होते ॥ २ ॥

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥ ३॥

पर जो कोई उनके भक्तका अपराध करता है, वह श्रीरामकी क्रोधाग्निमें जल जाता है। लोक और वेद दोनोंमें इतिहास (कथा) प्रसिद्ध है। इस महिमाको दुर्वासाजी जानते हैं॥ ३॥

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥ ४॥

सारा जगत् श्रीरामको जपता है, वे श्रीरामजी जिनको जपते हैं उन भरतजीके समान श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी कौन होगा॥ ४॥

दो०—मनहुँ न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु॥२१८॥

हे देवराज! रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके भक्तका काम बिगाड़नेकी बात मनमें भी न लाइये। ऐसा करनेसे लोकमें अपयश और परलोकमें दुःख होगा और शोकका सामान दिनोंदिन बढ़ता ही चला जायगा॥ २१८॥

चौ०—सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा॥
मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई॥ १॥

हे देवराज! हमारा उपदेश सुनो। श्रीरामजीको अपना सेवक परम प्रिय है। वे अपने सेवककी सेवासे सुख मानते हैं और सेवकके साथ वैर करनेसे बड़ा भारी वैर मानते हैं॥ १॥

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥ २॥

यद्यपि वे सम हैं—उनमें न राग है, न रोष है और न वे किसीका पाप-पुण्य और गुण-दोष ही ग्रहण करते हैं। उन्होंने विश्वमें कर्मको ही प्रधान कर रक्खा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है॥२॥

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन अलेप अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत पेम बस॥ ३॥

तथापि वे भक्त और अभक्तके हृदयके अनुसार सम और विषम व्यवहार करते हैं (भक्तको प्रेमसे गले लगा लेते हैं और अभक्तको मारकर तार देते हैं)। गुणरहित, निर्लेप, मानरहित और सदा एकरस भगवान् श्रीराम भक्तके प्रेमवश ही सगुण हुए हैं॥ ३॥

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥ ४॥

श्रीरामजी सदा अपने सेवकों (भक्तों) की रुचि रखते आये हैं। वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साक्षी हैं। ऐसा हृदयमें जानकर कुटिलता छोड़ दो और भरतजीके चरणोंमें सुन्दर प्रीति करो॥ ४॥

दो०—राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥२१९॥

हे देवराज इन्द्र! श्रीरामचन्द्रजीके भक्त सदा दूसरोंके हितमें लगे रहते हैं, वे दूसरोंके दुःखसे दुखी और दयालु होते हैं। फिर, भरतजी तो भक्तोंके शिरोमणि हैं, उनसे बिल्कुल न डरो॥ २१९॥

चौ०—सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयस अनुसारी॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥ १॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सत्यप्रतिज्ञ और देवताओंका हित करनेवाले हैं। और भरतजी श्रीरामजीकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले हैं। तुम व्यर्थ ही स्वार्थके विशेष वश होकर व्याकुल हो रहे हो। इसमें भरतजीका कोई दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है॥ १॥

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥ २॥

देवगुरु बृहस्पतिजीकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर इन्द्रके मनमें बड़ा आनन्द हुआ और उनकी चिन्ता मिट गयी। तब हर्षित होकर देवराज फूल बरसाकर भरतजीके स्वभावकी सराहना करने लगे॥ २॥

एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत पेमु मनहुँ चहु पासा॥ ३॥

इस प्रकार भरतजी मार्गमें चले जा रहे हैं। उनकी [प्रेममयी] दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी सिहाते हैं। भरतजी जभी 'राम' कहकर लंबी साँस लेते हैं, तभी मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है॥ ३॥

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥ ४॥

उनके [प्रेम और दीनतासे पूर्ण] वचनोंको सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्यावासियोंका प्रेम कहते नहीं बनता। बीचमें

निवास (मुकाम) करके भरतजी यमुनाजीके तटपर आये। यमुनाजीका जल देखकर उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ४ ॥

दो०—रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज ॥२२०॥

श्रीरघुनाथजीके (श्याम) रंगका सुन्दर जल देखकर सारे समाजसहित भरतजी [प्रेमविह्वल होकर] श्रीरामजीके विरहरूपी समुद्रमें डूबते-डूबते विवेकरूपी जहाजपर चढ़ गये (अर्थात् यमुनाजीका श्यामवर्ण जल देखकर सब लोग श्यामवर्ण भगवान्‌के प्रेममें विह्वल हो गये और उन्हें न पाकर विरहव्यथासे पीड़ित हो गये; तब भरतजीको यह ध्यान आया कि जल्दी चलकर उनके साक्षात् दर्शन करेंगे, इस विवेकसे वे फिर उत्साहित हो गये) ॥ २२० ॥

चौ०—जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहि सुपासू ॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी ॥ १ ॥

उस दिन यमुनाजीके किनारे निवास किया। समयानुसार सबके लिये [खान-पान आदिकी] सुन्दर व्यवस्था हुई। [निषादराजका संकेत पाकर] रात-ही-रातमें घाट-घाटकी अगणित नावें वहाँ आ गयीं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

प्रात पार भए एकहि खेवाँ। तोषे रामसखा की सेवाँ ॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई ॥ २ ॥

सबेरे एक ही खेवेमें सब लोग पार हो गये और श्रीरामचन्द्रजीके सखा निषादराजकी इस सेवासे सन्तुष्ट हुए। फिर स्नान करके और नदीको सिर नवाकर निषादराजके साथ दोनों भाई चले ॥ २ ॥

आगें मुनिबर बाहन आछें। राजसमाज जाइ सबु पाछें ॥
तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। भूषन बसन बेष सुठि सादें ॥ ३ ॥

आगे अच्छी-अच्छी सवारियोंपर श्रेष्ठ मुनि हैं, उनके पीछे सारा राजसमाज जा रहा है। उसके पीछे दोनों भाई बहुत सादे भूषण-वस्त्र और वेषसे पैदल चल रहे हैं ॥ ३ ॥

सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा ॥
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥ ४ ॥

सेवक, मित्र और मन्त्रीके पुत्र उनके साथ हैं। लक्ष्मण, सीताजी

और श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते जा रहे हैं। जहाँ-जहाँ श्रीरामजीने निवास और विश्राम किया था, वहाँ-वहाँ वे प्रेमसहित प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—मगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ ॥२२१॥

मार्गमें रहनेवाले स्त्री-पुरुष यह सुनकर घर और काम-काज छोड़कर दौड़ पड़ते हैं और उनके रूप (सौन्दर्य) और प्रेमको देखकर वे सब जन्म लेनेका फल पाकर आनन्दित होते हैं ॥ २२१ ॥

चौ०—कहहिं सपेम एक एक पाहीं। रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं ॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥ १ ॥

गाँवोंकी स्त्रियाँ एक दूसरीसे प्रेमपूर्वक कहती हैं—सखी! ये राम-लक्ष्मण हैं कि नहीं! हे सखी! इनकी अवस्था, शरीर और रंग-रूप तो वही है। शील, स्नेह उन्हींके सदृश है और चाल भी उन्हींके समान है ॥ १ ॥

बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगें अनी चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहिं भेदा ॥ २ ॥

परंतु हे सखी! इनका न तो वह वेष (वल्कलवस्त्रधारी मुनि-वेष) है, न सीताजी ही संग हैं। और इनके आगे चतुरङ्गिणी सेना चली जा रही है। फिर इनके मुख प्रसन्न नहीं हैं, इनके मनमें खेद है। हे सखी! इसी भेदके कारण सन्देह होता है ॥ २ ॥

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥ ३ ॥

उसका तर्क (युक्ति) अन्य स्त्रियोंके मन भाया। सब कहती हैं कि इसके समान सयानी (चतुर) कोई नहीं है। उसकी सराहना करके और 'तेरी वाणी सत्य है' इस प्रकार उसका सम्मान करके दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली ॥ ३ ॥

कहि सपेम सब कथा प्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू ॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके राजतिलकका आनन्द जिस प्रकारसे भंग हुआ था, वह सब कथाप्रसङ्ग प्रेमपूर्वक कहकर फिर वह भरतजीके शील, स्नेह और सौभाग्यकी सराहना करने लगी ॥ ४ ॥

दो०—चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु ॥२२२॥

[वह बोली—] देखो, ये भरतजी पिताके दिये हुए राज्यको त्यागकर पैदल चलते और फलाहार करते हुए श्रीरामजीको मनानेके लिये जा रहे हैं। इनके समान आज कौन है ? ॥ २२२ ॥

चौ०—भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू ॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई ॥ १ ॥

भरतजीका भाईपना, भक्ति और इनके आचरण कहने और सुननेसे दुःख और दोषोंके हरनेवाले हैं। हे सखी ! उनके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाय, वह थोड़ा है। श्रीरामचन्द्रजीके भाई ऐसे क्यों न हों ? ॥ १ ॥

हम सब सानुज भरतहि देखें। भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं ॥ २ ॥

छोटे भाई शत्रुघ्नसहित भरतजीको देखकर हम सब भी आज धन्य (बड़भागिनी) स्त्रियोंकी गिनतीमें आ गयीं। इस प्रकार भरतजीके गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर स्त्रियाँ पछताती हैं और कहती हैं—यह पुत्र कैकेयी-जैसी माताके योग्य नहीं है ॥ २ ॥

कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ॥
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी ॥ ३ ॥

कोई कहती हैं—इसमें रानीका भी दोष नहीं है। यह सब विधाताने ही किया है, जो हमारे अनुकूल है। कहाँ तो हम लोक और वेद दोनोंकी विधि (मर्यादा) से हीन, कुल और करतूत दोनोंसे मलिन तुच्छ स्त्रियाँ ॥ ३ ॥

बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ॥
अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ॥ ४ ॥

जो बुरे देश (जंगली प्रान्त) और बुरे गाँवमें बसती हैं और [स्त्रियोंमें भी] नीच स्त्रियाँ हैं और कहाँ यह महान् पुण्योंका परिणामस्वरूप इनका दर्शन ! ऐसा ही आनन्द, और आश्चर्य गाँव-गाँवमें हो रहा है। मानो मरुभूमिमें कल्पवृक्ष उग गया हो ॥ ४ ॥

दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु ॥२२३॥

भरतजीका स्वरूप देखते ही रास्तेमें रहनेवाले लोगोंके भाग्य खुल गये। मानो दैवयोगसे सिंघलद्वीपके बसनेवालोंको तीर्थराज प्रयाग सुलभ हो गया हो ॥ २२३ ॥

चौ०—निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ॥ १ ॥

[इस प्रकार] अपने गुणोंसहित श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथा सुनते और श्रीरघुनाथजीको स्मरण करते हुए भरतजी चले जा रहे हैं। वे तीर्थ देखकर स्नान और मुनियोंके आश्रम तथा देवताओंके मन्दिर देखकर प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

मनहीं मन मागहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू ॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी ॥ २ ॥

और मन-ही-मन यह वरदान माँगते हैं कि श्रीसीतारामजीके चरण-कमलोंमें प्रेम हो। मार्गमें भील, कोल आदि वनवासी तथा वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और विरक्त मिलते हैं ॥ २ ॥

करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही ॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं ॥ ३ ॥

उनमेंसे जिस-तिससे प्रणाम करके पूछते हैं कि लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और जानकीजी किस वनमें हैं? वे प्रभुके सब समाचार कहते हैं और भरतजीको देखकर जन्मका फल पाते हैं ॥ ३ ॥

जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे ॥
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी ॥ ४ ॥

जो लोग कहते हैं कि हमने उनको कुशलपूर्वक देखा है, उनको वे श्रीराम-लक्ष्मणके समान ही प्यारे मानते हैं। इस प्रकार सबसे सुन्दर वाणीसे पूछते और श्रीरामजीके वनवासकी कहानी सुनते जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ ॥२२४॥

उस दिन वहीं ठहरकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके चले। साथके सब लोगोंको भी भरतजीके समान ही श्रीरामजी-के दर्शनकी लालसा [लगी हुई] है ॥ २२४ ॥

चौ०—मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू॥ १॥

सबको मङ्गलसूचक शकुन हो रहे हैं। सुख देनेवाले [पुरुषोंके दाहिने और स्त्रियोंके बायें] नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं। समाजसहित भरतजीको उत्साह हो रहा है कि श्रीरामचन्द्रजी मिलेंगे और दुःखका दाह मिट जायगा॥ १॥

करत मनोरथ जस जियँ जाके। जाहिं सनेह सुराँ सब छाके॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन पेम बस बोलहिं॥ २॥

जिसके जीमें जैसा है वह वैसा ही मनोरथ करता है। सब स्नेहरूपी मदिरासे छके (प्रेममें मतवाले हुए) चले जा रहे हैं। अङ्ग शिथिल हैं, रास्तेमें पैर डगमगा रहे हैं और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं॥ २॥

रामसखाँ तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥ ३॥

रामसखा निषादराजने उसी समय स्वाभाविक ही सुहावना पर्वत-शिरोमणि कामदगिरि दिखलाया, जिसके निकट ही पयस्विनी नदीके तटपर सीताजीसमेत दोनों भाई निवास करते हैं॥ ३॥

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥ ४॥

सब लोग उस पर्वतको देखकर 'जानकीजीवन श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो!' ऐसा कहकर दण्डवत्-प्रणाम करते हैं। राजसमाज प्रेममें ऐसा मग्न है मानो श्रीरघुनाथजी अयोध्याको लौट चले हों॥ ४॥

दो०—भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥२२५॥

भरतजीका उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते। कविके लिये तो वह वैसा ही अगम है जैसा अहंता और ममतासे मलिन मनुष्योंके लिये ब्रह्मानन्द!॥ २२५॥

चौ०—सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीतें। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें॥ १॥

सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमके मारे शिथिल होनेके कारण सूर्यास्त होनेतक (दिनभरमें) दो ही कोस चल पाये और जल-स्थलका सुपास

देखकर रातको वहीं [बिना खाये-पीये ही] रह गये। रात बीतनेपर श्रीरघुनाथजीके प्रेमी भरतजीने आगे गमन किया ॥ १ ॥

उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा ॥

सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए ॥ २ ॥

उधर श्रीरामचन्द्रजी रात शेष रहते ही जागे। रातको सीताजीने ऐसा स्वप्न देखा [जिसे वे श्रीरामजीको सुनाने लगीं] मानो समाजसहित भरतजी यहाँ आये हैं। प्रभुके वियोगकी अग्निसे उनका शरीर संतप्त है ॥ २ ॥

सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी ॥

सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन ॥ ३ ॥

सभी लोग मनमें उदास, दीन और दुखी हैं। सासुओंको दूसरी ही सूरतमें देखा। सीताजीका स्वप्न सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंमें जल भर आया और सबको सोचसे छुड़ा देनेवाले प्रभु स्वयं [लीलासे] सोचके वश हो गये ॥ ३ ॥

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥

अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥ ४ ॥

[और बोले—] लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई भीषण कुसमाचार (बहुत ही बुरी खबर) सुनावेगा। ऐसा कहकर उन्होंने भाईसहित स्नान किया और त्रिपुरारि महादेवजीका पूजन करके साधुओंका सम्मान किया ॥ ४ ॥

छं०—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

देवताओंका सम्मान (पूजन) और मुनियोंकी वन्दना करके श्रीरामचन्द्रजी बैठ गये और उत्तर दिशाकी ओर देखने लगे। आकाशमें धूल छा रही है; बहुत-से पक्षी और पशु व्याकुल होकर भागे हुए प्रभुके आश्रमको आ रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी यह देखकर उठे और सोचने लगे कि क्या कारण है? वे चित्तमें आश्चर्ययुक्त हो गये। उसी समय कोल-भीलोंने आकर सब समाचार कहे।

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥२२६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सुन्दर मङ्गल वचन सुनते ही श्रीरामजीके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। शरीरमें पुलकावली छा गयी और शरद्-ऋतुके कमलके समान नेत्र प्रेमाश्रुओंसे भर गये ॥ २२६ ॥

चौ०—बहुरि सोचबस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी ॥ १ ॥

सीतापति श्रीरामचन्द्रजी पुनः सोचके वश हो गये कि भरतके आनेका क्या कारण है? फिर एकने आकर ऐसा कहा कि उनके साथमें बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेना भी है ॥ १ ॥

सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू ॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं ॥ २ ॥

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको अत्यन्त सोच हुआ। इधर तो पिताके वचन और इधर भाई भरतजीका संकोच। भरतजीके स्वभावको मनमें समझकर तो प्रभु श्रीरामचन्द्रजी चित्तको ठहरानेके लिये कोई स्थान ही नहीं पाते हैं ॥ २ ॥

समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुँ साधु सयाने ॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू ॥ ३ ॥

तब यह जानकर समाधान हो गया कि भरत साधु और सयाने हैं तथा मेरे कहनेमें (आज्ञाकारी) हैं। लक्ष्मणजीने देखा कि प्रभु श्रीरामजी-के हृदयमें चिन्ता है तो वे समयके अनुसार अपना नीतियुक्त विचार कहने लगे— ॥ ३ ॥

बिनु पूछें कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाईं ॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी ॥ ४ ॥

हे स्वामी! आपके बिना ही पूछे मैं कुछ कहता हूँ; सेवक समयपर ढिठाई करनेसे ढीठ नहीं समझा जाता (अर्थात् आप पूछें तब मैं कहूँ, ऐसा अवसर नहीं है; इसीलिये यह मेरा कहना ढिठाई नहीं होगा) हे स्वामी! आप सर्वज्ञोंमें शिरोमणि हैं (सब जानते ही हैं), मैं सेवक तो अपनी समझकी बात कहता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान ॥२२७॥

हे नाथ ! आप परम सुहृद् (बिना ही कारण परम हित करनेवाले), सरलहृदय तथा शील और स्नेहके भण्डार हैं, आपका सभीपर प्रेम और विश्वास है और अपने हृदयमें सबको अपने ही समान जानते हैं ॥ २२७ ॥

चौ०—बिषई जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोह बस होहिं जनाई ॥
भरतु नीति रत साधु सुजाना । प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना ॥ १ ॥

परंतु मूढ़ विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली स्वरूपको प्रकट कर देते हैं। भरत नीतिपरायण, साधु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरणोंमें उनका प्रेम है, इस बातको सारा जगत् जानता है ॥ १ ॥

तेऊ आजु राम पदु पाई । चले धरम मरजाद मेटाई ॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी । जानि राम बनवास एकाकी ॥ २ ॥

वे भरत भी आज श्रीरामजी (आप) का पद (सिंहासन या अधिकार) पाकर धर्मकी मर्यादाको मिटाकर चले हैं। कुटिल खोटे भाई भरत कुसमय देखकर और यह जानकर कि रामजी (आप) वनवासमें अकेले (असहाय) हैं, ॥ २ ॥

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू । आए करै अकंटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आए दलु बटोरि दोउ भाई ॥ ३ ॥

अपने मनमें बुरा विचार करके, समाज जोड़कर राज्यको निष्कण्टक करनेके लिये यहाँ आये हैं। करोड़ों (अनेकों) प्रकारकी कुटिलताएँ रचकर सेना बटोरकर दोनों भाई आये हैं ॥ ३ ॥

जौं जियँ होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ बाजि गजाली ॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ । जग बौराइ राज पदु पाएँ ॥ ४ ॥

यदि इनके हृदयमें कपट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े और हाथियोंकी कतार [ऐसे समय] किसे सुहाती ? परंतु भरतको ही व्यर्थ कौन दोष दे ? राजपद पा जानेपर सारा जगत् ही पागल (मतवाला) हो जाता है ॥ ४ ॥

दो०—ससि गुर तिय गामी नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान ।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान ॥२२८॥

चन्द्रमा गुरुपत्नीगामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणोंकी पालकीपर चढ़ा और राजा वेनके समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनोंसे विमुख हो गया ॥ २२८ ॥

चौ०—सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ ॥ १ ॥

सहस्रबाहु, देवराज इन्द्र और त्रिशंकु आदि किसको राजमदने कलङ्क नहीं दिया ? भरतने यह उपाय उचित ही किया है; क्योंकि शत्रु और ऋणको कभी जरा भी शेष नहीं रखना चाहिये ॥ १ ॥

एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई ॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी ॥ २ ॥

हाँ, भरतने एक बात अच्छी नहीं की, जो रामजी (आप) को असहाय जानकर उनका निरादर किया। पर आज संग्राममें श्रीरामजी (आप) का क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनकी समझमें विशेषरूपसे आ जायगी (अर्थात् इस निरादरका फल भी वे अच्छी तरह पा जायँगे) ॥ २ ॥

एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला ॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाषी ॥ ३ ॥

इतना कहते ही लक्ष्मणजी नीतिरस भूल गये और युद्धरसरूपी वृक्ष पुलकावलीके बहानेसे फूल उठा (अर्थात् नीतिकी बात कहते-कहते उनके शरीरमें वीर-रस छा गया)। वे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी वन्दना करके, चरण-रजको सिरपर रखकर सच्चा और स्वाभाविक बल कहते हुए बोले—॥ ३ ॥

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहि उपचार न थोरा ॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें ॥ ४ ॥

हे नाथ ! मेरा कहना अनुचित न मानियेगा। भरतने हमें कम नहीं प्रचारा है (हमारे साथ कम छेड़-छाड़ नहीं की है)। आखिर कहाँतक सहा जाय और मन मारे रहा जाय, जब स्वामी हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथमें है ! ॥ ४ ॥

दो०—छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान ॥२२९॥

क्षत्रिय जाति, रघुकुलमें जन्म और फिर मैं श्रीरामजी (आप) का अनुगामी (सेवक) हूँ, यह जगत् जानता है। [फिर भला कैसे सहा जाय ?] धूलिके समान नीच कौन है, परंतु वह भी लात मारनेपर सिर ही चढ़ती है ॥ २२९ ॥

चौ०—उठि कर जोरि रजायसु मागा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा ॥ १ ॥

यों कहकर लक्ष्मणजीने उठकर हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी। मानो वीररस सोतेसे जाग उठा हो। सिरपर जटा बाँधकर कमरमें तरकस कस लिया और धनुषको सजकर तथा बाणको हाथमें लेकर कहा—॥ १ ॥

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ॥ २ ॥

आज मैं श्रीराम (आप) का सेवक होनेका यश लूँ और भरतको संग्राममें शिक्षा दूँ। श्रीरामचन्द्रजी (आप) के निरादरका फल पाकर दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) रण-शय्यापर सोवें ! ॥ २ ॥

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥ ३ ॥

अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया। आज मैं पिछला सब क्रोध प्रकट करूँगा। जैसे सिंह हाथियोंके झुण्डको कुचल डालता है और बाज जैसे लवेको लपेटमें ले लेता है, ॥ ३ ॥

तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई ॥ ४ ॥

वैसे ही भरतको सेनासमेत और छोटे भाईसहित तिरस्कार करके मैदानमें पछाड़ूँगा। यदि शङ्करजी भी आकर उनकी सहायता करें तो भी मुझे रामजीकी सौगन्ध है, मैं उन्हें युद्धमें [अवश्य] मार डालूँगा (छोड़ूँगा नहीं) ॥ ४ ॥

दो०—अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान ॥ २३० ॥

लक्ष्मणजीको अत्यन्त क्रोधसे तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक (सत्य) सौगन्ध सुनकर सब लोग भयभीत हो जाते हैं और लोकपाल घबड़ाकर भागना चाहते हैं ॥ २३० ॥

चौ०—जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥ १॥

सारा जगत् भयमें डूब गया। तब लक्ष्मणजीके अपार बाहुबलकी प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई—हे तात! तुम्हारे प्रताप और प्रभावको कौन कह सकता है और कौन जान सकता है? ॥ १॥

अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥ २॥

परंतु कोई भी काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझ-बूझकर किया जाय तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और विद्वान् कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दीमें किसी कामको करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं॥ २॥

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥ ३॥

देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये। श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीने उनका आदरके साथ सम्मान किया [और कहा—] हे तात! तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही। हे भाई! राज्यका मद सबसे कठिन मद है॥ ३॥

जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥ ४॥

जिन्होंने साधुओंकी सभाका सेवन (सत्संग) नहीं किया, वे ही राजा राजमदरूपी मदिराका आचमन करते ही (पीते ही) मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण! सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्माकी सृष्टिमें न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है॥ ४॥

दो०—भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥ २३१॥

[अयोध्याके राज्यकी तो बात ही क्या है] ब्रह्मा, विष्णु और महादेवका पद पाकर भी भरतको राज्यका मद नहीं होनेका! क्या कभी काँजीकी बूँदोंसे क्षीरसमुद्र नष्ट हो सकता (फट सकता) है? ॥ २३१॥

चौ०—तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़ै छोनी॥ १॥

अन्धकार चाहे तरुण (मध्याह्नके) सूर्यको निगल जाय। आकाश चाहे बादलोंमें समाकर मिल जाय। गौके खुर-इतने जलमें अगस्त्यजी डूब जायँ और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा (सहनशीलता) को छोड़ दे ॥ १ ॥

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥ २ ॥

मच्छरकी फूँकसे चाहे सुमेरु उड़ जाय परंतु हे भाई! भरतको राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी शपथ और पिताजीकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, भरतके समान पवित्र और उत्तम भाई संसारमें नहीं है ॥ २ ॥

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥ ३ ॥

हे तात! गुणरूपी दूध और अवगुणरूपी जलको मिलाकर विधाता इस दृश्य-प्रपंच (जगत्) को रचता है। परंतु भरतने सूर्यवंशरूपी तालाबमें हंसरूप जन्म लेकर गुण और दोषका विभाग कर दिया (दोनोंको अलग-अलग कर दिया) ॥ ३ ॥

गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥ ४ ॥

गुणरूपी दूधको ग्रहणकर और अवगुणरूपी जलको त्यागकर भरतने अपने यशसे जगत्में उजियाला कर दिया है। भरतजीके गुण, शील और स्वभावको कहते-कहते श्रीरघुनाथजी प्रेमसमुद्रमें मग्न हो गये ॥ ४ ॥

दो०—सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु ॥ २३२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी वाणी सुनकर और भरतजीपर उनका प्रेम देखकर समस्त देवता उनकी सराहना करने लगे [और कहने लगे] कि श्रीरामचन्द्रजीके समान कृपाके धाम प्रभु और कौन है ॥ २३२ ॥

चौ०—जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥ १ ॥

यदि जगत्में भरतका जन्म न होता, तो पृथ्वीपर सम्पूर्ण धर्मोंकी धुरीको कौन धारण करता? हे रघुनाथजी! कविकुलके लिये अगम

(उनकी कल्पनासे अतीत) भरतजीके गुणोंकी कथा आपके सिवा और कौन जान सकता है ? ॥ १ ॥

लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनीं पुनीत नहाए ॥ २ ॥

लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीने देवताओंकी वाणी सुनकर अत्यन्त सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ भरतजीने सारे समाजके साथ पवित्र मन्दाकिनीमें स्नान किया ॥ २ ॥

सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुर सचिव नियोगा ॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई ॥ ३ ॥

फिर सबको नदीके समीप ठहराकर तथा माता, गुरु और मन्त्रीकी आज्ञा माँगकर निषादराज और शत्रुघ्नको साथ लेकर भरतजी वहाँको चले जहाँ श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजी थे ॥ ३ ॥

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं ॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥ ४ ॥

भरतजी अपनी माता कैकेयीकी करनीको समझकर (याद करके) सकुचाते हैं, और मनमें करोड़ों (अनेकों) कुतर्क करते हैं [सोचते हैं—] श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह उठकर न चले जायँ ॥ ४ ॥

दो०—मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥ २३३ ॥

मुझे माताके मतमें मानकर वे जो कुछ भी करें सो थोड़ा है, पर वे अपनी ओर समझकर (अपने विरद और सम्बन्धको देखकर) मेरे पापों और अवगुणोंको क्षमा करके मेरा आदर ही करेंगे ॥ २३३ ॥

चौ०—जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी ॥
मोरें सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही ॥ १ ॥

चाहे मलिन-मन जानकर मुझे त्याग दें, चाहे अपना सेवक मानकर मेरा सम्मान करें (कुछ भी करें); मेरे तो श्रीरामचन्द्रजीकी जूतियाँ ही शरण हैं। श्रीरामचन्द्रजी तो अच्छे स्वामी हैं, दोष तो सब दासका ही है ॥ १ ॥

जग जस भाजन चातक मीना । नेम पेम निज निपुन नबीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेहँ सिथिल सब गाता ॥ २ ॥

जगत्में यशके पात्र तो चातक और मछली ही हैं। जो अपने नेम और प्रेमको सदा नया बनाये रखनेमें निपुण हैं। ऐसा मनमें सोचते हुए भरतजी मार्गमें चले जाते हैं। उनके सब अङ्ग संकोच और प्रेमसे शिथिल हो रहे हैं ॥ २ ॥

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी । चलत भगति बल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ॥ ३ ॥

माताकी की हुई बुराई मानो उन्हें लौटाती है, पर धीरजकी धुरीको धारण करनेवाले भरतजी भक्तिके बलसे चले जाते हैं। जब श्रीरघुनाथजीके स्वभावको समझते (स्मरण करते) हैं तब मार्गमें उनके पैर जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं ॥ ३ ॥

भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल प्रबाहँ जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू । भा निषाद तेहि समयँ बिदेहू ॥ ४ ॥

उस समय भरतकी दशा कैसी है ? जैसी जलके प्रवाहमें जलके भौंरेकी गति होती है। भरतजीका सोच और प्रेम देखकर उस समय निषाद विदेह हो गया (देहकी सुध-बुध भूल गया) ॥ ४ ॥

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु ।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु ॥ २३४ ॥

मङ्गल शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर और विचारकर निषाद कहने लगा—सोच मिटेगा, हर्ष होगा, पर फिर अन्तमें दुःख होगा ॥ २३४ ॥

चौ०—सेवक बचन सत्य सब जाने । आश्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख बन सैल समाजू । मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥ १ ॥

भरतजीने सेवक (गुह) के सब वचन सत्य जाने और वे आश्रमके समीप जा पहुँचे। वहाँके वन और पर्वतोंके समूहको देखा तो भरतजी इतने आनन्दित हुए मानो कोई भूखा अच्छा अन्न (भोजन) पा गया हो ॥ १ ॥

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी । त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी । होहिं भरत गति तेहि अनुहारी ॥ २ ॥

जैसे ईतिके भयसे दुखी हुई और तीनों (आध्यात्मिक, आधिदैविक

और आधिभौतिक) तापों तथा क्रूर ग्रहों और महामारियोंसे पीड़ित प्रजा किसी उत्तम देश और उत्तम राज्यमें जाकर सुखी हो जाय, भरतजीकी गति (दशा) ठीक उसी प्रकारकी हो रही है ॥ २ ॥

[अधिक जल बरसना, न बरसना, चूहोंका उत्पात, टिड्डियाँ, तोते और दूसरे राजाकी चढ़ाई—खेतोंमें बाधा देनेवाले इन छः उपद्रवोंको 'ईति' कहते हैं ।]

राम बास बन संपति भ्राजा । सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू । बिपिन सुहावन पावन देसू ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके निवाससे वनकी सम्पत्ति ऐसी सुशोभित है मानो अच्छे राजाको पाकर प्रजा सुखी हो । सुहावना वन ही पवित्र देश है । विवेक उसका राजा है और वैराग्य मन्त्री ॥ ३ ॥

भट जम नियम सैल रजधानी । सांति सुमति सुचि सुंदर रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ । राम चरन आश्रित चित चाऊ ॥ ४ ॥

यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान) योद्धा हैं । पर्वत राजधानी है, शान्ति तथा सुबुद्धि दो सुन्दर पवित्र रानियाँ हैं । वह श्रेष्ठ राजा राज्यके सब अङ्गोंसे पूर्ण है और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके आश्रित रहनेसे उसके चित्तमें चाव (आनन्द या उत्साह) है ॥ ४ ॥

[स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना—राज्यके सात अङ्ग हैं ।]

दो०—जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु ।
करत अकंटक राजु पुरँ सुख संपदा सुकालु ॥ २३५ ॥

मोहरूपी राजाको सेनासहित जीतकर विवेकरूपी राजा निष्कण्टक राज्य कर रहा है । उसके नगरमें सुख, सम्पत्ति और सुकाल वर्तमान है ॥२३५॥

चौ०—बन प्रदेस मुनि बास घनेरे । जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना । प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥ १ ॥

वनरूपी प्रान्तोंमें जो मुनियोंके बहुत से निवासस्थान हैं, वही मानो शहरों, नगरों, गाँवों और खेड़ोंका समूह है । बहुत-से विचित्र पक्षी और अनेकों पशु ही मानो प्रजाओंका समाज है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥ २॥

गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सूअर, भैंसे और बैलोंको देखकर राजाके साजको सराहते ही बनता है। ये सब आपसका वैर छोड़कर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरते हैं। यही मानो चतुरङ्गिणी सेना है॥ २॥

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिधि बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन॥ ३॥

पानीके झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी चिग्घाड़ रहे हैं। वे ही मानो वहाँ अनेकों प्रकारके नगाड़े बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोता तथा कोयलोंके समूह और सुन्दर हंस प्रसन्न मनसे कूज रहे हैं॥ ३॥

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहु ओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला॥ ४॥

भौंरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं। मानो उस अच्छे राज्यमें चारों ओर मङ्गल हो रहा है। बेल, वृक्ष, तृण सब फल और फूलोंसे युक्त हैं। सारा समाज आनन्द और मङ्गलका मूल बन रहा है॥४॥

दो०—राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिराने नेमु॥ २३६॥

श्रीरामजीके पर्वतकी शोभा देखकर भरतजीके हृदयमें अत्यन्त प्रेम हुआ। जैसे तपस्वी नियमकी समाप्ति होनेपर तपस्याका फल पाकर सुखी होता है॥ २३६॥

मासपारायण, तीसवाँ विश्राम
नवाह्नपारायण, पाँचवाँ विश्राम

चौ०—तब केवट ऊँचें चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥ १॥

तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भुजा उठाकर भरतजीसे कहने लगा—हे नाथ! ये जो पाकर, जामुन, आम और तमालके विशाल वृक्ष दिखायी देते हैं,॥ १॥

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाँह सुखद सब काला॥ २॥

जिन श्रेष्ठ वृक्षोंके बीचमें एक सुन्दर विशाल बड़का वृक्ष सुशोभित है, जिसको देखकर मन मोहित हो जाता है, उसके पत्ते नीले और सघन हैं और उसमें लाल फल लगे हैं। उसकी घनी छाया सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली है ॥ २ ॥

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमासी ॥
ए तरु सरित समीप गोसाँई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई ॥ ३ ॥

मानो ब्रह्माजीने परम शोभाको एकत्र करके अन्धकार और लालिमामयी राशि-सी रच दी है। हे गोसाइँ! ये वृक्ष नदीके समीप हैं, जहाँ श्रीरामकी पर्णकुटी छायी है ॥ ३ ॥

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए ॥
बट छायाँ बेदिका बनाई। सियँ निज पानि सरोज सुहाई ॥ ४ ॥

वहाँ तुलसीजीके बहुत-से सुन्दर वृक्ष सुशोभित हैं, जो कहीं-कहीं सीताजीने और कहीं लक्ष्मणजीने लगाये हैं। इसी बड़की छायामें सीताजीने अपने करकमलोंसे सुन्दर वेदी बनायी है ॥ ४ ॥

दो०—जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥ २३७ ॥

जहाँ सुजान श्रीसीतारामजी मुनियोंके वृन्दसमेत बैठकर नित्य शास्त्र, वेद और पुराणोंके सब कथा-इतिहास सुनते हैं ॥ २३७ ॥

चौ०—सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥ १ ॥

सखाके वचन सुनकर और वृक्षोंको देखकर भरतजीके नेत्रोंमें जल उमड़ आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उनके प्रेमका वर्णन करनेमें सरस्वतीजी भी सकुचाती हैं ॥ १ ॥

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका ॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरणचिह्न देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं मानो दरिद्र पारस पा गया हो। वहाँकी रजको मस्तकपर रखकर हृदयमें और नेत्रोंमें लगाते हैं और श्रीरघुनाथजीके मिलनेके समान सुख पाते हैं ॥ २ ॥

देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥ ३॥

भरतजीकी अत्यन्त अनिर्वचनीय दशा देखकर वनके पशु, पक्षी और जड (वृक्षादि) जीव प्रेममें मग्न हो गये। प्रेमके विशेष वश होनेसे सखा निषादराजको भी रास्ता भूल गया। तब देवता सुन्दर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे॥ ३॥

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥ ४॥

भरतके प्रेमकी इस स्थितिको देखकर सिद्ध और साधकलोग भी अनुरागसे भर गये और उनके स्वाभाविक प्रेमकी प्रशंसा करने लगे कि यदि इस पृथ्वीतलपर भरतका जन्म [अथवा प्रेम] न होता, तो जडको चेतन और चेतनको जड कौन करता? ॥ ४॥

दो०—पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥ २३८॥

प्रेम अमृत है, विरह मन्दराचल पर्वत है, भरतजी गहरे समुद्र हैं। कृपाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजीने देवता और साधुओंके हितके लिये स्वयं [इस भरतरूपी गहरे समुद्रको अपने विरहरूपी मन्दराचलसे] मथकर यह प्रेमरूपी अमृत प्रकट किया है॥ २३८॥

चौ०—सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन॥ १॥

सखा निषादराजसहित इस मनोहर जोड़ीको सघन वनकी आड़के कारण लक्ष्मणजी नहीं देख पाये। भरतजीने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके समस्त सुमङ्गलोंके धाम और सुन्दर पवित्र आश्रमको देखा॥ १॥

करत प्रबेस मिटे दुख दावा। जनु जोगीं परमारथु पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे॥ २॥

आश्रममें प्रवेश करते ही भरतजीका दुःख और दाह (जलन) मिट गया, मानो योगीको परमार्थ (परमतत्त्व) की प्राप्ति हो गयी हो। भरतजीने देखा कि लक्ष्मणजी प्रभुके आगे खड़े हैं और पूछे हुए वचन प्रेमपूर्वक कह रहे हैं (पूछी हुई बातका प्रेमपूर्वक उत्तर दे रहे हैं)॥ २॥

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें। तून कसें कर सरु धनु काँधें॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥ ३॥

सिरपर जटा है, कमरमें मुनियोंका (वल्कल) वस्त्र बाँधे हैं और उसीमें तरकस कसे हैं। हाथमें बाण तथा कंधेपर धनुष है, वेदीपर मुनि तथा साधुओंका समुदाय बैठा है और सीताजीसहित श्रीरघुनाथजी विराजमान हैं ॥ ३ ॥

वल्कल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके वल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किये हैं, श्याम शरीर है। [सीतारामजी ऐसे लगते हैं] मानो रति और कामदेवने मुनिका वेष धारण किया हो। श्रीरामजी अपने करकमलोंसे धनुष-बाण फेर रहे हैं, और हँसकर देखते ही जीकी जलन हर लेते हैं (अर्थात् जिसकी ओर भी एक बार हँसकर देख लेते हैं, उसीको परम आनन्द और शान्ति मिल जाती है।) ॥ ४ ॥

दो०—लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु ॥ २३९ ॥

सुन्दर मुनिमण्डलीके बीचमें सीताजी और रघुकुलचन्द्र श्रीरामचन्द्रजी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो ज्ञानकी सभामें साक्षात् भक्ति और सच्चिदानन्द शरीर धारण करके विराजमान हैं ॥ २३९ ॥

चौ०—सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं ॥ १ ॥

छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराजसमेत भरतजीका मन [प्रेममें] मग्न हो रहा है। हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि सब भूल गये। 'हे नाथ! रक्षा कीजिये, हे गुसाईं! रक्षा कीजिये' ऐसा कहकर वे पृथ्वीपर दण्डकी तरह गिर पड़े ॥ १ ॥

बचन सपेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने ॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा ॥ २ ॥

प्रेमभरे वचनोंसे लक्ष्मणजीने पहचान लिया और मनमें जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। [वे श्रीरामजीकी ओर मुँह किये खड़े थे, भरतजी पीठ-पीछे थे; इससे उन्होंने देखा नहीं।] अब इस ओर तो भाई भरतजीका सरस प्रेम और उधर स्वामी श्रीरामचन्द्रजीकी सेवाकी प्रबल परवशता ॥ २ ॥

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥ ३॥

न तो [क्षणभरके लिये भी सेवासे पृथक् होकर] मिलते ही बनता है और न [प्रेमवश] छोड़ते (उपेक्षा करते) ही। कोई श्रेष्ठ कवि ही लक्ष्मणजीके चित्तकी इस गति (दुविधा) का वर्णन कर सकता है। वे सेवापर भार रखकर रह गये (सेवाको ही विशेष महत्त्वपूर्ण समझकर उसीमें लगे रहे) मानो चढ़ी हुई पतंगको खिलाड़ी (पतंग उड़ानेवाला) खींच रहा हो॥ ३॥

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥ ४॥

लक्ष्मणजीने प्रेमसहित पृथ्वीपर मस्तक नवाकर कहा—हे रघुनाथजी! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनते ही श्रीरघुनाथजी प्रेममें अधीर होकर उठे। कहीं वस्त्र गिरा, कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं बाण॥४॥

दो०—बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥२४०॥

कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने उनको जबरदस्ती उठाकर हृदयसे लगा लिया। भरतजी और श्रीरामजीके मिलनेकी रीतिको देखकर सबको अपनी सुध भूल गयी॥ २४०॥

चौ०—मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी॥
परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥ १॥

मिलनकी प्रीति कैसे बखानी जाय? वह तो कविकुलके लिये कर्म, मन, वाणी तीनोंसे अगम है। दोनों भाई (भरतजी और श्रीरामजी) मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारको भुलाकर परम प्रेमसे पूर्ण हो रहे हैं॥१॥

कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥ २॥

कहिये, उस श्रेष्ठ प्रेमको कौन प्रकट करे? कविकी बुद्धि किसकी छायाका अनुसरण करे? कविको तो अक्षर और अर्थका ही सच्चा बल है। नट तालकी गतिके अनुसार ही नाचता है॥ २॥

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती॥ ३॥

भरतजी और श्रीरघुनाथजीका प्रेम अगम्य है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और

महादेवका भी मन नहीं जा सकता। उस प्रेमको मैं कुबुद्धि किस प्रकार कहूँ ! भला, गाँडरकी ताँतसे भी कहीं सुन्दर राग बज सकता है ॥ ३ ॥

[तालाबों और झीलोंमें एक तरहकी घास होती है, उसे गाँडर कहते हैं।]

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥ ४ ॥

भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीके मिलनेका ढंग देखकर देवता भयभीत हो गये, उनकी धुकधुकी धड़कने लगी। देवगुरु बृहस्पतिजीने समझाया, तब कहीं वे मूर्ख चेते और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे ॥ ४ ॥

दो०–मिलि सपेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ॥२४१॥

फिर श्रीरामजी प्रेमके साथ शत्रुघ्नसे मिलकर तब केवट (निषादराज) से मिले। प्रणाम करते हुए लक्ष्मणजीसे भरतजी बड़े ही प्रेमसे मिले ॥ २४१ ॥

चौ०–भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥ १ ॥

तब लक्ष्मणजी ललककर (बड़ी उमंगके साथ) छोटे भाई शत्रुघ्नसे मिले। फिर उन्होंने निषादराजको हृदयसे लगा लिया। फिर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाइयोंने [उपस्थित] मुनियोंको प्रणाम किया और इच्छित आशीर्वाद पाकर वे आनन्दित हुए ॥ १ ॥

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए ॥ २ ॥

छोटे भाई शत्रुघ्नसहित भरतजी प्रेममें उमँगकर सीताजीके चरणकमलोंकी रज सिरपर धारणकर बार-बार प्रणाम करने लगे। सीताजीने उन्हें उठाकर उनके सिरको अपने करकमलसे स्पर्शकर (सिरपर हाथ फेरकर) उन दोनोंको बैठाया ॥ २ ॥

सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं ॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता ॥ ३ ॥

सीताजीने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया। क्योंकि वे स्नेहमें मग्न हैं,

उन्हें देहकी सुध-बुध नहीं है। सीताजीको सब प्रकारसे अपने अनुकूल देखकर भरतजी सोचरहित हो गये और उनके हृदयका कल्पित भय जाता रहा ॥ ३ ॥

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥ ४ ॥

उस समय न तो कोई कुछ कहता है, न कोई कुछ पूछता है। मन प्रेमसे परिपूर्ण है, वह अपनी गतिसे खाली है (अर्थात् संकल्प-विकल्प और चाञ्चल्यसे शून्य है)। उस अवसरपर केवट (निषादराज) धीरज धर और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनती करने लगा—॥ ४ ॥

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग ॥२४२॥

हे नाथ! मुनिनाथ वशिष्ठजीके साथ सब माताएँ, नगरनिवासी, सेवक, सेनापति, मन्त्री सब आपके वियोगसे व्याकुल होकर आये हैं ॥ २४२ ॥

चौ०—सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू ॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीन दयाला ॥ १ ॥

गुरुका आगमन सुनकर शीलके समुद्र, श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके पास शत्रुघ्नजीको रख दिया और वे परम धीर, धर्म-धुरन्धर, दीनदयालु श्रीरामचन्द्रजी उसी समय वेगके साथ चल पड़े ॥ १ ॥

गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे ॥
मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ॥ २ ॥

गुरुजीके दर्शन करके लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रेममें भर गये और दण्डवत्-प्रणाम करने लगे। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने दौड़कर उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रेममें उमँगकर वे दोनों भाइयोंसे मिले ॥ २ ॥

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू ॥
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥ ३ ॥

फिर प्रेमसे पुलकित होकर केवट (निषादराज) ने अपना नाम लेकर दूरसे ही वशिष्ठजीको दण्डवत्-प्रणाम किया। ऋषि वशिष्ठजीने राम-सखा जानकर उसको जबर्दस्ती हृदयसे लगा लिया। मानो जमीनपर लोटते हुए प्रेमको समेट लिया हो ॥ ३ ॥

रघुपति भगति सुमंगल मूला । नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला ॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति सुन्दर मङ्गलोंका मूल है। इस प्रकार कहकर सराहना करते हुए देवता आकाशसे फूल बरसाने लगे। वे कहने लगे—जगत्‌में इसके समान सर्वथा नीच कोई नहीं और वशिष्ठजीके समान बड़ा कौन है ! ॥ ४ ॥

दो०—जेहि लखि लखनहु तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ ॥२४३॥

जिस (निषाद) को देखकर मुनिराज वशिष्ठजी लक्ष्मणजीसे भी अधिक उससे आनन्दित होकर मिले। यह सब सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके भजनका प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है ॥ २४३ ॥

चौ०—आरत लोग राम सबु जाना । करुनाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाषी । तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी ॥ १ ॥

दयाकी खान, सुजान भगवान् श्रीरामजीने सब लोगोंको दुखी (मिलनेके लिये व्याकुल) जाना। तब जो जिस भावसे मिलनेका अभिलाषी था, उस-उसका उस-उस प्रकारका रुख रखते हुए (उसकी रुचिके अनुसार) ॥ १ ॥

सानुज मिलि पल महुँ सब काहू । कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं । जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं ॥ २ ॥

उन्होंने लक्ष्मणजीसहित पलभरमें सब किसीसे मिलकर उनके दुःख और कठिन संतापको दूर कर दिया। श्रीरामचन्द्रजीके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे करोड़ों घड़ोंमें एक ही सूर्यकी [पृथक्-पृथक्] छाया (प्रतिबिम्ब) एक साथ ही दीखती है ॥ २ ॥

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा । पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥
देखीं राम दुखित महतारीं । जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं ॥ ३ ॥

समस्त पुरवासी प्रेममें उमँगकर केवटसे मिलकर [उसके] भाग्यकी सराहना करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीने सब माताओंको दुखी देखा। मानो सुन्दर लताओंकी पंक्तियोंको पाला मार गया हो ॥ ३ ॥

प्रथम राम भेंटी कैकेई । सरल सुभायँ भगति मति भेई ॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी । काल करम बिधि सिर धरि खोरी ॥ ४ ॥

सबसे पहले रामजी कैकेयीसे मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्तिसे उसकी बुद्धिको तर कर दिया। फिर चरणोंमें गिरकर काल, कर्म और विधाताके सिर दोष मँढ़कर, श्रीरामजीने उनको सान्त्वना दी ॥ ४ ॥

दो०—भेटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु ॥२४४॥

फिर श्रीरघुनाथजी सब माताओंसे मिले। उन्होंने सबको समझा-बुझाकर सन्तोष कराया कि हे माता! जगत् ईश्वरके अधीन है। किसीको भी दोष नहीं देना चाहिये॥ २४४ ॥

चौ०—गुरतिय पद बंदे दुहु भाई। सहित बिप्रतिय जे सँग आई ॥
गंग गौरि सम सब सनमानीं। देहिं असीस मुदित मृदु बानीं ॥ १ ॥

फिर दोनों भाइयोंने ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसहित, जो भरतजीके साथ आयी थीं, गुरुजीकी पत्नी अरुन्धतीजीके चरणोंकी वन्दना की और उन सबका गङ्गाजी तथा गौरीजीके समान सम्मान किया। वे सब आनन्दित होकर कोमल वाणीसे आशीर्वाद देने लगीं ॥ १ ॥

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका ॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे पेम ब्याकुल सब गाता ॥ २ ॥

तब दोनों भाई पैर पकड़कर सुमित्राजीकी गोदमें जा चिपटे। मानो किसी अत्यन्त दरिद्रको सम्पत्तिसे भेंट हो गयी हो। फिर दोनों भाई माता कौसल्याजीके चरणोंमें गिर पड़े। प्रेमके मारे उनके सारे अङ्ग शिथिल हैं ॥ २ ॥

अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए ॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू॥ ३ ॥

बड़े ही स्नेहसे माताने उन्हें हृदयसे लगा लिया और नेत्रोंसे बहे हुए प्रेमाश्रुओंके जलसे उन्हें नहला दिया। उस समयके हर्ष और विषादको कवि कैसे कहे? जैसे गूँगा स्वादको कैसे बतावे? ॥ ३ ॥

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित माता कौसल्यासे मिलकर गुरुसे कहा कि आश्रमपर पधारिये। तदनन्तर मुनीश्वर वशिष्ठजीकी आज्ञा पाकर अयोध्यावासी सब लोग जल और थलका सुभीता देख-देखकर उतर गये ॥ ४ ॥

दो०- महिसुर मंत्री मातु गुर गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय भरत लखन रघुनाथ ॥२४५॥

ब्राह्मण, मन्त्री, माताएँ और गुरु आदि गिने-चुने लोगोंको साथ लिये हुए, भरतजी, लक्ष्मणजी और श्रीरघुनाथजी पवित्र आश्रमको चले ॥२४५॥

चौ०—सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी॥
गुरपतिनिहि मुनितियन्ह समेता। मिली पेमु कहि जाइ न जेता॥ १ ॥

सीताजी आकर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीके चरणों लगीं और उन्होंने मन-माँगी उचित आशिष पायी। फिर मुनियोंकी स्त्रियोंसहित गुरुपत्नी अरुन्धतीजीसे मिलीं। उनका जितना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता ॥१॥

बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के॥
सासु सकल जब सीयँ निहारीं। मूदे नयन सहमि सुकुमारीं॥ २ ॥

सीताजीने सभीके चरणोंकी अलग-अलग वन्दना करके अपने हृदयको प्रिय (अनुकूल) लगनेवाले आशीर्वाद पाये। जब सुकुमारी सीताजीने सब सासुओंको देखा तब उन्होंने सहमकर अपनी आँखें बंद कर लीं ॥ २ ॥

परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं। काह कीन्ह करतार कुचालीं॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा। सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा॥ ३ ॥

[सासुओंकी बुरी दशा देखकर] उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो राज-हंसिनियाँ वधिकके वशमें पड़ गयी हों। [मनमें सोचने लगीं कि] कुचाली विधाताने क्या कर डाला? उन्होंने भी सीताजीको देखकर बड़ा दुःख पाया। [सोचा] जो कुछ दैव सहावे, वह सब सहना ही पड़ता है ॥ ३ ॥

जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥ ४ ॥

तब जानकीजी हृदयमें धीरज धरकर, नील कमलके समान नेत्रोंमें जल भरकर सब सासुओंसे जाकर मिलीं। उस समय पृथ्वीपर करुणा (करुण-रस) छा गयी ॥ ४ ॥

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदयँ असीसहिं पेम बस रहिअहु भरी सोहाग ॥२४६॥

सीताजी सबके पैरों लग-लगकर अत्यन्त प्रेमसे मिल रही हैं, और सब सासुएँ स्नेहवश हृदयसे आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सुहागसे भरी रहो (अर्थात् सदा सौभाग्यवती रहो) ॥ २४६ ॥

चौ०-बिकल सनेहँ सीय सब रानीं। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानीं॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा॥ १॥

सीताजी और सब रानियाँ स्नेहके मारे व्याकुल हैं। तब ज्ञानी गुरुने सबको बैठ जानेके लिये कहा। फिर मुनिनाथ वशिष्ठजीने जगत्‌की गतिको मायिक कहकर (अर्थात् जगत् मायाका है, इसमें कुछ भी नित्य नहीं है, ऐसा कहकर) कुछ परमार्थकी कथाएँ (बातें) कहीं॥ १॥

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी॥ २॥

तदनन्तर वशिष्ठजीने राजा दशरथजीके स्वर्गगमनकी बात सुनायी। जिसे सुनकर रघुनाथजीने दुःसह दुःख पाया। और अपने प्रति उनके स्नेहको उनके मरनेका कारण विचारकर धीरधुरन्धर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त व्याकुल हो गये॥ २॥

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ आजू॥ ३॥

वज्र के समान कठोर, कड़वी वाणी सुनकर लक्ष्मणजी, सीताजी और सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज शोकसे अत्यन्त व्याकुल हो गया। मानो राजा आज ही मरे हों॥ ३॥

मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जलु काहुँ न लीन्हा॥ ४॥

फिर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने श्रीरामजीको समझाया। तब उन्होंने समाज-सहित श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनीजीमें स्नान किया। उस दिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजी-ने निर्जल व्रत किया। मुनि वशिष्ठजीके कहनेपर भी किसीने जल ग्रहण नहीं किया॥ ४॥

दो०-भोरु भएँ रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरु कीन्ह॥२४७॥

दूसरे दिन सबेरा होनेपर मुनि वशिष्ठजीने श्रीरघुनाथजीको जो-जो आज्ञा दी, वह सब कार्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने श्रद्धा-भक्तिसहित आदरके साथ किया॥ २४७॥

चौ०-करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥ १॥

वेदोंमें जैसा कहा गया है, उसीके अनुसार पिताकी क्रिया करके पाप-रूपी अन्धकारके नष्ट करनेवाले सूर्यरूप श्रीरामचन्द्रजी शुद्ध हुए। जिनका नाम पापरूपी रूईके [तुरंत जला डालनेके] लिये अग्नि है; और जिनका स्मरणमात्र समस्त शुभ मङ्गलोंका मूल है, ॥ १ ॥

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस॥
सुद्ध भए दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते॥ २॥

वे [नित्य शुद्ध-बुद्ध] भगवान् श्रीरामजी शुद्ध हुए। साधुओंकी ऐसी सम्मति है कि उनका शुद्ध होना वैसे ही है जैसे तीर्थोंके आवाहनसे गङ्गाजी शुद्ध होती हैं। (गङ्गाजी तो स्वभावसे ही शुद्ध हैं। उनमें जिन तीर्थोंका आवाहन किया जाता है उल्टे वे ही गङ्गाजीके सम्पर्कमें आनेसे शुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार सच्चिदानन्दरूप श्रीराम तो नित्य शुद्ध हैं। उनके संसर्गसे कर्म ही शुद्ध हो गये।) जब शुद्ध हुए दो दिन बीत गये तब श्रीरामचन्द्रजी प्रीतिके साथ गुरुजीसे बोले—॥ २ ॥

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी॥
सानुज भरतु सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥ ३ ॥

हे नाथ! सब लोग यहाँ अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। कन्द, मूल, फल और जलका ही आहार करते हैं। भाई शत्रुघ्नसहित भरतको, मन्त्रियोंको और सब माताओंको देखकर मुझे एक-एक पल युगके समान बीत रहा है ॥ ३ ॥

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाँई ॥ ४ ॥

अतः सबके साथ आप अयोध्यापुरीको पधारिये (लौट जाइये)। आप यहाँ हैं और राजा अमरावती (स्वर्ग) में हैं (अयोध्या सूनी है)। मैंने बहुत कह डाला, यह सब बड़ी ढिठाई की है। हे गोसाईं! जैसा उचित हो वैसा ही कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—धर्म सेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुँ बिश्राम ॥२४८॥

[वसिष्ठजीने कहा—] हे राम! तुम धर्मके सेतु और दयाके धाम हो, तुम भला ऐसा क्यों न कहो? लोग दुखी हैं। दो दिन तुम्हारा दर्शन कर शान्ति लाभ कर लें ॥ २४८ ॥

चौ०—राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥ १॥

श्रीरामजीके वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो गया। मानो बीच समुद्रमें जहाज डगमगा गया हो। परंतु जब उन्होंने गुरु वशिष्ठजीकी श्रेष्ठ कल्याणमूलक वाणी सुनी, तो उस जहाजके लिये मानो हवा अनुकूल हो गयी॥ १॥

पावन पयँ तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥ २॥

सब लोग पवित्र पयस्विनी नदीमें [अथवा पयस्विनी नदीके पवित्र जलमें] तीनों समय (सबेरे, दोपहर और सायंकाल) स्नान करते हैं, जिसके दर्शनसे ही पापोंके समूह नष्ट हो जाते हैं और मङ्गलमूर्ति श्रीरामचन्द्रजीको दण्डवत्-प्रणाम कर-करके उन्हें नेत्र भर-भरकर देखते हैं॥ २॥

राम सैल बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी॥ ३॥

सब श्रीरामचन्द्रजीके पर्वत (कामदगिरि) और वनको देखने जाते हैं, जहाँ सभी सुख हैं और सभी दुःखोंका अभाव है। झरने अमृतके समान जल झरते हैं और तीन प्रकारकी (शीतल, मन्द, सुगन्ध) हवा तीनों प्रकारके (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) तापोंको हर लेती है॥ ३॥

बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती॥
सुंदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं॥ ४॥

असंख्य जातिके वृक्ष, लताएँ और तृण हैं तथा बहुत तरहके फल, फूल और पत्ते हैं। सुन्दर शिलाएँ हैं। वृक्षोंकी छाया सुख देनेवाली है। वनकी शोभा किससे वर्णन की जा सकती है!॥ ४॥

दो०—सरनि सरोरुह जल बिहग कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग॥२४९॥

तालाबोंमें कमल खिल रहे हैं, जलके पक्षी कूज रहे हैं, भौंरे गुंजार कर रहे हैं और बहुत रंगोंके पक्षी और पशु वनमें वैररहित होकर विहार कर रहे हैं॥ २४९॥

चौ०—कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि परनपुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥ १॥

कोल, किरात और भील आदि वनके रहनेवाले लोग पवित्र, सुन्दर एवं अमृतके समान स्वादिष्ट मधु (शहद) को सुन्दर दोने बनाकर और उनमें भर-भरकर तथा कन्द, मूल, फल और अंकुर आदिकी जूड़ियों (अँटियों) को ॥ १ ॥

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥ २॥

सबको विनय और प्रणाम करके उन चीजोंके अलग-अलग स्वाद, भेद (प्रकार), गुण और नाम बता-बताकर देते हैं। लोग उनका बहुत दाम देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देनेमें श्रीरामजीकी दुहाई देते हैं ॥२॥

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु पेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥ ३॥

प्रेममें मग्न हुए वे कोमल वाणीसे कहते हैं कि साधु लोग प्रेमको पहचानकर उसका सम्मान करते हैं (अर्थात् आप साधु हैं, आप हमारे प्रेमको देखिये, दाम देकर या वस्तुएँ लौटाकर हमारे प्रेमका तिरस्कार न कीजिये)। आप तो पुण्यात्मा हैं, हम नीच निषाद हैं। श्रीरामजीकी कृपासे ही हमने आपलोगोंके दर्शन पाये हैं ॥ ३ ॥

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥ ४॥

हमलोगोंको आपके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, जैसे मरुभूमिके लिये गङ्गाजीकी धारा दुर्लभ है। [देखिये,] कृपालु श्रीरामचन्द्रजीने निषादपर कैसी कृपा की है। जैसे राजा हैं, वैसा ही उनके परिवार और प्रजाको भी होना चाहिये ॥ ४ ॥

दो०–यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु ॥२५०॥

हृदयमें ऐसा जानकर संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिये और हमको कृतार्थ करनेके लिये ही फल, तृण और अंकुर लीजिये ॥ २५० ॥

चौ०–तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाँई। ईंधनु पात किरात मिताई॥ १॥

आप प्रिय पाहुने वनमें पधारे हैं। आपकी सेवा करनेके योग्य हमारे

भाग्य नहीं है। हे स्वामी! हम आपको क्या देंगे? भीलोंकी मित्रता तो बस, ईंधन (लकड़ी) और पत्तोंहीतक है ॥ १ ॥

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई ॥
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥ २ ॥

हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते। हमलोग जड़ जीव हैं, जीवोंकी हिंसा करनेवाले हैं, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं ॥ २ ॥

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ॥ ३ ॥

हमारे दिन-रात पाप करते ही बीतते हैं। तो भी न तो हमारी कमरमें कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं। हममें स्वप्नमें भी कभी धर्मबुद्धि कैसी? यह सब तो श्रीरघुनाथजीके दर्शनका प्रभाव है ॥ ३ ॥

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे ॥ ४ ॥

जबसे प्रभुके चरणकमल देखे, तबसे हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गये। वनवासियोंके वचन सुनकर अयोध्याके लोग प्रेममें भर गये और उनके भाग्यकी सराहना करने लगे ॥ ४ ॥

छं०—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं ॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा ॥

सब उनके भाग्यकी सराहना करने लगे और प्रेमके वचन सुनाने लगे। उन लोगोंके बोलने और मिलनेका ढंग तथा श्रीसीतारामजीके चरणोंमें उनका प्रेम देखकर सब सुख पा रहे हैं। उन कोल-भीलोंकी वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेमका निरादर करते हैं (उसे धिक्कार देते हैं)। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा है कि लोहा नौकाको अपने ऊपर लेकर तैर गया।

सो०—बिहरहिं बन चहु ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम ॥२५१॥

सब लोग दिनोंदिन परम आनन्दित होते हुए वनमें चारों ओर

विचरते हैं। जैसे पहली वर्षाके जलसे मेढक और मोर मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचते-कूदते हैं) ॥ २५१ ॥

चौ०—पुरजन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥ १॥

अयोध्यापुरीके पुरुष और स्त्री सभी प्रेममें अत्यन्त मग्न हो रहे हैं। उनके दिन पलके समान बीत जाते हैं। जितनी सासुएँ थीं, उतने ही वेष (रूप) बनाकर सीताजी सब सासुओंकी आदरपूर्वक एक-सी सेवा करती हैं॥ १॥

लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ॥
सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं॥ २॥

श्रीरामचन्द्रजीके सिवा इस भेदको और किसीने नहीं जाना। सब मायाएँ [पराशक्ति महामाया] श्रीसीताजीकी मायामें ही हैं। सीताजीने सासुओंको सेवासे वशमें कर लिया। उन्होंने सुख पाकर सीख और आशीर्वाद दिये॥ २॥

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥ ३॥

सीताजीसमेत दोनों भाइयों (श्रीराम-लक्ष्मण) को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी भरपेट पछतायी। वह पृथ्वी तथा यमराजसे याचना करती है, किन्तु धरती बीच (फटकर समा जानेके लिये रास्ता) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता॥ ३॥

लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थलु नरक न लहहीं॥
यहु संसउ सब के मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं॥ ४॥

लोक और वेदमें प्रसिद्ध है और कवि (ज्ञानी) भी कहते हैं कि जो श्रीरामजीसे विमुख हैं, उन्हें नरकमें भी ठौर नहीं मिलती। सबके मनमें यह सन्देह हो रहा था कि हे विधाता! श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्या जाना होगा या नहीं॥ ४॥

दो०—निसि न नींद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच॥२५२॥

भरतजीको न तो रातको नींद आती है, न दिनमें भूख ही लगती

है। वे पवित्र सोचमें ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे (तल) के कीचड़में डूबी हुई मछलीको जलकी कमीसे व्याकुलता होती है ॥ २५२ ॥

चौ०—कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥ १ ॥

[भरतजी सोचते हैं कि] माताके मिससे कालने कुचाल की है। जैसे धानके पकते समय ईतिका भय आ उपस्थित हो। अब श्रीरामचन्द्रजी-का राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता ॥ १ ॥

अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥ २ ॥

गुरुजीकी आज्ञा मानकर तो श्रीरामजी अवश्य ही अयोध्याको लौट चलेंगे। परन्तु मुनि वशिष्ठजी तो श्रीरामचन्द्रजीकी रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे (अर्थात् वे श्रीरामजीकी रुचि देखे बिना जानेको नहीं कहेंगे)। माता कौसल्याजीके कहनेसे भी श्रीरघुनाथजी लौट सकते हैं; पर भला, श्रीरामजीको जन्म देनेवाली माता क्या कभी हठ करेगी ? ॥२॥

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥ ३ ॥

मुझ सेवककी तो बात ही कितनी है ! उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं) और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म) होगा; क्योंकि सेवकका धर्म शिवजीके पर्वत कैलाससे भी भारी (निबाहनेमें कठिन) है ॥ ३ ॥

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई॥ ४ ॥

एक भी युक्ति भरतजीके मनमें न ठहरी। सोचते-ही-सोचते रात बीत गयी। भरतजी प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको सिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठजीने उनको बुलवा भेजा ॥ ४ ॥

दो०—गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ ॥२५३॥

भरतजी गुरुके चरणकमलोंमें प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गये। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री आदि सभी सभासद् आकर जुट गये ॥ २५३ ॥

चौ०—बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू॥ १॥

श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी समयोचित वचन बोले—हे सभासदो! हे सुजान भरत! सुनो। सूर्यकुलके सूर्य महाराज श्रीरामचन्द्र धर्मधुरन्धर और स्वतन्त्र भगवान् हैं॥ १॥

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतू॥
गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥ २॥

वे सत्यप्रतिज्ञ हैं और वेदकी मर्यादाके रक्षक हैं। श्रीरामजीका अवतार ही जगत्के कल्याणके लिये हुआ है। वे गुरु, पिता और माताके वचनोंके अनुसार चलनेवाले हैं। दुष्टोंके दलका नाश करनेवाले और देवताओंके हितकारी हैं॥ २॥

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥ ३॥

नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थको श्रीरामजीके समान यथार्थ (तत्त्वसे) कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल, ॥ ३॥

अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि बिचार जियँ देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सब ही कें॥ ४॥

शेषजी और [पृथ्वी एवं पातालके अन्यान्य] राजा आदि जहाँतक प्रभुता है, और योगकी सिद्धियाँ, जो वेद और शास्त्रोंमें गायी गयी हैं, हृदयमें अच्छी तरह विचार कर देखो, [तो यह स्पष्ट दिखायी देगा कि] श्रीरामजीकी आज्ञा इन सभीके सिरपर है (अर्थात् श्रीरामजी ही सबके एकमात्र महान् महेश्वर हैं)॥ ४॥

दो०—राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥२५४॥

अतएव श्रीरामजीकी आज्ञा और रुख रखनेमें ही हम सबका हित होगा। [इस तत्त्व और रहस्यको समझकर] अब तुम सयाने लोग जो सबको सम्मत हो, वही मिलकर करो॥ २५४॥

चौ०—सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥ १॥

श्रीरामजीका राज्याभिषेक सबके लिये सुखदायक है। मङ्गल और आनन्दका मूल यही एक मार्ग है। [अब] श्रीरघुनाथजी अयोध्या किस प्रकार चलें ? विचारकर कहो, वही उपाय किया जाय ॥ १ ॥

सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥ २ ॥

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीकी नीति, परमार्थ और स्वार्थ (लौकिक हित) में सनी हुई वाणी सबने आदरपूर्वक सुनी। पर किसीको कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग भोले (विचारशक्तिसे रहित) हो गये। तब भरतने सिर नवाकर हाथ जोड़े ॥ २ ॥

भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे ॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता ॥ ३ ॥

[और कहा—] सूर्यवंशमें एक-से-एक अधिक बड़े बहुत-से राजा हो गये हैं। सभीके जन्मके कारण पिता-माता होते हैं और शुभ-अशुभ कर्मोंको (कर्मोंका फल) विधाता देते हैं ॥ ३ ॥

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना ॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥ ४ ॥

आपकी आशिष ही एक ऐसी है जो दुःखोंका दमन करके, समस्त कल्याणोंको सज देती है; यह जगत् जानता है। हे स्वामी ! आप वही हैं जिन्होंने विधाताकी गति (विधान) को भी रोक दिया। आपने जो टेक टेक दी (जो निश्चय कर दिया) उसे कौन टाल सकता है ! ॥ ४ ॥

दो०–बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुर उर उमगा अनुरागु ॥ २५५ ॥

अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं, यह सब मेरा अभाग्य है। भरतजीके प्रेममय वचनोंको सुनकर गुरुजीके हृदयमें प्रेम उमड़ आया ॥ २५५ ॥

चौ०–तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं ॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता ॥ १ ॥

[वे बोले—] हे तात, बात सत्य है, पर है रामजीकी कृपासे ही। रामविमुखको तो स्वप्नमें भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात ! मैं एक बात कहनेमें सकुचाता हूँ। बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर [आधेकी रक्षाके लिये] आधा छोड़ दिया करते हैं ॥ १ ॥

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥ २॥

अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वनको जाओ और लक्ष्मण, सीता और श्रीरामचन्द्रको लौटा दिया जाय। ये सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गये। उनके सारे अङ्ग परमानन्दसे परिपूर्ण हो गये॥ २॥

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भए राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥ ३॥

उनके मन प्रसन्न हो गये। शरीरमें तेज सुशोभित हो गया। मानो राजा दशरथ जी उठे हों और श्रीरामजी राजा हो गये हों! अन्य लोगोंको तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई। परन्तु रानियोंको दुःख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वनमें रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रोंका वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं॥ ३॥

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हें। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हें॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥ ४॥

भरतजी कहने लगे—मुनिने जो कहा, वह करनेसे जगत्‌भरके जीवोंको उनकी इच्छित वस्तु देनेका फल होगा। [चौदह वर्षकी कोई अवधि नहीं], मैं जन्मभर वनमें वास करूँगा। मेरे लिये इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है॥ ४॥

दो०—अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवानु॥२५६॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी हृदयकी जाननेवाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ! अपने वचनोंका प्रमाण कीजिये (उनके अनुसार व्यवस्था कीजिये)॥ २५६॥

चौ०—भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥ १॥

भरतजीके वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभासहित मुनि वसिष्ठजी विदेह हो गये (किसीको अपने देहकी सुधि न रही)। भरतजीकी महान् महिमा समुद्र है, मुनिकी बुद्धि उसके तटपर अबला स्त्रीके समान खड़ी है॥ १॥

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥ २॥

वह [उस समुद्रके] पार जाना चाहती है, इसके लिये उसने हृदयमें उपाय भी ढूँढ़े। [उसे पार करनेका साधन] नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती। भरतजीकी बड़ाई और कौन करेगा? तलैयाकी सीपीमें भी कहीं समुद्र समा सकता है?॥ २॥

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥ ३॥

मुनि वशिष्ठजीके अन्तरात्माको भरतजी बहुत अच्छे लगे और वे समाजसहित श्रीरामजीके पास आये। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने प्रणामकर उत्तम आसन दिया। सब लोग मुनिकी आज्ञा सुनकर बैठ गये॥ ३॥

बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥ ४॥

श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसरके अनुसार विचार करके वचन बोले—हे सर्वज्ञ! हे सुजान! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञानके भण्डार राम! सुनिये—॥ ४॥

दो०—सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥२५७॥

आप सबके हृदयके भीतर बसते हैं और सबके भले-बुरे भावको जानते हैं। जिसमें पुरवासियोंका, माताओंका और भरतका हित हो, वही उपाय बतलाइये॥ २५७॥

चौ०—आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥ १॥

आर्त (दुःखी) लोग कभी विचारकर नहीं कहते। जुआरीको अपना ही दाँव सूझता है। मुनिके वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे—हे नाथ! उपाय तो आपहीके हाथ है॥ १॥

सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किएँ मुदित फुर भाषें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥ २॥

आपका रुख रखनेमें और आपकी आज्ञाको सत्य कहकर प्रसन्नतापूर्वक

पालन करनेमें ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षाको माथेपर चढ़ाकर करूँ ॥ २ ॥

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं ॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेहँ बिचारु न राखा ॥ ३ ॥

फिर हे गोसाईं ! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरहसे सेवामें लग जायगा (आज्ञा-पालन करेगा)। मुनि वशिष्ठजी कहने लगे—हे राम ! तुमने सच कहा। पर भरतके प्रेमने विचारको नहीं रहने दिया ॥ ३ ॥

तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥ ४ ॥

इसीलिये मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरतकी भक्तिके वश हो गयी है। मेरी समझमें तो भरतकी रुचि रखकर जो कुछ किया जायगा, शिवजी साक्षी हैं वह सब शुभ ही होगा ॥ ४ ॥

दो०—भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥

पहले भरतकी विनती आदरपूर्वक सुन लीजिये, फिर उसपर विचार कीजिये। तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदोंका निचोड़ (सार) निकालकर वैसा ही (उसीके अनुसार) कीजिये ॥ २५८ ॥

चौ०—गुर अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयँ आनंदु बिसेषी ॥
भरतहि धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी ॥ १ ॥

भरतजीपर गुरुजीका स्नेह देखकर श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें विशेष आनन्द हुआ। भरतजीको धर्मधुरन्धर और तन, मन, वचनसे अपना सेवक जानकर—॥ १ ॥

बोले गुर आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगल मूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी गुरुकी आज्ञाके अनुकूल मनोहर, कोमल और कल्याणके मूल वचन बोले—हे नाथ ! आपकी सौगंध और पिताजीके चरणोंकी दुहाई है (मैं सत्य कहता हूँ कि) विश्वभरमें भरतके समान भाई कोई हुआ ही नहीं ॥ २ ॥

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू ॥ ३ ॥

जो लोग गुरुके चरणकमलोंके अनुरागी हैं, वे लोकमें (लौकिक दृष्टिसे) भी और वेदमें (पारमार्थिक दृष्टिसे) भी बड़भागी होते हैं। [फिर] जिसपर आप (गुरु) का ऐसा स्नेह है, उस भरतके भाग्यको कौन कह सकता है? ॥३॥

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥ ४ ॥

छोटा भाई जानकर भरतके मुँहपर उसकी बड़ाई करनेमें मेरी बुद्धि सकुचाती है। (फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि) भरत जो कुछ कहें वही करनेमें भलाई है। ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी चुप हो रहे ॥ ४ ॥

दो०—तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात ॥२५९॥

तब मुनि भरतजीसे बोले—हे तात! सब संकोच त्यागकर कृपाके समुद्र अपने प्यारे भाईसे अपने हृदयकी बात कहो ॥ २५९ ॥

चौ०—सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपनें सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥ १॥

मुनिके वचन सुनकर और श्रीरामचन्द्रजीका रुख पाकर—गुरु तथा स्वामीको भरपेट अपने अनुकूल जानकर—सारा बोझ अपने ही ऊपर समझकर भरतजी कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे ॥ १ ॥

पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहौं मैं काहा॥ २ ॥

शरीरसे पुलकित होकर वे सभामें खड़े हो गये। कमलके समान नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंकी बाढ़ आ गयी। [वे बोले—] मेरा कहना तो मुनिनाथने ही निबाह दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह उन्होंने ही कह दिया)। इससे अधिक मैं क्या कहूँ? ॥ २ ॥

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥ ३ ॥

अपने स्वामीका स्वभाव मैं जानता हूँ। वे अपराधीपर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझपर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेलमें भी कभी उनकी रीस (अप्रसन्नता) नहीं देखी ॥ ३ ॥

सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥ ४ ॥

बचपनसे ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मनको कभी नहीं तोड़ा (मेरे मनके प्रतिकूल कोई काम नहीं किया)। मैंने प्रभुकी कृपाकी रीतिको हृदयमें भलीभाँति देखा है (अनुभव किया है), मेरे हारनेपर भी खेलमें प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन ॥ २६० ॥

मैंने भी प्रेम और संकोचवश कभी सामने मुँह नहीं खोला। प्रेमके प्यासे मेरे नेत्र आजतक प्रभुके दर्शनसे तृप्त नहीं हुए ॥ २६० ॥

चौ०—बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा ॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनीं समुझि साधु सुचि को भा ॥ १ ॥

परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका। उसने नीच माताके बहाने [मेरे और स्वामीके बीच] अन्तर डाल दिया। यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता। क्योंकि अपनी समझसे कौन साधु और पवित्र हुआ है! (जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें, वही साधु है) ॥ १ ॥

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली ॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली ॥ २ ॥

माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदयमें लाना ही करोड़ दुराचारोंके समान है। क्या कोदोंकी बाली उत्तम धान फल सकती है ? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है ? ॥ २ ॥

सपनेहुँ दोसक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू ॥
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू ॥ ३ ॥

स्वप्नमें भी किसीको दोषका लेश भी नहीं है। मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है। मैंने अपने पापोंका परिणाम समझे बिना ही माताको कटु वचन कहकर व्यर्थ ही जलाया ॥ ३ ॥

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा ॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू ॥ ४ ॥

मैं अपने हृदयमें सब ओर खोजकर हार गया (मेरी भलाईका कोई साधन नहीं सूझता)। एक ही प्रकार भले ही (निश्चय ही) मेरा भला है। वह यह है कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और श्रीसीतारामजी मेरे स्वामी हैं। इसीसे परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है ॥ ४ ॥

दो०—साधु सभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६१॥

साधुओंकी सभामें गुरुजी और स्वामीके समीप इस पवित्र तीर्थ-स्थानमें मैं सत्यभावसे कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपञ्च (छल-कपट)? झूठ है या सच? इसे [सर्वज्ञ] मुनि वशिष्ठजी और [अन्तर्यामी] श्रीरघुनाथजी जानते हैं ॥ २६१ ॥

चौ०—भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी ॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं ॥ १ ॥

प्रेमके प्रणको निबाहकर महाराज (पिताजी) का मरना और माताकी कुबुद्धि, दोनोंका सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं। अवधपुरीके नर-नारी दुःसह तापसे जल रहे हैं ॥ १ ॥

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा ॥ २ ॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू ॥ ३ ॥

मैं ही इन सारे अनर्थोंका मूल हूँ, यह सुन और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। श्रीरघुनाथजी लक्ष्मण और सीताजीके साथ मुनियोंका-सा वेष धारणकर बिना जूते पहने पाँव-प्यादे (पैदल) ही वनको चले गये, यह सुनकर शंकरजी साक्षी हैं, इस घावसे भी मैं जीता रह गया (यह सुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गये)। फिर निषादराजका प्रेम देखकर भी इस वज्रसे भी कठोर हृदयमें छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं) ॥ २-३ ॥

अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई ॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी ॥ ४ ॥

अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड जीव जीता रहकर सभी सहावेगा। जिनको देखकर रास्तेकी साँपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और तीव्र क्रोधको त्याग देती हैं— ॥ ४ ॥

दो०—तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि ॥ २६२ ॥

वे ही श्रीरघुनन्दन, लक्ष्मण और सीता जिसको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयीके पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहावेगा? ॥२६२॥

चौ०–सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥
सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू॥ १॥

अत्यन्त व्याकुल तथा दुःख, प्रेम, विनय और नीतिमें सनी हुई भरतजीकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोकमें मग्न हो गये। सारी सभामें विषाद छा गया, मानो कमलके वनपर पाला पड़ गया हो॥ १॥

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू॥ २॥

तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठजीने अनेक प्रकारकी पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर भरतजीका समाधान किया। फिर सूर्यकुलरूपी कुमुदवनके प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमा श्रीरघुनन्दन उचित वचन बोले—॥ २॥

तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥ ३॥

हे तात! तुम अपने हृदयमें व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीवकी गतिको ईश्वरके अधीन जानो। मेरे मतमें [भूत, भविष्य, वर्तमान] तीनों कालों और [स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल] तीनों लोकोंके सब पुण्यात्मा पुरुष तुमसे नीचे हैं॥ ३॥

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥ ४॥

हृदयमें भी तुमपर कुटिलताका आरोप करनेसे यह लोक (यहाँके सुख, यश आदि) बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है (मरनेके बाद भी अच्छी गति नहीं मिलती)। माता कैकेयीको तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरु और साधुओंकी सभाका सेवन नहीं किया है॥ ४॥

दो०–मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥ २६३॥

हे भरत! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपञ्च (अज्ञान) और समस्त अमङ्गलोंके समूह मिट जायँगे तथा इस लोकमें सुन्दर यश और परलोकमें सुख प्राप्त होगा॥ २६३॥

चौ०–कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ॥ १॥

हे भरत! मैं स्वभावसे ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं, यह पृथ्वी

तुम्हारी ही रक्खी रह रही है। हे तात! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते॥ १॥

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥ २॥

पक्षी और पशु मुनियोंके पास [बेधड़क] चले जाते हैं, पर हिंसा करनेवाले बधिकोंको देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रुको पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्यशरीर तो गुण और ज्ञानका भण्डार ही है॥ २॥

तात तुम्हहि मैं जानउँ नीकें। करौं काह असमंजस जीकें॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥ ३॥

हे तात! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ? जीमें बड़ा असमञ्जस (दुविधा) है। राजाने मुझे त्यागकर सत्यको रक्खा और प्रेम-प्रणके लिये शरीर छोड़ दिया॥ ३॥

तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥ ४॥

उनके वचनको मेटते मनमें सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उसपर भी गुरुजीने मुझे आज्ञा दी है। इसलिये अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ॥ ४॥

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु॥ २६४॥

तुम मनको प्रसन्न कर और संकोचको त्यागकर जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँ। सत्यप्रतिज्ञ रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामजीका यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया॥ २६४॥

चौ०—सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
बनत उपाउ करत कछु नाहीं। राम सरन सब गे मन माहीं॥ १॥

देवगणोंसहित देवराज इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब बना-बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बनता। तब वे सब मन-ही-मन श्रीरामजीकी शरण गये॥ १॥

बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥ २॥

फिर वे विचार करके आपसमें कहने लगे कि श्रीरघुनाथजी तो भक्तकी भक्तिके वश हैं। अम्बरीष और दुर्वासाकी [घटना] याद करके तो देवता और इन्द्र बिल्कुल ही निराश हो गये ॥ २ ॥

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा ॥ ३ ॥

पहले देवताओंने बहुत समयतक दुःख सहे। तब भक्त प्रह्लादने ही नृसिंह भगवान्‌को प्रकट किया था। सब देवता परस्पर कानोंसे लग-लगकर और सिर धुनकर कहते हैं कि अब (इस बार) देवताओंका काम भरत-जीके हाथ है ॥ ३ ॥

आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि ॥ ४ ॥

हे देवताओ! और कोई उपाय नहीं दिखायी देता। श्रीरामजी अपने श्रेष्ठ सेवकोंकी सेवाको मानते हैं (अर्थात् उनके भक्तकी कोई सेवा करता है तो उसपर बहुत प्रसन्न होते हैं) अतएव अपने गुण और शीलसे श्रीरामजीको वशमें करनेवाले भरतजीका ही सब लोग अपने-अपने हृदयमें प्रेमसहित स्मरण करो ॥ ४ ॥

दो०—सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु ॥ २६५ ॥

देवताओंका मत सुनकर देवगुरु बृहस्पतिजीने कहा—अच्छा विचार किया, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं। भरतजीके चरणोंका प्रेम जगत्‌में समस्त शुभ मङ्गलोंका मूल है ॥ २६५ ॥

चौ०—सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरत भगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥ १ ॥

सीतानाथ श्रीरामजीके सेवककी सेवा सैकड़ों कामधेनुओंके समान सुन्दर है। तुम्हारे मनमें भरतजीकी भक्ति आयी है, तो अब सोच छोड़ दो। विधाताने बात बना दी ॥ १ ॥

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ ॥
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं ॥ २ ॥

हे देवराज! भरतजीका प्रभाव तो देखो। श्रीरघुनाथजी सहज स्वभावसे ही उनके पूर्णरूपसे वशमें हैं। हे देवताओ! भरतजीको श्रीराम-

चन्द्रजीकी परछाईं (परछाईंकी भाँति उनका अनुसरण करनेवाला) जानकर मन स्थिर करो, डरकी बात नहीं है ॥ २ ॥

सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू । अंतरजामी प्रभुहि सँकोचू ॥
निज सिर भारु भरत जियँ जाना । करत कोटि बिधि उर अनुमाना ॥ ३ ॥

देवगुरु बृहस्पतिजी और देवताओंकी सम्मति (आपसका विचार) और उनका सोच सुनकर अन्तर्यामी प्रभु श्रीरामजीको संकोच हुआ । भरतजीने अपने मनमें सब बोझा अपने ही सिर जाना और वे हृदयमें करोड़ों (अनेकों) प्रकारके अनुमान (विचार) करने लगे ॥ ३ ॥

करि बिचारु मन दीन्ही ठीका । राम रजायस आपन नीका ॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा । छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ॥ ४ ॥

सब तरहसे विचार करके अन्तमें उन्होंने मनमें यही निश्चय किया कि श्रीरामजीकी आज्ञामें ही अपना कल्याण है । उन्होंने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रक्खा । यह कुछ कम कृपा और स्नेह नहीं किया । (अर्थात् अत्यन्त ही अनुग्रह और स्नेह किया) ॥ ४ ॥

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ ॥ २६६ ॥

श्रीजानकीनाथजीने सब प्रकारसे मुझपर अत्यन्त अपार अनुग्रह किया । तदनन्तर भरतजी दोनों करकमलोंको जोड़कर प्रणाम करके बोले—॥ २६६ ॥

चौ०—कहौं कहावौं का अब स्वामी । कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला । मिटी मलिन मन कलपित सूला ॥ १ ॥

हे स्वामी ! हे कृपाके समुद्र ! हे अन्तर्यामी ! अब मैं [अधिक] क्या कहूँ और क्या कहाऊँ ? गुरु महाराजको प्रसन्न और स्वामीको अनुकूल जानकर मेरे मलिन मनकी कल्पित पीड़ा मिट गयी ॥ १ ॥

अपडर डरेउँ न सोच समूलें । रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें ॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई । बिधि गति बिषम काल कठिनाई ॥ २ ॥

मैं मिथ्या डरसे ही डर गया था । मेरे सोचकी जड़ ही न थी । दिशा भूल जानेपर हे देव ! सूर्यका दोष नहीं है । मेरा दुर्भाग्य, माताकी कुटिलता, विधाताकी टेढ़ी चाल और कालकी कठिनता, ॥ २ ॥

पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला । प्रनतपाल पन आपन पाला ॥

यह नइ रीति न राउरि होई । लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई ॥ ३ ॥

इन सबने मिलकर पैर रोपकर (प्रण करके) मुझे नष्ट कर दिया था। परन्तु शरणागतके रक्षक आपने अपना [शरणागतकी रक्षाका] प्रण निबाहा (मुझे बचा लिया)। यह आपकी कोई नयी रीति नहीं है। यह लोक और वेदोंमें प्रकट है, छिपी नहीं है ॥ ३ ॥

जगु अनभल भल एकु गोसाईं । कहिअ होइ भल कासु भलाईं ॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ । सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ॥ ४ ॥

सारा जगत् बुरा [करनेवाला] हो; किन्तु हे स्वामी! केवल एक आप ही भले (अनुकूल) हों, तो फिर कहिये किसकी भलाईसे भला हो सकता है! हे देव! आपका स्वभाव कल्पवृक्षके समान है; वह न कभी किसीके सम्मुख (अनुकूल) है, न विमुख (प्रतिकूल) ॥ ४ ॥

दो०–जाइ निकट पहिचानि तरु छाहँ समनि सब सोच ।
मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच ॥ २६७ ॥

उस वृक्ष (कल्पवृक्ष) को पहचानकर जो उसके पास जाय, तो उसकी छाया ही सारी चिन्ताओंका नाश करनेवाली है। राजा-रंक, भले-बुरे जगत्में सभी उससे माँगते ही मनचाही वस्तु पाते हैं ॥ २६७ ॥

चौ०–लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू । मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू ॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई । जन हित प्रभु चित छोभु न होई ॥ १ ॥

गुरु और स्वामीका सब प्रकारसे स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मनमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा। हे दयाकी खान! अब वही कीजिये जिससे दासके लिये प्रभुके चित्तमें क्षोभ (किसी प्रकारका विचार) न हो ॥ १ ॥

जो सेवकु साहिबहि सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥ २ ॥

जो सेवक स्वामीको संकोचमें डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवकका हित तो इसीमें है कि वह समस्त सुखों और लोभोंको छोड़कर स्वामीकी सेवा ही करे ॥ २ ॥

स्वारथु नाथ फिरें सबही का । किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू । सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥ ३ ॥

हे नाथ! आपके लौटनेमें सभीका स्वार्थ है, और आपकी आज्ञा

पालन करनेमें करोड़ों प्रकारसे कल्याण है। यही स्वार्थ और परमार्थका सार (निचोड़) है, समस्त पुण्योंका फल और सम्पूर्ण शुभ गतियोंका शृङ्गार है ॥ ३ ॥

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी ॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना ॥ ४ ॥

हे देव! आप मेरी एक विनती सुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा ही कीजिये। राजतिलककी सब सामग्री सजाकर लायी गयी है, जो प्रभुका मन माने तो उसे सफल कीजिये (उसका उपयोग कीजिये) ॥ ४ ॥

दो०—सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ॥ २६८ ॥

छोटे भाई शत्रुघ्नसमेत मुझे वनमें भेज दीजिये और [अयोध्या लौटकर] सबको सनाथ कीजिये। नहीं तो किसी तरह भी (यदि आप अयोध्या जानेको तैयार न हों) हे नाथ! लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयोंको लौटा दीजिये और मैं आपके साथ चलूँ ॥ २६८ ॥

चौ०—नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई ॥ १ ॥

अथवा हम तीनों भाई वन चले जायँ और हे श्रीरघुनाथजी! आप श्रीसीताजीसहित [अयोध्याको] लौट जाइये। हे दयासागर! जिस प्रकारसे प्रभुका मन प्रसन्न हो, वही कीजिये ॥ १ ॥

देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू ॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत कें चित चेतू ॥ २ ॥

हे देव! आपने सारा भार (जिम्मेवारी) मुझपर रख दिया। पर मुझमें न तो नीतिका विचार है, न धर्मका। मैं तो अपने स्वार्थके लिये सब बातें कह रहा हूँ। आर्त (दुःखी) मनुष्यके चित्तमें चेत (विवेक) नहीं रहता ॥ २ ॥

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई ॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू ॥ ३ ॥

स्वामीकी आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवकको देखकर लज्जा भी लजा जाती है। मैं अवगुणोंका ऐसा अथाह समुद्र हूँ [कि प्रभुको उत्तर दे रहा हूँ]। किन्तु स्वामी (आप) स्नेहवश साधु कहकर मुझे सराहते हैं ॥

अब कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाइँ न पावा ॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ । जग मंगल हित एक उपाऊ ॥ ४ ॥

हे कृपालु ! अब तो वही मत मुझे भाता है, जिससे स्वामीका मन संकोच न पावे । प्रभुके चरणोंकी शपथ है, मैं सत्यभावसे कहता हूँ, जगत्‌के कल्याणके लिये एक यही उपाय है ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब ।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब ॥ २६९ ॥

प्रसन्न मनसे संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब लोग सिर चढ़ा-चढ़ाकर [पालन] करेंगे और सब उपद्रव और उलझनें मिट जायँगी ॥ २६९ ॥

चौ०—भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजस बस अवध नेवासी । प्रमुदित मन तापस बनबासी ॥ १ ॥

भरतजीके पवित्र वचन सुनकर देवता हर्षित हुए और 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओंने फूल बरसाये । अयोध्यानिवासी असमंजसके वश हो गये [कि देखें अब श्रीरामजी क्या कहते हैं] । तपस्वी तथा वनवासी लोग [श्रीरामजीके वनमें बने रहनेकी आशासे] मनमें परम आनन्दित हुए ॥ १ ॥

चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची । प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥
जनक दूत तेहि अवसर आए । मुनि बसिष्ठँ सुनि बेगि बोलाए ॥ २ ॥

किन्तु संकोची श्रीरघुनाथजी चुप ही रह गये । प्रभुकी यह स्थिति (मौन) देख सारी सभा सोचमें पड़ गयी । उसी समय जनकजीके दूत आये, यह सुनकर मुनि वसिष्ठजीने उन्हें तुरंत बुलवा लिया ॥ २ ॥

करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे । बेषु देखि भए निपट दुखारे ॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता । कहहु बिदेह भूप कुसलाता ॥ ३ ॥

उन्होंने [आकर] प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजीको देखा । उनका [मुनियोंका-सा] वेष देखकर वे बहुत ही दुखी हुए । मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने दूतोंसे बात पूछी कि राजा जनकका कुशल-समाचार कहो ॥ ३ ॥

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा । बोले चर बर जोरें हाथा ॥
बूझब राउर सादर साईं । कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं ॥ ४ ॥

यह (मुनिका कुशलप्रश्न) सुनकर सकुचाकर पृथ्वीपर मस्तक

नवाकर वे श्रेष्ठ दूत हाथ जोड़कर बोले—हे स्वामी! आपका आदरके साथ पूछना, यही हे गोसाईं! कुशलका कारण हो गया ॥ ४ ॥

दो०—नाहिं त कोसल नाथ कें साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें जगु सब भयउ अनाथ ॥ २७० ॥

नहीं तो हे नाथ! कुशल-क्षेम तो सब कोसलनाथ दशरथजीके साथ ही चली गयी। [उनके चले जानेसे] यों तो सारा जगत् ही अनाथ [स्वामीके बिना असहाय] हो गया, किन्तु मिथिला और अवध तो विशेषरूपसे अनाथ हो गये ॥ २७० ॥

चौ०—कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक बस बौरा ॥
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू ॥ १ ॥

अयोध्यानाथकी गति (दशरथजीका मरण) सुनकर जनकपुरवासी सभी लोग शोकवश बावले हो गये (सुध-बुध भूल गये)। उस समय जिन्होंने विदेहको [शोकमग्न] देखा, उनमेंसे किसीको ऐसा न लगा कि उनका विदेह (देहाभिमानरहित) नाम सत्य है। [क्योंकि देहाभिमानसे शून्य पुरुषको शोक कैसा?] ॥ १ ॥

रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि ॥
भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू ॥ २ ॥

रानीकी कुचाल सुनकर राजा जनकजीको कुछ सूझ न पड़ा, जैसे मणिके बिना साँपको नहीं सूझता। फिर भरतजीको राज्य और श्रीरामचन्द्रजीको वनवास सुनकर मिथिलेश्वर जनकजीके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ ॥ २ ॥

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ ॥ ३ ॥

राजाने विद्वानों और मन्त्रियोंके समाजसे पूछा कि विचारकर कहिये, आज (इस समय) क्या करना उचित है? अयोध्याकी दशा समझकर और दोनों प्रकारसे असमंजस जानकर 'चलिये या रहिये?' किसीने कुछ नहीं कहा ॥ ३ ॥

नृपहिं धीर धरि हृदयँ बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी ॥
बूझि भरत सति भाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ ॥ ४ ॥

[जब किसीने कोई सम्मति नहीं दी] तब राजाने धीरज धर हृदयमें

विचारकर चार चतुर गुप्तचर (जासूस) अयोध्याको भेजे [और उनसे कह दिया कि] तुमलोग [श्रीरामजीके प्रति] भरतजीके सद्भाव (अच्छे भाव, प्रेम) या दुर्भाव (बुरा भाव, विरोध) का [यथार्थ] पता लगाकर जल्दी लौट आना, किसीको तुम्हारा पता न लगने पावे ॥ ४ ॥

दो०–गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति ॥२७१॥

गुप्तचर अवधको गये और भरतजीका ढंग जानकर और उनकी करनी देखकर जैसे ही भरतजी चित्रकूटको चले, वे तिरहुत (मिथिला) को चल दिये ॥ २७१ ॥

चौ०–दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी ॥
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेहँ बिकल मति ॥ १ ॥

[गुप्त] दूतोंने आकर राजा जनकजीकी सभामें भरतजीकी करनीका अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया। उसे सुनकर गुरु, कुटुम्बी, मन्त्री और राजा सभी सोच और स्नेहसे अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ १ ॥

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई ॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे ॥ २ ॥

फिर जनकजीने धीरज धरकर और भरतजीकी बड़ाई करके अच्छे योद्धाओं और साहनियोंको बुलाया। घर, नगर और देशमें रक्षकोंको रखकर घोड़े, हाथी, रथ आदि बहुत-सी सवारियाँ सजवायीं ॥ २ ॥

दुघरी साधि चले ततकाला। किए बिश्रामु न मग महिपाला ॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा ॥ ३ ॥

वे दुघड़िया मुहूर्त साधकर उसी समय चल पड़े। राजाने रास्तेमें कहीं विश्राम भी नहीं किया। आज ही सबेरे प्रयागराजमें स्नान करके चले हैं। जब सब लोग यमुनाजी उतरने लगे, ॥ ३ ॥

खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा ॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥ ४ ॥

तब हे नाथ ! हमें खबर लेनेको भेजा। उन्होंने (दूतोंने) ऐसा कहकर पृथ्वीपर सिर नवाया। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने कोई छः सात भीलोंको साथ देकर दूतोंको तुरंत विदा कर दिया ॥ ४ ॥

दो०—सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु ।
रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु ॥२७२॥

जनकजीका आगमन सुनकर अयोध्याका सारा समाज हर्षित हो गया। श्रीरामजीको बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र तो विशेषरूपसे सोचके वशमें हो गये ॥ २७२ ॥

चौ०—गरइ गलानि कुटिल कैकेई । काहि कहै केहि दूषनु देई ॥
अस मन आनि मुदित नर नारी । भयउ बहोरि रहब दिन चारी ॥ १ ॥

कुटिल कैकेयी मन-ही-मन ग्लानि (पश्चात्ताप) से गली जाती है। किससे कहे और किसको दोष दे ? और सब नर-नारी मनमें ऐसा विचार-कर प्रसन्न हो रहे हैं कि [अच्छा हुआ, जनकजीके आनेसे] चार (कुछ) दिन और रहना हो गया ॥ १ ॥

एहि प्रकार गत बासर सोऊ । प्रात नहान लाग सबु कोऊ ॥
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी । गनप गौरि तिपुरारि तमारी ॥ २ ॥

इस तरह वह दिन भी बीत गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सब कोई स्नान करने लगे। स्नान करके सब नर-नारी गणेशजी, गौरीजी, महादेवजी और सूर्य भगवान्‌की पूजा करते हैं ॥ २ ॥

रमा रमन पद बंदि बहोरी । बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा रामु जानकी रानी । आनँद अवधि अवध रजधानी ॥ ३ ॥

फिर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके चरणोंकी वन्दना करके, दोनों हाथ जोड़कर आँचल पसारकर विनती करते हैं कि श्रीरामजी राजा हों, जानकी-जी रानी हों तथा राजधानी अयोध्या आनन्दकी सीमा होकर— ॥ ३ ॥

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा । भरतहि रामु करहुँ जुबराजा ॥
एहि सुख सुधाँ सींचि सब काहू । देव देहु जग जीवन लाहू ॥ ४ ॥

फिर समाजसहित सुखपूर्वक बसे और श्रीरामजी भरतजीको युवराज बनावें। हे देव ! इस सुखरूपी अमृतसे सींचकर सब किसीको जगत्‌में जीनेका लाभ दीजिये ॥ ४ ॥

दो०—गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ ॥२७३॥

गुरु, समाज और भाइयोंसमेत श्रीरामजीका राज्य अवधपुरीमें हो

और श्रीरामजीके राजा रहते ही हमलोग अयोध्यामें मरें ! सब कोई यही माँगते हैं ॥ २७३ ॥

चौ०—सुनि सनेहमय पुरजन बानी । निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी ॥
एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन ॥ १ ॥

अयोध्यावासियोंकी प्रेममयी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि भी अपने योग और वैराग्यकी निन्दा करते हैं। अवधवासी इस प्रकार नित्यकर्म करके श्रीरामजीको पुलकित शरीर हो प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

ऊँच नीच मध्यम नर नारी । लहहिं दरसु निज निज अनुहारी ॥
सावधान सबही सनमानहिं । सकल सराहत कृपानिधानहिं ॥ २ ॥

ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणियोंके स्त्री-पुरुष अपने-अपने भावके अनुसार श्रीरामजीका दर्शन प्राप्त करते हैं। श्रीरामचन्द्रजी सावधानीके साथ सबका सम्मान करते हैं, और सभी कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीकी सराहना करते हैं ॥ २ ॥

लरिकाइहि तें रघुबर बानी । पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील सकोच सिंधु रघुराऊ । सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥ ३ ॥

श्रीरामजीकी लड़कपनसे ही यह बान है कि वे प्रेमको पहचानकर नीतिका पालन करते हैं। श्रीरघुनाथजी शील और संकोचके समुद्र हैं। वे सुन्दर मुखके [या सबके अनुकूल रहनेवाले], सुन्दर नेत्रवाले [या सबको कृपा और प्रेमकी दृष्टिसे देखनेवाले] और सरलस्वभाव हैं ॥ ३ ॥

कहत राम गुन गन अनुरागे । सब निज भाग सराहन लागे ॥
हम सम पुन्य पुंज जग थोरे । जिन्हहि रामु जानत करि मोरे ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके गुणसमूहोंको कहते-कहते सब लोग प्रेममें भर गये और अपने भाग्यकी सराहना करने लगे कि जगत्में हमारे समान पुण्यकी बड़ी पूँजीवाले थोड़े ही हैं; जिन्हें श्रीरामजी अपना करके जानते हैं (ये मेरे हैं ऐसा जानते हैं) ॥ ४ ॥

दो०—प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु ।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु ॥२७४॥

उस समय सब लोग प्रेममें मग्न हैं। इतनेमें ही मिथिलापति जनकजीको आते हुए सुनकर सूर्यकुलरूपी कमलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजी सभासहित आदरपूर्वक जल्दीसे उठ खड़े हुए ॥ २७४ ॥

चौ०—आइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥ १॥

भाई, मन्त्री, गुरु और पुरवासियोंको साथ लेकर श्रीरघुनाथजी आगे (जनकजीकी अगवानीमें) चले। जनकजीने ज्यों ही पर्वतश्रेष्ठ कामदनाथको देखा, त्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड़ दिया (पैदल चलना शुरू कर दिया)॥ १॥

राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥ २॥

श्रीरामजीके दर्शनकी लालसा और उत्साहके कारण किसीको रास्तेकी थकावट और क्लेश जरा भी नहीं है। मन तो वहाँ है जहाँ श्रीराम और जानकीजी हैं। बिना मनके शरीरके सुख-दुःखकी सुध किसको हो?॥ २॥

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती॥
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥ ३॥

जनकजी इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाजसहित उनकी बुद्धि प्रेममें मतवाली हो रही है। निकट आये देखकर सब प्रेममें भर गये और आदरपूर्वक आपसमें मिलने लगे॥ ३॥

लगे जनक मुनिजन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लवाइ समेत समाजहि॥ ४॥

जनकजी [वसिष्ठ आदि अयोध्यावासी] मुनियोंके चरणोंकी वन्दना करने लगे और श्रीरामचन्द्रजीने [शतानन्द आदि जनकपुरवासी] ऋषियोंको प्रणाम किया। फिर भाइयोंसमेत श्रीरामजी राजा जनकजीसे मिलकर उन्हें समाजसहित अपने आश्रमको लिवा चले॥ ४॥

दो०—आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहिं रघुनाथु॥२७५॥

श्रीरामजीका आश्रम शान्तरसरूपी पवित्र जलसे परिपूर्ण समुद्र है। जनकजीकी सेना (समाज) मानो करुणा (करुणरस) की नदी है, जिसे श्रीरघुनाथजी [उस आश्रमरूपी शान्तरसके समुद्रमें मिलानेके लिये] लिये जा रहे हैं॥ २७५॥

चौ०—बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा॥ १॥

यह करुणाकी नदी [इतनी बढ़ी हुई है कि] ज्ञान-वैराग्यरूपी किनारोंको डुबाती जाती है। शोकभरे वचन नद और नाले हैं, जो इस नदीमें मिलते हैं; और सोचकी लंबी साँसें (आहें) ही वायुके झकोरोंसे उठनेवाली तरङ्गें हैं जो धैर्यरूपी किनारेके उत्तम वृक्षोंको तोड़ रही हैं ॥ १ ॥

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अबर्त अपारा॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा॥ २ ॥

भयानक विषाद (शोक) ही उस नदीकी तेज धारा है। भय और भ्रम (मोह) ही उसके असंख्य भँवर और चक्र हैं। विद्वान् मल्लाह हैं, विद्या ही बड़ी नाव है। परन्तु वे उसे खे नहीं सकते हैं, (उस विद्याका उपयोग नहीं कर सकते हैं,) किसीको उसकी अटकल ही नहीं आती है॥२॥

बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥ ३ ॥

वनमें विचरनेवाले बेचारे कोल-किरात ही यात्री हैं, जो उस नदीको देखकर हृदयमें हारकर थक गये हैं। यह करुणा-नदी जब आश्रम-समुद्रमें जाकर मिली, तो मानो वह समुद्र अकुला उठा (खौल उठा) ॥ ३ ॥

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही॥ ४ ॥

दोनों राज-समाज शोकसे व्याकुल हो गये। किसीको न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथके रूप, गुण और शीलकी सराहना करते हुए सब रो रहे हैं और शोकसमुद्रमें डुबकी लगा रहे हैं ॥ ४ ॥

छं०—अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

शोकसमुद्रमें डुबकी लगाते हुए सभी स्त्री-पुरुष महान् व्याकुल होकर सोच (चिन्ता) कर रहे हैं। वे सब विधाताको दोष देते हुए क्रोधयुक्त होकर कह रहे हैं कि प्रतिकूल विधाताने यह क्या किया ! तुलसीदासजी कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिगणोंमें कोई भी समर्थ नहीं है जो उस समय विदेह (जनकराज) की दशा देखकर प्रेमकी नदीको पार कर सके (प्रेममें मग्न हुए बिना रह सके)।

सो०—किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह ।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन ॥२७६॥

जहाँ-तहाँ श्रेष्ठ मुनियोंने लोगोंको अपरिमित उपदेश दिये और वसिष्ठजीने विदेह (जनकजी) से कहा—हे राजन् ! आप धैर्य धारण कीजिये ॥ २७६ ॥

चौ०—जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा । बचन किरन मुनि कमल बिकासा ॥
तेहि कि मोह ममता निअराई । यह सिय राम सनेह बड़ाई ॥ १ ॥

जिन राजा जनकका ज्ञानरूपी सूर्य भव (आवागमन) रूपी रात्रिका नाश कर देता है, और जिनकी वचनरूपी किरणें मुनिरूपी कमलोंको खिला देती हैं, (आनन्दित करती हैं), क्या मोह और ममता उनके निकट भी आ सकते हैं ! यह तो श्रीसीतारामजीके प्रेमकी महिमा है ! [अर्थात् राजा जनककी यह दशा श्रीसीतारामजीके अलौकिक प्रेमके कारण हुई, लौकिक मोह-ममताके कारण नहीं । जो लौकिक मोह-ममताको पार कर चुके हैं उनपर भी श्रीसीतारामजीका प्रेम अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहता] ॥

बिषई साधक सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभाँ बड़ आदर तासू ॥ २ ॥

विषयी, साधक और ज्ञानवान् सिद्ध पुरुष—जगत्में ये तीन प्रकारके जीव वेदोंने बताये हैं । इन तीनोंमें जिसका चित्त श्रीरामजीके स्नेहसे सरस (सराबोर) रहता है, साधुओंकी सभामें उसीका बड़ा आदर होता है ॥२॥

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू । करनधार बिनु जिमि जल जानू ॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए । राम घाट सब लोग नहाए ॥ ३ ॥

श्रीरामजीके प्रेमके बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे कर्णधारके बिना जहाज । वसिष्ठजीने विदेहराज (जनकजी) को बहुत प्रकारसे समझाया । तदनन्तर सब लोगोंने श्रीरामजीके घाटपर स्नान किया ॥ ३ ॥

सकल सोक संकुल नर नारी । सो बासरु बीतेउ बिनु बारी ॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू । प्रिय परिजन कर कौन बिचारू ॥ ४ ॥

स्त्री-पुरुष सब शोकसे पूर्ण थे । वह दिन बिना ही जलके बीत गया (भोजनकी बात तो दूर रही, किसीने जलतक नहीं पिया) । पशु, पक्षी और हिरनोंतकने कुछ आहार नहीं किया । तब प्रियजनों एवं कुटुम्बियों-का तो विचार ही क्या किया जाय ? ॥ ४ ॥

दो०—दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृस गात ॥२७७॥

निमिराज जनकजी और रघुराज रामचन्द्रजी तथा दोनों ओरके समाजने दूसरे दिन सबेरे स्नान किया और सब बड़के वृक्षके नीचे जा बैठे। सबके मन उदास और शरीर दुबले हैं ॥ २७७ ॥

चौ०—जे महिसुर दसरथ पुर बासी। जे मिथिलापति नगर निवासी॥
हंस बंस गुरु जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा॥ १ ॥

जो दशरथजीकी नगरी अयोध्याके रहनेवाले और जो मिथिलापति जनकजीके नगर जनकपुरके रहनेवाले ब्राह्मण थे, तथा सूर्यवंशके गुरु वसिष्ठजी तथा जनकजीके पुरोहित शतानन्दजी, जिन्होंने सांसारिक अभ्युदयका मार्ग तथा परमार्थका मार्ग छान डाला था ॥ १ ॥

लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानीं। समुझाई सब सभा सुबानीं॥ २ ॥

वे सब धर्म, नीति, वैराग्य तथा विवेकयुक्त अनेकों उपदेश देने लगे। विश्वामित्रजीने पुरानी कथाएँ (इतिहास) कह-कहकर सारी सभाको सुन्दर वाणीसे समझाया ॥ २ ॥

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई॥ ३ ॥

तब श्रीरघुनाथजीने विश्वामित्रजीसे कहा कि हे नाथ! कल सब लोग बिना जल पिये ही रह गये थे [अब कुछ आहार करना चाहिये]। विश्वामित्रजीने कहा कि श्रीरघुनाथजी उचित ही कह रहे हैं। ढाई पहर दिन [आज भी] बीत गया ॥ ३ ॥

रिषि रुख लखि कह तेरहुतिराजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥
कहा भूप भल सबहि सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥ ४ ॥

विश्वामित्रजीका रुख देखकर तिरहुतराज जनकजीने कहा—यहाँ अन्न खाना उचित नहीं है। राजाका सुन्दर कथन सबके मनको अच्छा लगा। सब आज्ञा पाकर नहाने चले ॥ ४ ॥

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।
लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार ॥२७८॥

उसी समय अनेकों प्रकारके बहुतसे फल, फूल, पत्ते, मूल आदि बहँगियों और बोझोंमें भर-भरकर वनवासी (कोल-किरात) लोग ले आये ॥२७८॥

चौ०—कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनँद अनुरागा॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे सब पर्वत मनचाही वस्तु देनेवाले हो गये। वे देखनेमात्रसे ही दुःखोंको सर्वथा हर लेते थे। वहाँके तालाबों, नदियों, वन और पृथ्वीके सभी भागोंमें मानो आनन्द और प्रेम उमड़ रहा है॥१॥

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू॥ २ ॥

बेलें और वृक्ष सभी फल और फूलोंसे युक्त हो गये। पक्षी, पशु और भौंरे अनुकूल बोलने लगे। उस अवसरपर वनमें बहुत उत्साह (आनन्द) था, सब किसीको सुख देनेवाली शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चल रही थी॥

जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई॥ ३ ॥
देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना॥ ४ ॥

वनकी मनोहरता वर्णन नहीं की जा सकती, मानो पृथ्वी जनकजीकी पहुनाई कर रही है। तब जनकपुरवासी सब लोग नहा-नहाकर श्रीरामचन्द्रजी, जनकजी और मुनिकी आज्ञा पाकर, सुन्दर वृक्षोंको देख-देखकर प्रेममें भरकर जहाँ-तहाँ उतरने लगे। पवित्र, सुन्दर और अमृतके समान [स्वादिष्ट] अनेकों प्रकारके पत्ते, फल, मूल और कन्द—॥ ३-४ ॥

दो०—सादर सब कहँ रामगुर पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फरहार॥२७९॥

श्रीरामजीके गुरु वशिष्ठजीने सबके पास बोझे भर-भरकर आदरपूर्वक भेजे। तब वे पितर, देवता, अतिथि और गुरुकी पूजा करके फलाहार करने लगे॥ २७९ ॥

चौ०—एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी॥
दुहु समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥ १ ॥

इस प्रकार चार दिन बीत गये। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सभी नर-

नारी सुखी हैं। दोनों समाजोंके मनमें ऐसी इच्छा है कि श्रीसीतारामजीके बिना लौटना अच्छा नहीं है ॥ १ ॥

सीता राम संग बनबासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू॥
परिहरि लखन रामु बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥ २ ॥

श्रीसीतारामजीके साथ वनमें रहना करोड़ों देवलोकोंके [निवासके] समान सुखदायक है। श्रीलक्ष्मणजी, श्रीरामजी और श्रीजानकीजीको छोड़कर जिसको घर अच्छा लगे, विधाता उसके विपरीत हैं ॥ २ ॥

दाहिन दइउ होइ जब सबही। राम समीप बसिअ बन तबही॥
मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला। राम दरसु मुद मंगल माला॥ ३ ॥

जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी श्रीरामजीके पास वनमें निवास हो सकता है। मन्दाकिनीजीका तीनों समय स्नान और आनन्द तथा मङ्गलोंकी माला (समूह) रूप श्रीरामका दर्शन, ॥ ३ ॥

अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमिअ सम कंद मूल फल॥
सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता॥ ४ ॥

श्रीरामजीके पर्वत (कामदनाथ), वन और तपस्वियोंके स्थानोंमें घूमना और अमृतके समान कन्द, मूल, फलोंका भोजन। चौदह वर्ष सुखके साथ पलके समान हो जायँगे (बीत जायँगे), जाते हुए जान ही न पड़ेंगे ॥

दो०-एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु।
सहज सुभायँ समाज दुहु राम चरन अनुरागु॥२८०॥

सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुखके योग्य नहीं हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ? दोनों समाजोंका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सहज स्वभावसे ही प्रेम है ॥ २८० ॥

चौ०-एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीय मातु तेहि समय पठाईं। दासीं देखि सुअवसरु आईं॥ १ ॥

इस प्रकार सब मनोरथ कर रहे हैं। उनके प्रेमयुक्त वचन सुनते ही [सुननेवालोंके] मनोंको हर लेते हैं। उसी समय सीताजीकी माता श्रीसुनयनाजीकी भेजी हुई दासियाँ [कौसल्याजी आदिके मिलनेका] सुन्दर अवसर देखकर आयीं ॥ १ ॥

सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनकराज रनिवासू॥
कौसल्याँ सादर सनमानी। आसन दिए समय सम आनी॥ २ ॥

उनसे यह सुनकर कि सीताकी सब सासुएँ इस समय फुरसतमें हैं, जनकराजका रनिवास उनसे मिलने आया। कौसल्याजीने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयोचित आसन लाकर दिये ॥ २ ॥

सीलु सनेहु सकल दुहु ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन ॥ ३ ॥

दोनों ओर सबके शील और प्रेमको देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं। शरीर पुलकित और शिथिल हैं; और नेत्रोंमें [शोक और प्रेमके] आँसू हैं। सब अपने [पैरोंके] नखोंसे जमीन कुरेदने और सोचने लगीं ॥ ३ ॥

सब सिय राम प्रीति कि सि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति ॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी ॥ ४ ॥

सभी श्रीसीतारामजीके प्रेमकी मूर्ति-सी हैं, मानो स्वयं करुणा ही बहुत-से वेष (रूप) धारण करके विसूर रही हो (दुःख कर रही हो)। सीताजीकी माता सुनयनाजीने कहा—विधाताकी बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूधके फेन-जैसी कोमल वस्तुको वज्रकी टाँकीसे फोड़ रहा है (अर्थात् जो अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं उनपर विपत्ति-पर-विपत्ति ढहा रहा है) ॥ ४ ॥

दो०—सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥२८१॥

अमृत केवल सुननेमें आता है और विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाताकी सभी करतूतें भयङ्कर हैं। जहाँ-तहाँ कौए, उल्लू और बगुले ही [दिखायी देते] हैं; हंस तो एक मानसरोवरमें ही है ॥२८१॥

चौ०—सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी ॥ १ ॥

यह सुनकर देवी सुमित्राजी शोकके साथ कहने लगीं—विधाताकी चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है, जो सृष्टिको उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाताकी बुद्धि बालकोंके खेलके समान भोली (विवेकशून्य) है ॥ १ ॥

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता ॥ २ ॥

कौसल्याजीने कहा—किसीका दोष नहीं है। दुःख-सुख, हानि-लाभ सब कर्मके अधीन हैं। कर्मकी गति कठिन (दुर्विज्ञेय) है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ और अशुभ सभी फलोंका देनेवाला है ॥ २ ॥

ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥ ३॥

ईश्वरकी आज्ञा सभीके सिरपर है। उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और लय (संहार) तथा अमृत और विषके भी सिरपर है (ये सब भी उसीके अधीन हैं)। हे देवि! मोहवश सोच करना व्यर्थ है। विधाताका प्रपञ्च ऐसा ही अचल और अनादि है ॥ ३ ॥

भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी॥ ४॥

महाराजके मरने और जीनेकी बातको हृदयमें याद करके जो चिन्ता करती हैं, वह तो हे सखी! हम अपने ही हितकी हानि देखकर (स्वार्थवश) करती हैं। सीताजीकी माताने कहा—आपका कथन उत्तम और सत्य है। आप पुण्यात्माओंके सीमारूप अवधपति (महाराज दशरथजी) की ही तो रानी हैं। [फिर भला, ऐसा क्यों न कहेंगी] ॥ ४ ॥

दो०—लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥२८२॥

कौसल्याजीने दुःखभरे हृदयसे कहा—श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वनमें जायँ, इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं। मुझे तो भरतकी चिन्ता है ॥ २८२ ॥

चौ०—ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी॥
राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ॥ १॥

ईश्वरके अनुग्रह और आपके आशीर्वादसे मेरे [चारों] पुत्र और [चारों] बहुएँ गङ्गाजीके जलके समान पवित्र हैं। हे सखी! मैंने कभी श्रीरामकी सौगन्ध नहीं की। सो आज श्रीरामकी शपथ करके सत्य भावसे कहती हूँ—॥ १ ॥

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥ २॥

भरतके शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और

अच्छेपनका वर्णन करनेमें सरस्वतीजीकी बुद्धि भी हिचकती है। सीपसे कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं? ॥ २ ॥

जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा ॥
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ ॥ ३ ॥

मैं भरतको सदा कुलका दीपक जानती हूँ। महाराजने भी बार-बार मुझे यही कहा था। सोना कसौटीपर कसे जानेपर और रत्न पारखी (जौहरी) के मिलनेपर ही पहचाना जाता है। वैसे ही पुरुषकी परीक्षा समय पड़नेपर उसके स्वभावसे ही (उसका चरित्र देखकर) हो जाती है ॥ ३ ॥

अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेहँ सयानप थोरा ॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी ॥ ४ ॥

किन्तु आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है। शोक और स्नेहमें सयानापन (विवेक) कम हो जाता है (लोग कहेंगे कि मैं स्नेहवश भरतकी बड़ाई कर रही हूँ) कौसल्याजीकी गङ्गाजीके समान पवित्र करनेवाली वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेहके मारे विकल हो उठीं ॥ ४ ॥

दो०—कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देवि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि ॥२८३॥

कौसल्याजीने फिर धीरज धरकर कहा—हे देवि मिथिलेश्वरी! सुनिये, ज्ञानके भण्डार श्रीजनकजीकी प्रिया आपको कौन उपदेश दे सकता है? ॥

चौ०—रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई ॥
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। जौं यह मत मानै महीप मन ॥ १ ॥

हे रानी! मौका पाकर और राजाको अपनी ओरसे जहाँतक हो सके समझाकर कहियेगा कि लक्ष्मणको घर रख लिया जाय और भरत वनको जायँ। यदि यह राय राजाके मनमें [ठीक] जँच जाय, ॥ १ ॥

तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी ॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं ॥ २ ॥

तो भलीभाँति खूब विचारकर ऐसा यत्न करें। मुझे भरतका अत्यधिक सोच है। भरतके मनमें गूढ़ प्रेम है। उनके घर रहनेमें मुझे भलाई नहीं जान पड़ती (यह डर लगता है कि उनके प्राणोंको कोई भय न हो जाय) ॥ २ ॥

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि॥ ३॥

कौसल्याजीका स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणीको सुनकर सब रानियाँ करुणरसमें निमग्न हो गयीं। आकाशसे पुष्पवर्षाकी झड़ी लग गयी और धन्य-धन्यकी ध्वनि होने लगी। सिद्ध, योगी और मुनि स्नेहसे शिथिल हो गये॥ ३॥

सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्राँ कहेऊ॥
देबि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती॥ ४॥

सारा रनिवास देखकर थकित रह गया (निस्तब्ध हो गया)। तब सुमित्राजीने धीरज धरके कहा कि हे देवि! दो घड़ी रात बीत गयी है। यह सुनकर श्रीरामजीकी माता कौसल्याजी प्रेमपूर्वक उठीं॥ ४॥

दो०—बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेहँ सतिभाय।
हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय॥२८४॥

और प्रेमसहित सद्भावसे बोलीं—अब आप शीघ्र डेरेको पधारिये। हमारे तो अब ईश्वर ही गति हैं अथवा मिथिलेश्वर जनकजी सहायक हैं॥ २८४॥

चौ०—लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गह पाय पुनीता॥
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ घरनि राम महतारी॥ १॥

कौसल्याजीके प्रेमको देखकर और उनके विनम्र वचनोंको सुनकर जनकजीकी प्रिय पत्नीने उनके पवित्र चरण पकड़ लिये और कहा—हे देवि! आप राजा दशरथजीकी रानी और श्रीरामजीकी माता हैं। आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है॥ १॥

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं॥
सेवकु राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेसु भवानी॥ २॥

प्रभु अपने नीच जनोंका भी आदर करते हैं। अग्नि धुएँको और पर्वत तृण (घास) को अपने सिरपर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणीसे आपके सेवक हैं और सदा सहायक तो श्रीमहादेव-पार्वतीजी हैं॥ २॥

रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै॥
रामु जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥ ३॥

आपका सहायक होने योग्य जगत्‌में कौन है ? दीपक सूर्यकी सहायता करने जाकर कहीं शोभा पा सकता है ? श्रीरामचन्द्रजी वनमें जाकर देवताओंका कार्य करके अवधपुरीमें अचल राज्य करेंगे ॥ ३ ॥

अमर नाग नर राम बाहुबल । सुख बसिहहिं अपनें अपनें थल ॥
यह सब जागबलिक कहि राखा । देबि न होइ मुधा मुनि भाषा ॥ ४ ॥

देवता, नाग और मनुष्य सब श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके बलपर अपने-अपने स्थानों (लोकों) में सुखपूर्वक बसेंगे । यह सब याज्ञवल्क्य मुनिने पहलेहीसे कह रक्खा है । हे देवि ! मुनिका कथन व्यर्थ (झूठा) नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

दो०—अस कहि पग परि पेम अति सिय हित बिनय सुनाइ ।
सिय समेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ ॥२८५॥

ऐसा कहकर बड़े प्रेमसे पैरों पड़कर सीताजी [को साथ भेजने] के लिये विनती करके और सुन्दर आज्ञा पाकर तब सीताजीसमेत सीताजीकी माता डेरेको चलीं ॥ २८५ ॥

चौ०—प्रिय परिजनहि मिली बैदेही । जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही ॥
तापस बेष जानकी देखी । भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी ॥ १ ॥

जानकीजी अपने प्यारे कुटुम्बियोंसे—जो जिस योग्य था, उससे उसी प्रकार मिलीं । जानकीजीको तपस्विनीके वेषमें देखकर सभी शोकसे अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ १ ॥

जनक राम गुर आयसु पाई । चले थलहि सिय देखी आई ॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी । पाहुनि पावन पेम प्रान की ॥ २ ॥

जनकजी श्रीरामजीके गुरु वशिष्ठजीकी आज्ञा पाकर डेरेको चले और आकर उन्होंने सीताजीको देखा । जनकजीने अपने पवित्र प्रेम और प्राणोंकी पाहुनी जानकीजीको हृदयसे लगा लिया ॥ २ ॥

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू । भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू ॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा । ता पर राम पेम सिसु सोहा ॥ ३ ॥

उनके हृदयमें [वात्सल्य] प्रेमका समुद्र उमड़ पड़ा ! राजाका मन मानो प्रयाग हो गया । उस समुद्रके अंदर उन्होंने [आदिशक्ति] सीताजीके [अलौकिक] स्नेहरूपी अक्षयवटको बढ़ते हुए देखा । उस (सीता-

जीके प्रेमरूपी वट) पर श्रीरामजीका प्रेमरूपी बालक (बालरूपधारी भगवान्) सुशोभित हो रहा है ॥ ३ ॥

चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु । बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु ॥
मोह मगन मति नहिं बिदेह की । महिमा सिय रघुबर सनेह की ॥ ४ ॥

जनकजीका ज्ञानरूपी चिरंजीवी (मार्कण्डेय) मुनि व्याकुल होकर डूबते-डूबते मानो उस श्रीरामप्रेमरूपी बालकका सहारा पाकर बच गया। वस्तुतः [ज्ञानिशिरोमणि] विदेहराजकी बुद्धि मोहमें मग्न नहीं है। यह तो श्रीसीतारामजीके प्रेमकी महिमा है [जिसने उन जैसे महान् ज्ञानीके ज्ञानको भी विकल कर दिया] ॥ ४ ॥

दो०—सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि ।
धरनिसुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि ॥ २८६ ॥

पिता-माताके प्रेमके मारे सीताजी ऐसी विकल हो गयीं कि अपनेको सँभाल न सकीं। [परन्तु परम धैर्यवती] पृथ्वीकी कन्या सीताजीने समय और सुन्दर धर्मका विचार कर धैर्य धारण किया ॥ २८६ ॥

चौ०—तापस बेष जनक सिय देखी । भयउ पेमु परितोषु बिसेषी ॥
पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ । सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ ॥ १ ॥

सीताजीको तपस्विनी-वेषमें देखकर जनकजीको विशेष प्रेम और सन्तोष हुआ। [उन्होंने कहा—] बेटी ! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिये। तेरे निर्मल यशसे सारा जगत् उज्ज्वल हो रहा है; ऐसा सब कोई कहते हैं ॥ १ ॥

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी । गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे । एहिं किए साधु समाज घनेरे ॥ २ ॥

तेरी कीर्तिरूपी नदी देवनदी गङ्गाजीको भी जीतकर [जो एक ही ब्रह्माण्डमें बहती है] करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें बह चली है। गङ्गाजीने तो पृथ्वीपर तीन ही स्थानों (हरिद्वार, प्रयागराज और गङ्गासागर) को बड़ा (तीर्थ) बनाया है। पर तेरी इस कीर्तिनदीने तो अनेकों संतसमाजरूपी तीर्थस्थान बना दिये हैं ॥ २ ॥

पितु कह सत्य सनेहँ सुबानी । सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी ॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई । सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई ॥ ३ ॥

पिता जनकजीने तो स्नेहसे सची सुन्दर वाणी कही। परन्तु अपनी

बड़ाई सुनकर सीताजी मानो संकोचमें समा गयीं। पिता-माताने उन्हें फिर हृदयसे लगा लिया और हितभरी सुन्दर सीख और आशिष दी ॥ ३ ॥

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं ॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ ॥ ४ ॥

सीताजी कुछ कहती नहीं हैं, परन्तु मनमें सकुचा रही हैं कि रातमें [सासुओंकी सेवा छोड़कर] यहाँ रहना अच्छा नहीं है। रानी सुनयनाजीने जानकीजीकी रुख देखकर (उनके मनकी बात समझकर) राजा जनकजीको जना दिया। तब दोनों अपने हृदयोंमें सीताजीके शील और स्वभावकी सराहना करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि ॥ २८७ ॥

राजा-रानीने बार-बार मिलकर और हृदयसे लगाकर तथा सम्मान करके सीताजीको विदा किया। चतुर रानीने समय पाकर राजासे सुन्दर वाणीमें भरतजीकी दशाका वर्णन किया ॥ २८७ ॥

चौ०—सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससि सारू ॥
मूदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन ॥ १ ॥

सोनेसे सुगन्ध और [समुद्रसे निकली हुई] सुधामें चन्द्रमाके सार अमृतके समान भरतजीका व्यवहार सुनकर राजाने [प्रेम-विह्वल होकर] अपने [प्रेमाश्रुओंके] जलसे भरे नेत्रोंको मूँद लिया (वे भरतजीके प्रेममें मानो ध्यानस्थ हो गये)। वे शरीरसे पुलकित हो गये और मनमें आनन्दित होकर भरतजीके सुन्दर यशकी सराहना करने लगे ॥ १ ॥

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि ॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥ २ ॥

[वे बोले—] हे सुमुखि! हे सुनयनी! सावधान होकर सुनो। भरतजीकी कथा संसारके बन्धनसे छुड़ानेवाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार—इन तीनों विषयोंमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरी [थोड़ी-बहुत] गति है (अर्थात् इनके सम्बन्धमें मैं कुछ जानता हूँ) ॥ २ ॥

सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही ॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद ॥ ३ ॥

वह (धर्म, राजनीति और ब्रह्मज्ञानमें प्रवेश रखनेवाली) मेरी बुद्धि

भरतजीकी महिमाका वर्णन तो क्या करे, छल करके भी उसकी छायातकको नहीं छू पाती । ब्रह्माजी, गणेशजी, शेषजी, महादेवजी, सरस्वतीजी, कवि, ज्ञानी, पण्डित और बुद्धिमान्—॥ ३ ॥

भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन बिमल बिभूती ॥

समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू ॥ ४ ॥

सब किसीको भरतजीके चरित्र, कीर्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझनेमें और सुननेमें सुख देनेवाले हैं और पवित्रतामें गङ्गाजीका तथा स्वाद (मधुरता) में अमृतका भी तिरस्कार करनेवाले हैं ॥४॥

दो०—निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि ।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि ॥ २८८ ॥

भरतजी असीम गुणसम्पन्न और उपमारहित पुरुष हैं । भरतजीके समान बस, भरतजी ही हैं, ऐसा जानो । सुमेरु पर्वतको क्या सेरके बराबर कह सकते हैं ! इसलिये (उन्हें किसी पुरुषके साथ उपमा देनेमें) कवि-समाजकी बुद्धि भी सकुचा गयी ॥ २८८ ॥

चौ०—अगम सबहि बरनत बरबरनी । जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ॥

भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं रामु न सकहिं बखानी ॥ १ ॥

हे श्रेष्ठ वर्णवाली ! भरतजीकी महिमाका वर्णन करना सभीके लिये वैसे ही अगम है जैसे जलरहित पृथ्वीपर मछलीका चलना । हे रानी ! सुनो; भरतजीकी अपरिमित महिमाको एक श्रीरामचन्द्रजी ही जानते हैं, किन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते ॥ १ ॥

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ । तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ ॥

बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं । सब कर भल सब के मन माहीं ॥ २ ॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भरतजीके प्रभावका वर्णन करके; फिर पत्नीके मनकी रुचि जानकर राजाने कहा—लक्ष्मणजी लौट जायँ और भरतजी वनको जायँ, इसमें सभीका भला है और यही सबके मनमें है ॥ २ ॥

देबि परंतु भरत रघुबर की । प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥

भरतु अवधि सनेह ममता की । जद्यपि रामु सीम समता की ॥ ३ ॥

परन्तु हे देवि ! भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम और एक-दूसरेपर विश्वास बुद्धि और विचारकी सीमामें नहीं आ सकता । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी समताकी सीमा हैं, तथापि भरतजी प्रेम और ममताकी सीमा हैं ॥३॥

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥ ४॥

[श्रीरामचन्द्रजीके प्रति अनन्य प्रेमको छोड़कर] भरतजीने समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखोंकी ओर स्वप्नमें भी मनसे भी नहीं ताका है। श्रीरामजीके चरणोंका प्रेम ही उनका साधन है और वही सिद्धि है। मुझे तो भरतजीका बस, यही एकमात्र सिद्धान्त जान पड़ता है॥ ४॥

दो०–भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ॥ २८९॥

राजाने बिलखकर (प्रेमसे गद्गद होकर) कहा—भरतजी भूलकर भी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको मनसे भी नहीं टालेंगे। अतः स्नेहके वश होकर चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ २८९॥

चौ०–राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥ १॥

श्रीरामजी और भरतजीके गुणोंकी प्रेमपूर्वक गणना करते [कहते-सुनते] पति-पत्नीको रात पलकके समान बीत गयी। प्रातःकाल दोनों राज-समाज जागे और नहा-नहाकर देवताओंकी पूजा करने लगे॥ १॥

गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी॥ २॥

श्रीरघुनाथजी स्नान करके गुरु वशिष्ठजीके पास गये और चरणोंकी वन्दना करके उनका रुख पाकर बोले—हे नाथ! भरत, अवधपुरवासी तथा माताएँ सब शोकसे व्याकुल और वनवाससे दुःखी हैं॥ २॥

सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रौरें हाथा॥ ३॥

मिथिलापति राजा जनकजीको भी समाजसहित क्लेश सहते बहुत दिन हो गये। इसलिये हे नाथ! जो उचित हो वही कीजिये। आपहीके हाथ सभीका हित है॥ ३॥

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा॥ ४॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी अत्यन्त ही सकुचा गये। उनका शील-स्वभाव देखकर [प्रेम और आनन्दसे] मुनि वशिष्ठजी पुलकित हो गये।

[उन्होंने खुलकर कहा—] हे राम ! तुम्हारे बिना [घर-बार आदि] सम्पूर्ण सुखोंके साज दोनों राजसमाजोंको नरकके समान हैं ॥ ४ ॥

दो०—प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम ॥२९०॥

हे राम ! तुम प्राणोंके भी प्राण, आत्माके भी आत्मा और सुखके भी सुख हो। हे तात ! तुम्हें छोड़कर जिन्हें घर सुहाता है, उन्हें विधाता विपरीत है ॥ २९० ॥

चौ०—सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू ॥ १ ॥

जहाँ श्रीरामके चरणकमलोंमें प्रेम नहीं है, वह सुख, कर्म और धर्म जल जाय। जिसमें श्रीरामप्रेमकी प्रधानता नहीं है, वह योग कुयोग है और वह ज्ञान अज्ञान है ॥ १ ॥

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं ॥
राउर आयसु सिर सबही कें। बिदित कृपालहि गति सब नीकें ॥ २ ॥

तुम्हारे बिना ही सब दुखी हैं और जो सुखी हैं वे तुम्हींसे सुखी हैं। जिस किसीके जीमें जो कुछ है तुम सब जानते हो। आपकी आज्ञा सभीके सिरपर है। कृपालु (आप) को सभीकी स्थिति अच्छी तरह मालूम है ॥ २ ॥

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ ॥
करि प्रनामु तब रामु सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए ॥ ३ ॥

अतः आप आश्रमको पधारिये। इतना कह मुनिराज स्नेहसे शिथिल हो गये। तब श्रीरामजी प्रणाम करके चले गये और ऋषि वशिष्ठजी धीरज धरकर जनकजीके पास आये ॥ ३ ॥

राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायँ सुहाए ॥
महाराज अब कीजिअ सोई। सब कर धरम सहित हित होई ॥ ४ ॥

गुरुजीने श्रीरामचन्द्रजीके शील और स्नेहसे युक्त स्वभावसे ही सुन्दर वचन राजा जनकको सुनाये [और कहा—] हे महाराज ! अब वही कीजिये जिसमें सबका धर्मसहित हित हो ॥ ४ ॥

दो०—ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल ॥ २९१ ॥

हे राजन् ! तुम ज्ञानके भण्डार, सुजान, पवित्र और धर्ममें धीर हो।

इस समय तुम्हारे बिना इस दुविधाको दूर करनेमें और कौन समर्थ है ? ॥ २९१ ॥

चौ०–सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥
सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥ १॥

मुनि वशिष्ठजीके वचन सुनकर जनकजी प्रेममें मग्न हो गये। उनकी दशा देखकर ज्ञान और वैराग्यको भी वैराग्य हो गया (अर्थात् उनके ज्ञान-वैराग्य छूट-से गये)। वे प्रेमसे शिथिल हो गये। और मनमें विचार करने लगे कि हम यहाँ आये यह अच्छा नहीं किया॥ १॥

रामहि रायँ कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥ २॥

राजा दशरथजीने श्रीरामजीको वन जानेके लिये कहा और स्वयं अपने प्रियके प्रेमको प्रमाणित (सच्चा) कर दिया (प्रियवियोगमें प्राण त्याग दिये)। परंतु हम अब इन्हें वनसे [और गहन] वनको भेजकर अपने विवेककी बड़ाईमें आनन्दित होते हुए लौटेंगे [कि हमें जरा भी मोह नहीं है; हम श्रीरामजीको वनमें छोड़कर चले आये, दशरथजीकी तरह मरे नहीं !] ॥ २॥

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बस बिकल बिसेषी॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा॥ ३॥

तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण यह सब सुन और देखकर प्रेमवश बहुत ही व्याकुल हो गये। समयका विचार करके राजा जनकजी धीरज धरकर समाजसहित भरतजीके पास चले॥ ३॥

भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे॥
तात भरत कह तेरहुति राऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ॥ ४॥

भरतजीने आकर उन्हें आगे होकर लिया (सामने आकर उनका स्वागत किया) और समयानुकूल अच्छे आसन दिये। तिरहुतराज जनकजी कहने लगे—हे तात भरत ! तुमको श्रीरामजीका स्वभाव मालूम ही है॥ ४॥

दो०–राम सत्यब्रत धरम रत सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु॥ २९२॥

श्रीरामचन्द्रजी सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं, सबका शील और स्नेह

रखनेवाले हैं। इसीलिये वे संकोचवश संकट सह रहे हैं; अब तुम जो आज्ञा दो, वह उनसे कही जाय ॥ २९२ ॥

चौ०—सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी ॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू ॥ १ ॥

भरतजी यह सुनकर पुलकितशरीर हो नेत्रोंमें जल भरकर बड़ा भारी धीरज धरकर बोले—हे प्रभो! आप हमारे पिताके समान प्रिय और पूज्य हैं। और कुलगुरु श्रीवसिष्ठजीके समान हितैषी तो माता-पिता भी नहीं हैं ॥ १ ॥

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू ॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥ २ ॥

विश्वामित्रजी आदि मुनियों और मन्त्रियोंका समाज है और आजके दिन ज्ञानके समुद्र आप भी उपस्थित हैं। हे स्वामी! मुझे अपना बच्चा, सेवक और आज्ञानुसार चलनेवाला समझकर शिक्षा दीजिये ॥ २ ॥

एहिं समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर ॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता ॥ ३ ॥

इस समाज और [पुण्य] स्थलमें आप [जैसे ज्ञानी और पूज्य] का पूछना! इसपर यदि मैं मौन रहता हूँ तो मलिन समझा जाऊँगा; और बोलना पागलपन होगा। तथापि मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ। हे तात! विधाताको प्रतिकूल जानकर क्षमा कीजियेगा ॥ ३ ॥

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना ॥
स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥ ४ ॥

वेद, शास्त्र और पुराणोंमें प्रसिद्ध है। जगत् जानता है कि सेवाधर्म बड़ा कठिन है, स्वामिधर्ममें (स्वामीके प्रति कर्तव्यपालनमें) और स्वार्थमें विरोध है। (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते)। वैर अन्धा होता है और प्रेमको ज्ञान नहीं रहता [मैं स्वार्थवश कहूँगा या प्रेमवश, दोनोंमें ही भूल होनेका भय है] ॥ ४ ॥

दो०—राखि राम रुख धरम ब्रतु पराधीन मोहि जानि।
सब कें संमत सर्ब हित करिअ पेमु पहिचानि ॥ २९३ ॥

अतएव मुझे पराधीन जानकर (मुझसे न पूछकर) श्रीरामचन्द्रजीके रुख (रुचि), धर्म और [सत्यके] व्रतको रखते हुए जो सबके सम्मत

और सबके लिये हितकारी हो आप सबका प्रेम पहचानकर वही कीजिये ॥ २९२ ॥

चौ०—भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे ॥ १ ॥

भरतजीके वचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर समाजसहित राजा जनक उनकी सराहना करने लगे। भरतजीके वचन सुगम और अगम, सुन्दर, कोमल और कठोर हैं। उनमें अक्षर थोड़े हैं, परंतु अर्थ अत्यन्त अपार भरा हुआ है ॥ १ ॥

ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी ॥
भूप भरतु मुनि सहित समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू ॥ २ ॥

जैसे मुख [का प्रतिबिम्ब] दर्पणमें दीखता है और दर्पण अपने हाथमें है, फिर भी वह (मुखका प्रतिबिम्ब) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार भरतजीकी यह अद्भुत वाणी भी पकड़में नहीं आती (शब्दोंसे उसका आशय समझमें नहीं आता)। [किसीसे कुछ उत्तर देते नहीं बना] तब राजा जनकजी, भरतजी तथा मुनि वसिष्ठजी समाजके साथ वहाँ गये जहाँ देवतारूपी कुमुदोंके खिलानेवाले (सुख देनेवाले) चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजी थे ॥ २ ॥

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा ॥
देवँ प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेषी ॥ ३ ॥

यह समाचार सुनकर सब लोग सोचसे व्याकुल हो गये, जैसे नये (पहली वर्षाके) जलके संयोगसे मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओंने पहले कुलगुरु वसिष्ठजीकी [प्रेमविह्वल] दशा देखी, फिर विदेहजीके विशेष स्नेहको देखा; ॥ ३ ॥

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे ॥
सब कोउ राम पेममय पेखा। भए अलेख सोच बस लेखा ॥ ४ ॥

और तब श्रीरामभक्तिसे ओतप्रोत भरतजीको देखा। इन सबको देखकर स्वार्थी देवता घबड़ाकर हृदयमें हार मान गये (निराश हो गये)। उन्होंने सब किसीको श्रीरामप्रेममें सराबोर देखा। इससे देवता इतने सोचके वश हो गये कि जिसका कोई हिसाब नहीं ॥ ४ ॥

दो०—रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाजु ॥ २९४ ॥

देवराज इन्द्र सोचमें भरकर कहने लगे कि श्रीरामचन्द्रजी तो स्नेह और संकोचके वशमें हैं। इसलिये सब लोग मिलकर कुछ प्रपञ्च (माया) रचो; नहीं तो काम बिगड़ा [ही समझो] ॥ २९४ ॥

चौ०—सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही ॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया ॥ १ ॥

देवताओंने सरस्वतीका स्मरण कर उनकी सराहना (स्तुति) की और कहा—हे देवि ! देवता आपके शरणागत हैं, उनकी रक्षा कीजिये। अपनी माया रचकर भरतजीकी बुद्धिको फेर दीजिये। और छलकी छाया कर देवताओंके कुलका पालन (रक्षा) कीजिये ॥ १ ॥

बिबुध बिनय सुनि देवि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी ॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥ २ ॥

देवताओंकी विनती सुनकर और देवताओंको स्वार्थके वश होनेसे मूर्ख जानकर बुद्धिमती सरस्वतीजी बोलीं—मुझसे कह रहे हो कि भरतजीकी मति पलट दो। हजार नेत्रोंसे भी तुमको सुमेरु नहीं सूझ पड़ता ! ॥ २ ॥

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥ ३ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी माया बड़ी प्रबल है। किन्तु वह भी भरतजीकी बुद्धिकी ओर ताक नहीं सकती। उस बुद्धिको तुम मुझसे कह रहे हो कि भोली कर दो (भुलावेमें डाल दो) अरे ! चाँदनी कहीं प्रचण्ड किरणवाले सूर्यको चुरा सकती है ? ॥ ३ ॥

भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका ॥ ४ ॥

भरतजीके हृदयमें श्रीसीतारामजीका निवास है। जहाँ सूर्यका प्रकाश है, वहाँ कहीं अँधेरा रह सकता है ? ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोकको चली गयीं। देवता ऐसे व्याकुल हुए जैसे रात्रिमें चकवा व्याकुल होता है ॥ ४ ॥

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु ॥ २९५ ॥

मलिन मनवाले स्वार्थी देवताओंने बुरी सलाह करके बुरा ठाट (षड्यन्त्र) रचा, प्रबल माया-जाल रचकर भय, भ्रम, अप्रीति और उचाटन फैला दिया ॥ २९५ ॥

चौ०—करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू ॥
गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा ॥ १ ॥

कुचाल करके देवराज इन्द्र सोचने लगे कि कामका बनना-बिगड़ना सब भरतजीके हाथ है। इधर राजा जनकजी [मुनि वशिष्ठ आदिके साथ] श्रीरघुनाथजीके पास गये। सूर्यकुलके दीपक श्रीरामचन्द्रजीने सबका सम्मान किया ॥ १ ॥

समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा ॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई ॥ २ ॥

तब रघुकुलके पुरोहित वशिष्ठजी समय, समाज और धर्मके अविरोधी (अर्थात् अनुकूल) वचन बोले। उन्होंने पहले जनकजी और भरतजीका संवाद सुनाया। फिर भरतजीकी कही हुई सुन्दर बातें कह सुनायीं ॥ २ ॥

तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करै मोर मत एहू ॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥ ३ ॥

[फिर बोले—] हे तात राम! मेरा मत तो यह है कि तुम जैसी आज्ञा दो वैसी ही सब करें। यह सुनकर दोनों हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजी सत्य, सरल और कोमल वाणी बोले—॥ ३ ॥

बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू ॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई ॥ ४ ॥

आपके और मिथिलेश्वर जनकजीके विद्यमान रहते मेरा कुछ कहना सब प्रकारसे भद्दा (अनुचित) है। आपकी और महाराजकी जो आज्ञा होगी, मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ वह सत्य ही सबको शिरोधार्य होगी ॥ ४ ॥

दो०—राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत ॥२९६॥

श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ सुनकर सभासमेत मुनि और जनकजी सकुचा गये (स्तम्भित रह गये)। किसीसे उत्तर देते नहीं बनता, सब लोग भरतजीका मुँह ताक रहे हैं ॥ २९६ ॥

चौ०—सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरजु भारी ॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥ १ ॥

भरतजीने सभाको संकोचके वश देखा। रामबन्धु (भरतजी) ने बड़ा भारी धीरज धरकर और कुसमय देखकर अपने [उमड़ते हुए] प्रेमको सँभाला, जैसे बढ़ते हुए विन्ध्याचलको अगस्त्यजीने रोका था ॥ १ ॥

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी॥

भरत बिबेक बराहँ बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥ २॥

शोकरूपी हिरण्याक्षने [सारी सभाकी] बुद्धिरूपी पृथ्वीको हर लिया जो विमल गुण-समूहरूपी जगत्की योनि (उत्पन्न करनेवाली) थी। भरतजीके विवेकरूपी विशाल वराह (वराहरूपधारी भगवान्) ने [शोकरूपी हिरण्याक्षको नष्ट कर] बिना ही परिश्रम उसका उद्धार कर दिया ! ॥ २ ॥

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। रामु राउ गुर साधु निहोरे॥

छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥ ३॥

भरतजीने प्रणाम करके सबके प्रति हाथ जोड़े तथा श्रीरामचन्द्रजी, राजा जनकजी, गुरु वशिष्ठजी और साधु-संत सबसे विनती की और कहा—आज मेरे इस अत्यन्त अनुचित बर्तावको क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल (छोटे) मुखसे कठोर (धृष्टतापूर्ण) वचन कह रहा हूँ ॥ ३ ॥

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥

बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥ ४॥

फिर उन्होंने हृदयमें सुहावनी सरस्वतीजीका स्मरण किया। वे मानससे (उनके मनरूपी मानसरोवरसे) उनके मुखारविन्दपर आ विराजीं। निर्मल विवेक, धर्म और नीतिसे युक्त भरतजीकी वाणी सुन्दर हंसिनी [के समान गुण-दोषका विवेचन करनेवाली] है ॥ ४ ॥

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेहँ समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु॥२९७॥

विवेकके नेत्रोंसे सारे समाजको प्रेमसे शिथिल देख, सबको प्रणामकर, श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके भरतजी बोले—॥ २९७ ॥

चौ०—प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥

सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपाल सर्बग्य सुजानू॥ १॥

हे प्रभु ! आप पिता, माता, सुहृद् (मित्र), गुरु, स्वामी, पूज्य, परम हितैषी और अन्तर्यामी हैं। सरल हृदय, श्रेष्ठ मालिक, शीलके भण्डार, शरणागतकी रक्षा करनेवाले, सर्वज्ञ, सुजान; ॥ १ ॥

समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघ हारी॥
स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं साइँ दोहाईं॥ २॥

समर्थ, शरणागतका हित करनेवाले, गुणोंका आदर करनेवाले और अवगुणों तथा पापोंको हरनेवाले हैं। हे गोसाईं! आप-सरीखे स्वामी आप ही हैं और स्वामीके साथ द्रोह करनेमें मेरे समान मैं ही हूँ॥ २॥

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयउँ इहाँ समाजु सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअ अमरपद माहुरु मीचू॥ ३॥

मैं मोहवश प्रभु (आप) के और पिताजीके वचनोंका उल्लङ्घनकर और समाज बटोरकर यहाँ आया हूँ। जगत्‌में भले-बुरे, ऊँचे और नीचे, अमृत और अमरपद (देवताओंका पद), विष और मृत्यु आदि—॥३॥

राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥ ४॥

किसीको भी कहीं ऐसा नहीं देखा-सुना जो मनमें भी श्रीरामचन्द्रजी (आप) की आज्ञा को मेट दे। मैंने सब प्रकारसे वही ढिठाई की, परंतु प्रभुने उस ढिठाईको स्नेह और सेवा मान लिया!॥ ४॥

दो०—कृपाँ भलाईं आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहु ओर॥२९८॥

हे नाथ! आपने अपनी कृपा और भलाईसे मेरा भला किया, जिससे मेरे दूषण (दोष) भी भूषण (गुण) के समान हो गये और चारों ओर मेरा सुन्दर यश छा गया॥ २९८॥

चौ०—राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥ १॥

हे नाथ! आपकी रीति और सुन्दर स्वभावकी बड़ाई जगत्‌में प्रसिद्ध है और वेद-शास्त्रोंने गायी है। जो क्रूर, कुटिल, दुष्ट, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, शीलरहित, निरीश्वरवादी, (नास्तिक) और निःशङ्क (निडर) हैं॥ १॥

तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनामु किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥ २॥

उन्हें भी आपने शरणमें सम्मुख आया सुनकर एक बार प्रणाम करनेपर ही अपना लिया। उन (शरणागतों) के दोषोंको देखकर भी आप कभी हृदयमें नहीं लाये और उनके गुणोंको सुनकर साधुओंके समाजमें उनका बखान किया॥ २॥

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोचु उर अपनें॥ ३॥

ऐसा सेवकपर कृपा करनेवाला स्वामी कौन है जो आप ही सेवकका सारा साज-सामान सज दे (उसकी सारी आवश्यकताओंको पूर्ण कर दे) और स्वप्नमें भी अपनी कोई करनी न समझकर (अर्थात् मैंने सेवकके लिये कुछ किया है ऐसा न जानकर) उलटा सेवकको संकोच होगा, इसका सोच अपने हृदयमें रक्खे! ॥ ३ ॥

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥ ४॥

मैं भुजा उठाकर और प्रण रोपकर (बड़े जोरके साथ) कहता हूँ, ऐसा स्वामी आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। [बंदर आदि] पशु नाचते और तोते [सीखे हुए] पाठमें प्रवीण हो जाते हैं। परंतु तोतेका [पाठप्रवीणतारूप] गुण और पशुके नचानेकी गति [क्रमशः] पढ़ानेवाले और नचानेवालेके अधीन है ॥ ४ ॥

दो०—यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर।
को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर॥२९९॥

इस प्रकार अपने सेवकोंकी [बिगड़ी] बात सुधारकर और सम्मान देकर आपने उन्हें साधुओंका शिरोमणि बना दिया। कृपालु (आप) के सिवा अपनी विरदावलीका और कौन जबर्दस्ती (हठपूर्वक) पालन करेगा ? ॥ २९९ ॥

चौ०—सोक सनेहँ कि बाल सुभाएँ। आयउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा॥ १॥

मैं शोकसे या स्नेहसे या बालकस्वभावसे आज्ञाको बायें लाकर (न मानकर) चला आया, तो भी कृपालु स्वामी (आप) ने अपनी ओर देखकर सभी प्रकारसे मेरा भला ही माना (मेरे इस अनुचित कार्यको अच्छा ही समझा) ॥ १ ॥

देखेउँ पाय सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़ें समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ीं चूक साहिब अनुरागू॥ २॥

मैंने सुन्दर मङ्गलोंके मूल आपके चरणोंका दर्शन किया और यह जान लिया कि स्वामी मुझपर स्वभावसे ही अनुकूल हैं। इस बड़े समाजमें अपने

भाग्यको देखा कि इतनी बड़ी चूक होनेपर भी स्वामीका मुझपर कितना अनुराग है ! ॥ २ ॥

कृपा अनुग्रहु अंगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ॥
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपनें सील सुभायँ भलाईं ॥ ३ ॥

कृपानिधानने मुझपर साङ्गोपाङ्ग भरपेट कृपा और अनुग्रह, सब अधिक ही किये हैं (अर्थात् मैं जिसके जरा भी लायक नहीं था उतनी अधिक सर्वाङ्गपूर्ण कृपा आपने मुझपर की है)। हे गोसाईं ! आपने अपने शील, स्वभाव और भलाईसे मेरा दुलार रक्खा ॥ ३ ॥

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई ॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहि देउ अति आरति जानी ॥ ४ ॥

हे नाथ ! मैंने स्वामी और समाजके संकोचको छोड़कर अविनय या विनयभरी जैसी रुचि हुई वैसी ही वाणी कहकर सर्वथा ढिठाई की है। हे देव ! मेरे आर्तभाव (आतुरता) को जानकर आप क्षमा करेंगे ॥ ४ ॥

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि ॥२००॥

सुहृद् (बिना ही हेतुके हित करनेवाले), बुद्धिमान् और श्रेष्ठ मालिकसे बहुत कहना बड़ा अपराध है। इसलिये हे देव ! अब मुझे आज्ञा दीजिये, आपने मेरी सभी बात सुधार दी ॥ २०० ॥

चौ०—प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई ॥
सो करि कहउँ हिए अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की ॥ १ ॥

प्रभु (आप) के चरणकमलोंकी रज, जो सत्य, सुकृत (पुण्य) और सुखकी सुहावनी सीमा (अवधि) है, उसकी दुहाई करके मैं अपने हृदयकी जागते, सोते और स्वप्नमें भी बनी रहनेवाली रुचि (इच्छा) कहता हूँ ॥ १ ॥

सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा ॥ २ ॥

वह रुचि है—कपट, स्वार्थ और [अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूप] चारों फलोंको छोड़कर स्वाभाविक प्रेमसे स्वामीकी सेवा करना। और आज्ञापालनके समान श्रेष्ठ स्वामीकी और कोई सेवा नहीं है। हे देव ! अब वही आज्ञारूप प्रसाद सेवकको मिल जाय ॥ २ ॥

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई॥ ३॥

भरतजी ऐसा कहकर प्रेमके बहुत ही विवश हो गये। शरीर पुलकित हो उठा, नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया। अकुलाकर (व्याकुल होकर) उन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमल पकड़ लिये। उस समयको और स्नेहको कहा नहीं जा सकता॥ ३॥

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ॥ ४॥

कृपासिन्धु श्रीरामचन्द्रजीने सुन्दर वाणीसे भरतजीका सम्मान करके हाथ पकड़कर उनको अपने पास बिठा लिया। भरतजीकी विनती सुनकर और उनका स्वभाव देखकर सारी सभा और श्रीरघुनाथजी स्नेहसे शिथिल हो गये॥ ४॥

छं०—रघुराउ सिथिल सनेहँ साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

श्रीरघुनाथजी, साधुओंका समाज, मुनि वशिष्ठजी और मिथिलापति जनकजी स्नेहसे शिथिल हो गये। सब मन-ही-मन भरतजीके भाईपन और उनकी भक्तिकी अतिशय महिमाको सराहने लगे। देवता मलिन-से मनसे भरतजीकी प्रशंसा करते हुए उनपर फूल बरसाने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं—सब लोग भरतजीका भाषण सुनकर व्याकुल हो गये और ऐसे सकुचा गये जैसे रात्रिके आगमनसे कमल!

सो०—देखि दुखारी दीन दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत॥३०१॥

दोनों समाजोंके सभी नर-नारियोंको दीन और दुखी देखकर महामलिन-मन इन्द्र मरे हुओंको मारकर अपना मङ्गल चाहता है॥ ३०१॥

चौ०—कपट कुचालि सीवँ सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥ १॥

देवराज इन्द्र कपट और कुचालकी सीमा है। उसे परायी हानि और

अपना लाभ ही प्रिय है। इन्द्रकी रीति कौएके समान है। वह छली और मलिन-मन है, उसका कहीं किसीपर विश्वास नहीं है ॥ १ ॥

प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। सो उचाटु सब कें सिर मेला॥
सुरमायाँ सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥ २ ॥

पहले तो कुमत (बुरा विचार) करके कपटको बटोरा (अनेक प्रकारके कपटका साज सजा)। फिर वह (कपटजनित) उचाट सबके सिरपर डाल दिया। फिर देवमायासे सब लोगोंको विशेषरूपसे मोहित कर दिया। किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमसे उनका अत्यन्त बिछोह नहीं हुआ (अर्थात् उनका श्रीरामजीके प्रति प्रेम कुछ तो बना ही रहा) ॥ २ ॥

भय उचाट बस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी॥ ३ ॥

भय और उचाटके वश किसीका मन स्थिर नहीं है। क्षणमें उनकी वनमें रहनेकी इच्छा होती है और क्षणमें उन्हें घर अच्छे लगने लगते हैं। मनकी इस प्रकारकी दुविधामयी स्थितिसे प्रजा दुखी हो रही है। मानो नदी और समुद्रके सङ्गमका जल क्षुब्ध हो रहा हो। (जैसे नदी और समुद्रके सङ्गमका जल स्थिर नहीं रहता, कभी इधर आता और कभी उधर जाता है, उसी प्रकारकी दशा प्रजाके मनकी हो गयी) ॥ ३ ॥

दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुबानू॥ ४ ॥

चित्त दोतरफा हो जानेसे वे कहीं सन्तोष नहीं पाते और एक दूसरेसे अपना मर्म भी नहीं कहते। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी यह दशा देखकर हृदयमें हँसकर कहने लगे—कुत्ता, इन्द्र और नवयुवक (कामी पुरुष) एक-सरीखे (एक ही स्वभावके) हैं। [पाणिनीय व्याकरणके अनुसार श्वन्, युवन् और मघवन् शब्दोंके रूप भी एक-सरीखे होते हैं] ॥ ४ ॥

दो०—**भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।**
लागि देवमाया सबहि जथाजोगु जनु पाइ ॥ ३०२ ॥

भरतजी, जनकजी, मुनिजन, मन्त्री और ज्ञानी साधु-संतोंको छोड़कर अन्य सभीपर जिस मनुष्यको जिस योग्य (जिस प्रकृति और जिस स्थिति-का) पाया, उसपर वैसे ही देवमाया लग गयी ॥ ३०२ ॥

चौ०–कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेहँ सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री॥ १ ॥

कृपासिन्धु श्रीरामचन्द्रजीने लोगोंको अपने स्नेह और देवराज इन्द्रके भारी छलसे दुखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण और मन्त्री आदि सभीकी बुद्धिको भरतजीकी भक्तिने कील दिया॥ १ ॥

रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥ २ ॥

सब लोग चित्रलिखे-से श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख रहे हैं। सकुचाते हुए सिखाये हुए-से वचन बोलते हैं। भरतजीकी प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई सुननेमें सुख देनेवाली है, पर उसके वर्णन करनेमें कठिनता है॥२॥

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी॥ ३ ॥

जिनकी भक्तिका लवलेश देखकर मुनिगण और मिथिलेश्वर जनकजी प्रेममें मग्न हो गये, उन भरतजीकी महिमा तुलसीदास कैसे कहे! उनकी भक्ति और सुन्दर भावसे [कविके] हृदयमें सुबुद्धि हुलस रही है (विकसित हो रही है)॥ ३ ॥

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥ ४ ॥

परन्तु वह बुद्धि अपनेको छोटी और भरतजीकी महिमाको बड़ी जानकर कविपरम्पराकी मर्यादाको मानकर सकुचा गयी (उसका वर्णन करनेका साहस नहीं कर सकी)। उसकी गुणोंमें रुचि तो बहुत है; पर उन्हें कह नहीं सकती। बुद्धिकी गति बालकके वचनोंकी तरह हो गयी (वह कुण्ठित हो गयी)! ॥ ४ ॥

दो०–भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोरकुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि॥३०३॥

भरतजीका निर्मल यश निर्मल चन्द्रमा है और कविकी सुबुद्धि चकोरी है, जो भक्तोंके हृदयरूपी निर्मल आकाशमें उस चन्द्रमाको उदित देखकर उसकी ओर टकटकी लगाये देखती ही रह गयी है [तब उसका वर्णन कौन करे?] ॥ ३०३ ॥

चौ०—भरत सुभाव न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहूँ॥
कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥ १॥

भरतजीके स्वभावका वर्णन वेदोंके लिये भी सुगम नहीं है। [अतः] मेरी तुच्छ बुद्धिकी चञ्चलताको कविलोग क्षमा करें। भरतजीके सद्भावको कहते-सुनते कौन मनुष्य श्रीसीतारामजीके चरणोंमें अनुरक्त न हो जायगा॥ १॥

सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की॥ २॥

भरतजीका स्मरण करनेसे जिसको श्रीरामजीका प्रेम सुलभ न हुआ, उसके समान वाम (अभागा) और कौन होगा? दयालु और सुजान श्रीरामजीने सभीकी दशा देखकर और भक्त (भरतजी) के हृदयकी स्थिति जानकर, ॥ २॥

धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू॥ ३॥

धर्मधुरन्धर, धीर, नीतिमें चतुर, सत्य, स्नेह, शील और सुखके समुद्र, नीति और प्रीतिके पालन करनेवाले श्रीरघुनाथजी देश, काल, अवसर और समाजको देखकर, ॥ ३॥

बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससि रसु से॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥ ४॥

[तदनुसार] ऐसे वचन बोले जो मानो वाणीके सर्वस्व ही थे, परिणाममें हितकारी थे और सुननेमें चन्द्रमाके रस (अमृत)-सरीखे थे। [उन्होंने कहा—] हे तात भरत! तुम धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले हो, लोक और वेद दोनोंके जाननेवाले और प्रेममें प्रवीण हो॥ ४॥

दो०—करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात॥२०४॥

हे तात! कर्मसे, वचनसे और मनसे निर्मल तुम्हारे समान तुम्हीं हो। गुरुजनोंके समाजमें और ऐसे कुसमयमें छोटे भाईके गुण किस तरह कहे जा सकते हैं?॥ २०४॥

चौ०—जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाजु लाज गुरजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥ १॥

हे तात ! तुम सूर्यकुलकी रीतिको, सत्यप्रतिज्ञ पिताजीकी कीर्ति और प्रीतिको, समय, समाज और गुरुजनोंकी लज्जा (मर्यादा) को तथा उदासीन, मित्र और शत्रु सबके मनकी बातको जानते हो ॥ १ ॥

तुम्हहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥ २ ॥

तुमको सबके कर्मों (कर्तव्यों) का और अपने तथा मेरे परम हितकारी धर्मका पता है। यद्यपि मुझे तुम्हारा सब प्रकारसे भरोसा है, तथापि मैं समयके अनुसार कुछ कहता हूँ ॥ २ ॥

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपाँ सँभारी॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू॥ ३ ॥

हे तात ! पिताजीके बिना (उनकी अनुपस्थितिमें) हमारी बात केवल गुरुवंशकी कृपाने ही सम्हाल रक्खी है; नहीं तो हमारे समेत प्रजा, कुटुम्ब, परिवार सभी बर्बाद हो जाते ॥ ३ ॥

जौं बिनु अवसर अथवँ दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥ ४ ॥

यदि बिना समयके (सन्ध्यासे पूर्व ही) सूर्य अस्त हो जाय, तो कहो जगत्‌में किसको क्लेश न होगा ? हे तात ! उसी प्रकारका उत्पात विधाताने यह (पिताकी असामयिक मृत्यु) किया है। पर मुनि महाराजने तथा मिथिलेश्वरने सबको बचा लिया ॥ ४ ॥

दो०—राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम ॥३०५॥

राज्यका सब कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, घर—इन सबका पालन (रक्षण) गुरुजीका प्रभाव (सामर्थ्य) करेगा और परिणाम शुभ होगा ॥ ३०५ ॥

चौ०—सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुर प्रसाद रखवारा॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥ १ ॥

गुरुजीका प्रसाद (अनुग्रह) ही घरमें और वनमें समाजसहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामीकी आज्ञा [का पालन] समस्त धर्मरूपी पृथ्वीको धारण करनेमें शेषजीके समान है ॥ १ ॥

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥ २॥

हे तात! तुम वही करो और मुझसे भी कराओ तथा सूर्यकुलके रक्षक बनो। साधकके लिये यह एक ही (आज्ञापालनरूपी साधना) सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली, कीर्तिमयी और सद्गतिमयी और ऐश्वर्यमयी त्रिवेणी है॥ २॥

सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी॥
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥३॥

इसे विचारकर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवारको सुखी करो। हे भाई! मेरी विपत्ति सभीने बाँट ली है, परन्तु तुमको तो अवधि (चौदह वर्ष) तक बड़ी कठिनाई है (सबसे अधिक दुःख है)॥ ३॥

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए॥ ४॥

तुमको कोमल जानकर भी मैं कठोर (वियोगकी बात) कह रहा हूँ। हे तात! बुरे समयमें मेरे लिये यह कोई अनुचित बात नहीं है। कुठौर (कुअवसर) में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं। वज्रके आघात भी हाथसे ही रोके जाते हैं॥ ४॥

दो०—सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥३०६॥

सेवक हाथ, पैर और नेत्रोंके समान और स्वामी मुखके समान होना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक-स्वामीकी ऐसी प्रीतिकी रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं॥ ३०६॥

चौ०—सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअँ जनु सानी॥
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥ १॥

श्रीरघुनाथजीकी वाणी सुनकर, जो मानो प्रेमरूपी समुद्रके [मन्थनसे निकले हुए] अमृतमें सनी हुई थी, सारा समाज शिथिल हो गया; सबको प्रेमसमाधि लग गयी। यह दशा देखकर सरस्वतीने चुप साध ली॥ १॥

भरतहि भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू॥ २॥

भरतजीको परम सन्तोष हुआ। स्वामीके सम्मुख (अनुकूल) होते ही

उनके दुःख और दोषोंने मुँह मोड़ लिया (वे उन्हें छोड़कर भाग गये) उनका मुख प्रसन्न हो गया और मनका विषाद मिट गया। मानो गूँगेपर सरस्वतीकी कृपा हो गयी हो ॥ २ ॥

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥
नाथ भयउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को ॥ ३ ॥

उन्होंने फिर प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और करकमलोंको जोड़कर वे बोले—हे नाथ! मुझे आपके साथ जानेका सुख प्राप्त हो गया और मैंने जगत्में जन्म लेनेका लाभ भी पा लिया ॥ ३ ॥

अब कृपाल जस आयसु होई। करौं सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥ ४ ॥

हे कृपालु! अब जैसी आज्ञा हो, उसीको मैं सिरपर धरकर आदरपूर्वक करूँ। परन्तु देव! आप मुझे वह अवलम्बन (कोई सहारा) दें जिसकी सेवा कर मैं अवधिका पार पा जाऊँ (अवधिको बिता दूँ) ॥ ४ ॥

दो०—देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०७॥

हे देव! स्वामी (आपके) अभिषेकके लिये गुरुजीकी आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थोंका जल लेता आया हूँ, उसके लिये क्या आज्ञा होती है? ॥ ३०७ ॥

चौ०—एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभयँ सकोच जात कहि नाहीं॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई॥ ॥ १ ॥

मेरे मनमें एक और बड़ा मनोरथ है, जो भय और संकोचके कारण कहा नहीं जाता। [श्रीरामचन्द्रजीने कहा—] हे भाई! कहो। तब प्रभुकी आज्ञा पाकर भरतजी स्नेहपूर्ण सुन्दर वाणी बोले—॥ १ ॥

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयसु होइ त आवौं देखी॥ २ ॥

आज्ञा हो तो चित्रकूटके पवित्र स्थान, तीर्थ, वन, पक्षी-पशु, तालाब-नदी, झरने और पर्वतोंके समूह तथा विशेषकर प्रभु (आप) के चरण-चिह्नोंसे अङ्कित भूमिको देख आऊँ ॥ २ ॥

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगतभय कानन चरहू॥
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥ ३ ॥

[श्रीरघुनाथजी बोले—] अवश्य ही अत्रि ऋषिकी आज्ञाको सिरपर

धारण करो (उनसे पूछकर वे जैसा कहें वैसा करो) और निर्भय होकर वनमें विचरो। हे भाई! अत्रि मुनिके प्रसादसे वन मङ्गलोंका देनेवाला, परम पवित्र और अत्यन्त सुन्दर है—॥ ३ ॥

रिषिनायकु जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥ ४॥

और ऋषियोंके प्रमुख अत्रिजी जहाँ आज्ञा दें, वहीं [लाया हुआ] तीर्थोंका जल स्थापित कर देना। प्रभुके वचन सुनकर भरतजीने सुख पाया और आनन्दित होकर मुनि अत्रिजीके चरणकमलोंमें सिर नवाया॥ ४॥

दो०—भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरु फूल॥३०८॥

समस्त सुन्दर मङ्गलोंका मूल भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीका संवाद सुनकर स्वार्थी देवता रघुकुलकी सराहना करके कल्पवृक्षके फूल बरसाने लगे॥ ३०८॥

चौ०—धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भयउ उछाहू॥ १॥

'भरतजी धन्य हैं, स्वामी श्रीरामजीकी जय हो!' ऐसा कहते हुए देवता बलपूर्वक (अत्यधिक) हर्षित होने लगे। भरतजीके वचन सुनकर मुनि वशिष्ठजी, मिथिलापति जनकजी और सभामें सब किसीको बड़ा उत्साह (आनन्द) हुआ॥ १॥

भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन॥ २॥

भरतजी और श्रीरामजीके गुणसमूहकी तथा प्रेमकी विदेहराज जनकजी पुलकित होकर प्रशंसा कर रहे हैं। सेवक और स्वामी दोनोंका सुन्दर स्वभाव है। इनके नियम और प्रेम पवित्रको भी अत्यन्त पवित्र करनेवाले हैं॥२॥

मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम भरत संबादू। दुहु समाज हियँ हरषु बिषादू॥ ३॥

मन्त्री और सभासद् सभी प्रेममुग्ध होकर अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार सराहना करने लगे। श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीका संवाद सुन-सुनकर दोनों समाजोंके हृदयोंमें हर्ष और विषाद (भरतजीके सेवाधर्मको देखकर हर्ष और रामवियोगकी सम्भावनासे विषाद) दोनों हुए॥ ३॥

राम मातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधीं रानी॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजीने दुःख और सुखको समान जानकर श्रीरामजीके गुण कहकर दूसरी रानियोंको धैर्य बँधाया। कोई श्रीरामजीकी बड़ाई (बड़प्पन) की चर्चा कर रहे हैं, तो कोई भरतजीके अच्छेपनकी सराहना करते हैं॥ ४॥

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप॥३०९॥

तब अत्रिजीने भरतजीसे कहा—इस पर्वतके समीप ही एक सुन्दर कुँआ है। इस पवित्र, अनुपम और अमृत-जैसे तीर्थजलको उसीमें स्थापित कर दीजिये॥ ३०९॥

चौ०—भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहँ कूप अगाधू॥ १॥

भरतजीने अत्रिमुनिकी आज्ञा पाकर जलके सब पात्र रवाना कर दिये और छोटे भाई शत्रुघ्न, अत्रि मुनि तथा अन्य साधु-संतोंसहित आप वहाँ गये जहाँ वह अथाह कुआँ था॥ १॥

पावन पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू॥ २॥

और उस पवित्र जलको उस पुण्यस्थलमें रख दिया। तब अत्रि ऋषिने प्रेमसे आनन्दित होकर ऐसा कहा—हे तात! यह अनादि सिद्धस्थल है। कालक्रमसे यह लोप हो गया था इसलिये किसीको इसका पता नहीं था॥ २॥

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा॥
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू॥ ३॥

तब [भरतजीके] सेवकोंने उस जलयुक्त स्थानको देखा और उस सुन्दर [तीर्थोंके] जलके लिये एक खास कुआँ बना लिया। दैवयोगसे विश्वभरका उपकार हो गया। धर्मका विचार जो अत्यन्त अगम था, वह [इस कूपके प्रभावसे] सुगम हो गया॥ ३॥

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करम मन बानी॥ ४॥

अब इसको लोग भरतकूप कहेंगे। तीर्थोंके जलके संयोगसे तो यह

अत्यन्त ही पवित्र हो गया। इसमें प्रेमपूर्वक नियमसे स्नान करनेपर प्राणी मन, वचन और कर्मसे निर्मल हो जायँगे ॥ ४ ॥

दो०—कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाउ ॥ ३१० ॥

कूपकी महिमा कहते हुए सब लोग वहाँ गये जहाँ श्रीरघुनाथजी थे। श्रीरघुनाथजीको अत्रिजीने उस तीर्थका पुण्य-प्रभाव सुनाया ॥ ३१० ॥

चौ०—कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोरु निसि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई ॥ १ ॥

प्रेमपूर्वक धर्मके इतिहास कहते वह रात सुखसे बीत गयी और सवेरा हो गया। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई नित्यक्रिया पूरी करके, श्रीरामजी, अत्रिजी और गुरु वशिष्ठजीकी आज्ञा पाकर, ॥ १ ॥

सहित समाज साज सब सादें। चले राम बन अटन पयादें ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥ २ ॥

समाजसहित सब सादे साजसे श्रीरामजीके वनमें भ्रमण (प्रदक्षिणा) करनेके लिये पैदल ही चले। कोमल चरण हैं और बिना जूतेके चल रहे हैं, यह देखकर पृथ्वी मन-ही-मन सकुचाकर कोमल हो गयी ॥ २ ॥

कुस कंटक काँकरीं कुराईं। कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे ॥ ३ ॥

कुश, काँटे, कंकड़ी, दरारें आदि कड़वी, कठोर और बुरी वस्तुओंको छिपाकर पृथ्वीने सुन्दर और कोमल मार्ग कर दिये। सुखोंको साथ लिये (सुखदायक) शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चलने लगी ॥ ३ ॥

सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी ॥ ४ ॥

रास्तेमें देवता फूल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल-फलकर, तृण अपनी कोमलतासे, मृग (पशु) देखकर और पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर—सभी भरतजीको श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे जानकर उनकी सेवा करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।
राम प्रान प्रिय भरत कहुँ यह न होइ बड़ि बात ॥ ३११॥

जब एक साधारण मनुष्यको भी [आलस्यसे] जँभाई लेते समय

'राम' कह देनेसे ही सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, तब श्रीरामचन्द्रजीके प्राणप्यारे भरतजीके लिये यह कोई बड़ी (आश्चर्यकी) बात नहीं है ॥२११॥

चौ०—एहि बिधि भरतु फिरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥
पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा॥ १ ॥

इस प्रकार भरतजी वनमें फिर रहे हैं। उनके नियम और प्रेमको देखकर मुनि भी सकुचा जाते हैं। पवित्र जलके स्थान (नदी, बावली, कुण्ड आदि), पृथ्वीके पृथक्-पृथक् भाग, पक्षी, पशु, वृक्ष, तृण (घास), पर्वत, वन और बगीचे—॥ १ ॥

चारु बिचित्र पबित्र बिसेषी। बूझत भरतु दिब्य सब देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥ २ ॥

सभी विशेषरूपसे सुन्दर, विचित्र, पवित्र और दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और उनका प्रश्न सुनकर ऋषिराज अत्रिजी प्रसन्न मनसे सबके कारण, नाम, गुण और पुण्य-प्रभावको कहते हैं ॥ २ ॥

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥ ३ ॥

भरतजी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनोहर स्थानोंके दर्शन करते हैं और कहीं मुनि अत्रिजीकी आज्ञा पाकर, बैठकर सीताजीसहित श्रीराम, लक्ष्मण दोनों भाइयोंका स्मरण करते हैं ॥ ३ ॥

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बन देवा॥
फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥ ४ ॥

भरतजीके स्वभाव, प्रेम और सुन्दर सेवाभावको देखकर वनदेवता आनन्दित होकर आशीर्वाद देते हैं। यों घूम-फिरकर ढाई पहर दिन बीतनेपर लौट पड़ते हैं और आकर प्रभु श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंका दर्शन करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ।
कहत सुनत हरि हर सुजसु गयउ दिवसु भइ साँझ ॥२१२॥

भरतजीने पाँच दिनमें सब तीर्थस्थानोंके दर्शन कर लिये। भगवान् विष्णु और महादेवजीका सुन्दर यश कहते-सुनते वह (पाँचवाँ) दिन भी बीत गया, सन्ध्या हो गयी ॥ २१२ ॥

चौ०–भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहुति राजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं॥ १॥

[अगले छठे दिन] सबेरे स्नान करके भरतजी, ब्राह्मण, राजा जनक और सारा समाज आ जुटा। आज सबको विदा करनेके लिये अच्छा दिन है यह मनमें जानकर भी कृपालु श्रीरामजी कहनेमें सकुचा रहे हैं॥ १॥

गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥ २॥

श्रीरामचन्द्रजीने गुरु वसिष्ठजी, राजा जनकजी, भरतजी और सारी सभाकी ओर देखा, किन्तु फिर सकुचाकर दृष्टि फेरकर वे पृथ्वीकी ओर ताकने लगे। सभा उनके शीलकी सराहना करके सोचती है कि श्रीरामचन्द्रजीके समान संकोची स्वामी कहीं नहीं हैं॥ २॥

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखीं नाथ सकल रुचि मोरी॥ ३॥

सुजान भरतजी श्रीरामचन्द्रजीका रुख देखकर प्रेमपूर्वक उठकर, विशेषरूपसे धीरज धारणकर दण्डवत् करके हाथ जोड़कर कहने लगे— हे नाथ! आपने मेरी सभी रुचियाँ रक्खीं॥ ३॥

मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवौं अवध अवधि भरि जाई॥ ४॥

मेरे लिये सब लोगोंने सन्ताप सहा और आपने भी बहुत प्रकारसे दुःख पाया। अब स्वामी मुझे आज्ञा दें, मैं जाकर अवधिभर (चौदह वर्षतक) अवधका सेवन करूँ॥ ४॥

दो०–जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखै दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल॥ ३१३॥

हे दीनदयालु! जिस उपायसे यह दास फिर चरणोंका दर्शन करे— हे कोसलाधीश! हे कृपालु! अवधिभरके लिये मुझे वही शिक्षा दीजिये॥ ३१३॥

चौ०–पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेहँ सगाईं॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू॥ १॥

हे गोसाईं! आपके प्रेम और सम्बन्धसे अवधपुरवासी, कुटुम्बी और प्रजा सभी पवित्र और रस (आनन्द) से युक्त हैं। आपके लिये भवदुःख

(जन्म-मरणके दुःख) की ज्वालामें जलना भी अच्छा है और प्रभु (आप) के बिना परमपद (मोक्ष) का लाभ भी व्यर्थ है ॥ १ ॥

स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥
प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहू दिसि ओर निबाहू ॥ २ ॥

हे स्वामी ! आप सुजान हैं, सभीके हृदयकी और मुझ सेवकके मनकी रुचि, लालसा (अभिलाषा) और रहनी जानकर, हे प्रणतपाल ! आप सब किसीका पालन करेंगे और हे देव ! दोनों तरफकी ओर-अन्ततक निबाहेंगे ॥

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किएँ बिचारु न सोचु खरो सो ॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू ॥ ३ ॥

मुझे सब प्रकारसे ऐसा बहुत बड़ा भरोसा है। विचार करनेपर तिनकेके बराबर (जरा-सा) भी सोच नहीं रह जाता। मेरी दीनता और स्वामीका स्नेह दोनोंने मिलकर मुझे जबर्दस्ती ढीठ बना दिया है ॥ ३ ॥

यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥
भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर नीर बिबरन गति हंसी ॥ ४ ॥

हे स्वामी ! इस बड़े दोषको दूर करके संकोच त्यागकर मुझ सेवकको शिक्षा दीजिये। दूध और जलको अलग-अलग करनेमें हंसिनीकी-सी गतिवाली भरतजीकी विनती सुनकर उसकी सभीने प्रशंसा की ॥ ४ ॥

दो०—दीनबंधु सुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन ॥ ३१४ ॥

दीनबन्धु और परम चतुर श्रीरामजी भाई भरतजीके दीन और छलरहित वचन सुनकर देश, काल और अवसरके अनुकूल वचन बोले—॥ ३१४ ॥

चौ०—तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू ॥ १ ॥

हे तात ! तुम्हारी, मेरी, परिवारकी, घरकी और वनकी सारी चिन्ता गुरु वशिष्ठजी और महाराज जनकजीको है। हमारे सिरपर जब गुरुजी, मुनि विश्वामित्रजी और मिथिलापति जनकजी हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्नमें भी क्लेश नहीं है ॥ १ ॥

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाईं। लोक बेद भल भूप भलाईं ॥ २ ॥

मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसीमें है कि हम दोनों भाई पिताजीकी आज्ञाका पालन करें। राजाकी भलाई (उनके व्रतकी रक्षा) से ही लोक और वेद दोनोंमें भला है ॥ २ ॥

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥ ३॥

गुरु, पिता, माता और स्वामीकी शिक्षा (आज्ञा) का पालन करनेसे कुमार्गपर भी चलनेसे पैर गड्ढेमें नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचारकर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधिभर उसका पालन करो ॥ ३ ॥

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरु भारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥ ४॥

देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरुजीकी चरण-रजपर है। तुम तो मुनि वशिष्ठजी, माताओं और मन्त्रियोंकी शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानीका पालन (रक्षा) भर करते रहना ॥ ४ ॥

दो०—मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥ ३१५॥

तुलसीदासजी कहते हैं—[श्रीरामजीने कहा—] मुखिया मुखके समान होना चाहिये। जो खाने-पीनेको तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अङ्गोंका पालन-पोषण करता है ॥ ३१५ ॥

चौ०—राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथु गोई॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥ १॥

राजधर्मका सर्वस्व (सार) भी इतना ही है। जैसे मनके भीतर मनोरथ छिपा रहता है। श्रीरघुनाथजीने भाई भरतको बहुत प्रकारसे समझाया। परन्तु कोई अवलम्बन पाये बिना उनके मनमें न सन्तोष हुआ, न शान्ति ॥ १ ॥

भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥ २॥

इधर तो भरतजीका शील (प्रेम) और उधर गुरुजनों, मन्त्रियों

तथा समाजकी उपस्थिति ! यह देखकर श्रीरघुनाथजी संकोच तथा स्नेहके विशेष वशीभूत हो गये। (अर्थात् भरतजीके प्रेमवश उन्हें पाँवरी देना चाहते हैं, किन्तु साथ ही गुरु आदिका संकोच भी होता है।) आखिर [भरतजीके प्रेमवश] प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने कृपाकर खड़ाऊँ दे दीं और भरतजीने उन्हें आदरपूर्वक सिरपर धारण कर लिया ॥ २ ॥

चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के ॥ ३ ॥

करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजीके दोनों खड़ाऊँ प्रजाके प्राणोंकी रक्षाके लिये मानो दो पहरेदार हैं। भरतजीके प्रेमरूपी रत्नके लिये मानो डिब्बा है और जीवके साधनके लिये मानो राम-नामके दो अक्षर हैं ॥ ३ ॥

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें ॥ ४ ॥

रघुकुल [की रक्षा] के लिये दो किवाड़ हैं। कुशल [श्रेष्ठ] कर्म करनेके लिये दो हाथकी भाँति (सहायक) हैं। और सेवारूपी श्रेष्ठ धर्मके सुझानेके लिये निर्मल नेत्र हैं। भरतजी इस अवलम्बके मिल जानेसे परम आनन्दित हैं। उन्हें ऐसा ही सुख हुआ, जैसा श्रीसीतारामजीके रहनेसे होता ॥ ४ ॥

दो०—मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ ॥ ३१६ ॥

भरतजीने प्रणाम करके विदा माँगी, तब श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया। इधर कुटिल इन्द्रने बुरा मौका पाकर लोगोंका उच्चाटन कर दिया ॥ ३१६ ॥

चौ०—सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की ॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा ॥ १ ॥

वह कुचाल भी सबके लिये हितकर हो गयी। अवधिकी आशाके समान ही वह जीवनके लिये संजीवनी हो गयी। नहीं तो (उच्चाटन न होता तो) लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके वियोगरूपी बुरे रोगसे सब लोग घबड़ाकर (हाय-हाय करके) मर ही जाते ॥ १ ॥

रामकृपाँ अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु कहि न परत सो ॥ २ ॥

श्रीरामजीकी कृपाने सारी उलझन सुधार दी। देवताओंकी सेना जो लूटने आयी थी, वही गुणदायक (हितकारी) और रक्षक बन गयी। श्रीरामजी भुजाओंमें भरकर भाई भरतसे मिल रहे हैं। श्रीरामजीके प्रेमका वह रस (आनन्द) कहते नहीं बनता ॥ २ ॥

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा ॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी ॥ ३ ॥

तन, मन और वचन तीनोंमें प्रेम उमड़ पड़ा। धीरजकी धुरीको धारण करनेवाले श्रीरघुनाथजीने भी धीरज त्याग दिया। वे कमलसदृश नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बहाने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवताओंकी सभा (समाज) दुखी हो गयी ॥ ३ ॥

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसें कनक से ॥
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए ॥ ४ ॥

मुनिगण, गुरु वशिष्ठजी और जनकजी-सरीखे धीर-धुरन्धर जो अपने मनोंको ज्ञानरूपी अग्निमें सोनेके समान कस चुके थे, जिनको ब्रह्माजीने निर्लेप ही रचा और जो जगत्‌रूपी जलमें कमलके पत्तेकी तरह ही (जगत्‌में रहते हुए भी जगत्‌से अनासक्त) पैदा हुए, ॥ ४ ॥

दो०—तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार ॥ ३१७ ॥

वे भी श्रीरामजी और भरतजीके उपमारहित अपार प्रेमको देखकर वैराग्य और विवेकसहित तन, मन, वचनसे उस प्रेममें मग्न हो गये ॥३१७॥

चौ०—जहाँ जनक गुर गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥
बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू ॥ १ ॥

जहाँ जनकजी और गुरु वशिष्ठजीकी बुद्धिकी गति कुण्ठित हो गयी, उस दिव्य प्रेमको प्राकृत (लौकिक) कहनेमें बड़ा दोष है। श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीके वियोगका वर्णन करते सुनकर लोग कविको कठोर हृदय समझेंगे ॥ १ ॥

सो सकोच रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी ॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए ॥ २ ॥

वह संकोच-रस अकथनीय है। अतएव कविकी सुन्दर वाणी उस समय उसके प्रेमको स्मरण करके सकुचा गयी। भरतजीको भेंटकर श्री-

रघुनाथजीने उनको समझाया। फिर हर्षित होकर शत्रुघ्नजीको हृदयसे लगा लिया ॥ २ ॥

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई ॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा ॥ ३ ॥

सेवक और मन्त्री भरतजीका रुख पाकर सब अपने-अपने काममें जा लगे। यह सुनकर दोनों समाजोंमें दारुण दुःख छा गया। वे चलनेकी तैयारियाँ करने लगे ॥ ३ ॥

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई ॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥ ४ ॥

प्रभुके चरणकमलोंकी वन्दना करके तथा श्रीरामजीकी आज्ञाको सिरपर रखकर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले। मुनि, तपस्वी और वनदेवता—सबका बार-बार सम्मान करके उनकी विनती की ॥ ४ ॥

दो०—लखनहि भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि ॥ ३१८ ॥

फिर लक्ष्मणजीको क्रमशः भेंटकर तथा प्रणाम करके और सीताजीके चरणोंकी धूलिको सिरपर धारण करके और समस्त मङ्गलोंके मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमसहित चले ॥ ३१८ ॥

चौ०—सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई ॥
देव दया बस बड़ दुखु पायउ। सहित समाज काननहिं आयउ ॥ १ ॥

छोटे भाई लक्ष्मणजीसमेत श्रीरामजीने राजा जनकजीको सिर नवाकर उनकी बहुत प्रकारसे विनती और बड़ाई की [और कहा—] हे देव! दयावश आपने बहुत दुःख पाया। आप समाजसहित वनमें आये ॥ १ ॥

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा ॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने ॥ २ ॥

अब आशीर्वाद देकर नगरको पधारिये। यह सुन राजा जनकजीने धीरज धरकर गमन किया। फिर श्रीरामचन्द्रजीने मुनि, ब्राह्मण और साधुओंको विष्णु और शिवके समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया ॥ २ ॥

सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई ॥
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली ॥ ३ ॥

तब श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई सास (सुनयनाजी) के पास गये और उनके चरणोंकी वन्दना करके आशीर्वाद पाकर लौट आये। फिर विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि और शुभ आचरणवाले कुटुम्बी, नगरनिवासी और मन्त्री—॥ ३ ॥

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा ॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥ ४ ॥

सबको छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीने यथायोग्य विनय एवं प्रणाम करके विदा किया। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने छोटे, मध्यम, (मझले) और बड़े सभी श्रेणीके स्त्री-पुरुषोंका सम्मान करके उनको लौटाया ॥ ४ ॥

दो०—भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेहँ मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि ॥ ३१९ ॥

भरतकी माता कैकेयीके चरणोंकी वन्दना करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने पवित्र (निश्छल) प्रेमके साथ उनसे मिल-भेंटकर तथा उनके सारे संकोच और सोचको मिटाकर पालकी सजाकर उनको विदा किया ॥ ३१९ ॥

चौ०—परिजन मातु पितहि मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता ॥
करि प्रनामु भेंटीं सब सासू। प्रीति कहत कबि हियँ न हुलासू ॥ १ ॥

प्राणप्रिय पति श्रीरामचन्द्रजीके साथ पवित्र प्रेम करनेवाली सीताजी नैहरके कुटुम्बियोंसे तथा माता-पितासे मिलकर लौट आयीं। फिर प्रणाम करके सब सासुओंसे गले लगकर मिलीं। उनके प्रेमका वर्णन करनेके लिये कविके हृदयमें हुलास (उत्साह) नहीं होता ॥ १ ॥

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहु प्रीति समाई ॥
रघुपति पटु पालकीं मगाईं। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाईं ॥ २ ॥

उनकी शिक्षा सुनकर और मनचाहा आशीर्वाद पाकर सीताजी सासुओं तथा माता-पिता दोनों ओरकी प्रीतिमें समायी (बहुत देरतक निमग्न) रहीं। [तब] श्रीरघुनाथजीने सुन्दर पालकियाँ मँगवायीं और सब माताओंको आश्वासन देकर उनपर चढ़ाया ॥ २ ॥

बार बार हिलि मिलि दुहु भाईं। सम सनेहँ जननीं पहुँचाईं ॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भरत भूप दल कीन्ह पयाना ॥ ३ ॥

दोनों भाइयोंने माताओंसे समान प्रेमसे बार-बार मिल-जुलकर उनको

पहुँचाया। भरतजी और राजा जनकजीके दलोंने घोड़े, हाथी और अनेकों तरहकी सवारियाँ सजाकर प्रस्थान किया ॥ ३ ॥

हृदयँ रामु सिय लखन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता ॥
बसह बाजि गज पसु हियँ हारें। चले जाहिं परबस मन मारें ॥ ४ ॥

सीताजी एवं लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर सब लोग बेसुध हुए चले जा रहे हैं। बैल, घोड़े, हाथी आदि पशु हृदयमें हारे (शिथिल) हुए परवश मनमारे चले जा रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित आए परन निकेत ॥ ३२० ॥

गुरु वशिष्ठजी और गुरुपत्नी अरुन्धतीजीके चरणोंकी वन्दना करके सीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हर्ष और विषादके साथ लौटकर पर्णकुटीपर आये ॥ ३२० ॥

चौ०—बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥ १ ॥

फिर सम्मान करके निषादराजको विदा किया। वह चला तो सही, किन्तु उसके हृदयमें विरहका बड़ा भारी विषाद था। फिर श्रीरामजीने कोल, किरात, भील आदि वनवासी लोगोंको लौटाया। वे सब जोहार-जोहारकर (वन्दना कर-करके) लौटे ॥ १ ॥

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ॥
भरत सनेह सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥ २ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी बड़की छायामें बैठकर प्रियजन एवं परिवारके वियोगसे दुःखी हो रहे हैं। भरतजीके स्नेह, स्वभाव और सुन्दर वाणीको बखान-बखानकर वे प्रिय पत्नी सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ २ ॥

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमके वश होकर भरतजीके वचन, मन, कर्मकी प्रीति तथा विश्वासका अपने श्रीमुखसे वर्णन किया। उस समय पक्षी, पशु और जलकी मछलियाँ, चित्रकूटके सभी चेतन और जड़ जीव उदास हो गये ॥ ३ ॥

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो॥ ४॥

श्रीरघुनाथजीकी दशा देखकर देवताओंने उनपर फूल बरसाकर अपनी घर-घरकी दशा कही (दुखड़ा सुनाया)। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रणाम कर आश्वासन दिया। तब वे प्रसन्न होकर चले, मनमें जरा-सा भी डर न रहा॥ ४॥

दो०—सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर॥३२१॥

छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसमेत प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पर्ण-कुटीमें ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो वैराग्य, भक्ति और ज्ञान शरीर धारण करके सुशोभित हो रहे हों॥ ३२१॥

चौ०—मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरहँ सबु साजु बिहालू॥
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं॥ १॥

मुनि, ब्राह्मण, गुरु वसिष्ठजी, भरतजी और राजा जनकजी—सारा समाज श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें विह्वल है। प्रभुके गुणसमूहोंका मनमें स्मरण करते हुए सब लोग मार्गमें चुपचाप चले जा रहे हैं॥ १॥

जमुना उतरि पार सबु भयऊ। सो बासरु बिनु भोजन गयऊ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू॥ २॥

[पहले दिन] सब लोग यमुनाजी उतरकर पार हुए। वह दिन बिना भोजनके ही बीत गया। दूसरा मुकाम गङ्गाजी उतरकर (गङ्गापार शृङ्गवेरपुरमें) हुआ। वहाँ रामसखा निषादराजने सब सुप्रबन्ध कर दिया॥ २॥

सई उतरि गोमतीं नहाए। चौथें दिवस अवधपुर आए॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥ ३॥

फिर सई उतरकर गोमतीजीमें स्नान किया और चौथे दिन सब अयोध्याजी जा पहुँचे। जनकजी चार दिन अयोध्याजीमें रहे और राज-काज एवं सब साज-सामानको सँभालकर, ॥ ३॥

सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तेरहुति चले साजि सबु साजू॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी॥ ४॥

तथा मन्त्री, गुरुजी तथा भरतजीको राज्य सौंपकर, सारा साज-

सामान ठीक करके तिरहुतको चले। नगरके स्त्री-पुरुष गुरुजीकी शिक्षा मानकर श्रीरामजीकी राजधानी अयोध्याजीमें सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ४ ॥

दो०—राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस ॥३२२॥

सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये नियम और उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग-सुखोंको छोड़-छाड़कर अवधिकी आशापर जी रहे हैं ॥ ३२२ ॥

चौ०—सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥ १ ॥

भरतजीने मन्त्रियों और विश्वासी सेवकोंको समझाकर उद्यत किया। वे सब सीख पाकर अपने-अपने काममें लग गये। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजीको बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओंकी सेवा उनको सौंपी ॥ १ ॥

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब सँकोचू ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंको बुलाकर भरतजीने हाथ जोड़कर प्रणाम कर अवस्थाके अनुसार विनय और निहोरा किया कि आपलोग ऊँचा-नीचा (छोटा-बड़ा) अच्छा-मन्दा जो कुछ भी कार्य हो उसके लिये आज्ञा दीजियेगा। संकोच न कीजियेगा ॥ २ ॥

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥
सानुज गे गुर गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी ॥ ३ ॥

भरतजीने फिर परिवारके लोगोंको, नागरिकोंको तथा अन्य प्रजाको बुलाकर, उनका समाधान करके उनको सुखपूर्वक बसाया। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजीसहित वे गुरुजीके घर गये और दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले—॥ ३ ॥

आयसु होइ त रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई ॥ ४ ॥

आज्ञा हो तो मैं नियमपूर्वक रहूँ। मुनि वशिष्ठजी पुलकितशरीर हो प्रेमके साथ बोले—हे भरत! तुम जो कुछ समझोगे, करोगे और कहोगे वही जगत्‌में धर्मका सार होगा ॥ ४ ॥

दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि ।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि ॥३२३॥

भरतजीने यह सुनकर और शिक्षा तथा बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियोंको बुलाया और दिन (अच्छा मुहूर्त) साधकर प्रभुकी चरण-पादुकाओंको निर्विघ्नतापूर्वक सिंहासनपर विराजित कराया ॥ ३२३ ॥

चौ०—राम मातु गुर पद सिरु नाई । प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ॥
नंदिगावँ करि परन कुटीरा । कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा ॥ १ ॥

फिर श्रीरामजीकी माता कौसल्याजी और गुरुजीके चरणोंमें सिर नवाकर और प्रभुकी चरणपादुकाओंकी आज्ञा पाकर धर्मकी धुरी धारण करनेमें धीर भरतजीने नन्दिग्राममें पर्णकुटी बनाकर उसीमें निवास किया ॥ १ ॥

जटाजूट सिर मुनिपट धारी । महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा । करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ॥ २ ॥

सिरपर जटाजूट और शरीरमें मुनियोंके (वल्कल) वस्त्र धारणकर, पृथ्वीको खोदकर उसके अंदर कुशकी आसनी बिछायी । भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत, नियम—सभी बातोंमें वे ऋषियोंके कठिन धर्मका प्रेमसहित आचरण करने लगे ॥ २ ॥

भूषन बसन भोग सुख भूरी । मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवध राजु सुर राजु सिहाई । दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई ॥ ३ ॥

गहने-कपड़े और अनेकों प्रकारके भोग-सुखोंको मन, तन और वचनसे तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके) त्याग दिया । जिस अयोध्याके राज्यको देवराज इन्द्र सिहाते थे और [जहाँके राजा] दशरथजीकी सम्पत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे, ॥ ३ ॥

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा बिलासु राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥ ४ ॥

उसी अयोध्यापुरीमें भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं जैसे चम्पाके बागमें भौंरा । श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मीके विलास (भोगैश्वर्य) को वमनकी भाँति त्याग देते हैं (फिर उसकी ओर ताकते भी नहीं) ॥ ४ ॥

दो०–राम पेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति ॥३२४॥

फिर भरतजी तो [स्वयं] श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमके पात्र हैं! वे इस (भोगैश्वर्यत्यागरूप) करनीसे बड़े नहीं हुए (अर्थात् उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है)। [पृथ्वीपरका जल न पीनेकी] टेकसे चातककी और नीर-क्षीर-विवेककी विभूति (शक्ति) से हंसकी भी सराहना होती है ॥ ३२४ ॥

चौ०–देह दिनहु दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई ॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना ॥ १ ॥

भरतजीका शरीर दिनोंदिन दुबला होता जाता है। तेज (अन्न, घृत आदिसे उत्पन्न होनेवाला मेद*) घट रहा है। बल और मुखछवि (मुखकी कान्ति अथवा शोभा) वैसी ही बनी हुई है। रामप्रेमका प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है, धर्मका दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है (अर्थात् प्रसन्न है) ॥ १ ॥

* संस्कृत-कोषमें 'तेज' का अर्थ मेद मिलता है और यह अर्थ लेनेसे 'घटइ' के अर्थमें भी किसी प्रकारकी खींच-तान नहीं करनी पड़ती।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे ॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥ २ ॥

जैसे शरद् ऋतुके प्रकाश (विकास) से जल घटता है; किन्तु बेंत शोभा पाते हैं और कमल विकसित होते हैं। शम, दम, संयम, नियम और उपवास आदि भरतजीके हृदयरूपी निर्मल आकाशके नक्षत्र (तारागण) हैं ॥ २ ॥

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी ॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा ॥ ३ ॥

विश्वास ही [उस आकाशमें] ध्रुवतारा है, चौदह वर्षकी अवधि [का ध्यान] पूर्णिमाके समान है और स्वामी श्रीरामजीकी सुरति (स्मृति) आकाशगङ्गा-सरीखी प्रकाशित है। रामप्रेम ही अचल (सदा रहनेवाला) और कलङ्करहित चन्द्रमा है। वह अपने समाज (नक्षत्रों) सहित नित्य सुन्दर सुशोभित है ॥ ३ ॥

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥ ४॥

भरतजीकी रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल गुण और ऐश्वर्यका वर्णन करनेमें सभी सुकवि सकुचाते हैं; क्योंकि वहाँ [औरोंकी तो बात ही क्या] स्वयं शेष, गणेश और सरस्वतीकी भी पहुँच नहीं है॥ ४॥

दो०—नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥३२५॥

वे नित्यप्रति प्रभुकी पादुकाओंका पूजन करते हैं, हृदयमें प्रेम समाता नहीं है। पादुकाओंसे आज्ञा माँग-माँगकर वे बहुत प्रकार (सब प्रकारके) राज-काज करते हैं॥ ३२५॥

चौ०—पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥ १॥

शरीर पुलकित है, हृदयमें श्रीसीता-रामजी हैं। जीभ राम-नाम जप रही है, नेत्रोंमें प्रेमका जल भरा है। लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजी तो वनमें बसते हैं, परन्तु भरतजी घरहीमें रहकर तपके द्वारा शरीरको कस रहे हैं॥ १॥

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥ २॥

दोनों ओरकी स्थिति समझकर सब लोग कहते हैं कि भरतजी सब प्रकारसे सराहने योग्य हैं। उनके व्रत और नियमोंको सुनकर साधु-संत भी सकुचा जाते हैं और उनकी स्थिति देखकर मुनिराज भी लज्जित होते हैं॥ २॥

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू॥ ३॥

भरतजीका परम पवित्र आचरण (चरित्र) मधुर, सुन्दर और आनन्द-मङ्गलोंका करनेवाला है। कलियुगके कठिन पापों और क्लेशोंको हरनेवाला है। महामोहरूपी रात्रिको नष्ट करनेके लिये सूर्यके समान है॥३॥

पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥ ४॥

पापसमूहरूपी हाथीके लिये सिंह है। सारे संतापोंके दलका नाश करनेवाला है। भक्तोंको आनन्द देनेवाला और भवके भार (संसारके दुःख) का भञ्जन करनेवाला तथा श्रीरामप्रेमरूपी चन्द्रमाका सार (अमृत) है ॥४॥

छं०–सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

श्रीसीतारामजीके प्रेमरूपी अमृतसे परिपूर्ण भरतजीका जन्म यदि न होता, तो मुनियोंके मनको भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतोंका आचरण कौन करता ? दुःख, संताप, दरिद्रता, दम्भ आदि दोषोंको अपने सुयशके बहाने कौन हरण करता ? तथा कलिकालमें तुलसीदास-जैसे शठोंको हठपूर्वक कौन श्रीरामजीके सम्मुख करता ?

सो०–भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥३२६॥

तुलसीदासजी कहते हैं–जो कोई भरतजीके चरित्रको नियमसे आदरपूर्वक सुनेंगे उनको अवश्य ही श्रीसीतारामजीके चरणोंमें प्रेम होगा और सांसारिक विषय-रससे वैराग्य होगा ॥ ३२६ ॥

मासपारायण, इक्कीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने द्वितीयः सोपानः समाप्तः॥

कलियुगके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसका
यह दूसरा सोपान समाप्त हुआ।

(अयोध्याकाण्ड समाप्त)

——>o<——

मुद्रक—संसार प्रेस, काशीपुरा, वाराणसी।